प्रेमदोष

आशीष सूर्यभान द्विवेदी

BlueRose ONE .com
Stories Matter
New Delhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Ashish Suryabhan Dwivedi 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.



For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-81-6744-171-3

Cover design: Ajay Dhyani
Typesetting: Sagar

First Edition: October 2026

बयान

मैं आशीष सूर्यभान द्विवेदी। पिता स्वर्गीय, नाम सूर्यभान द्विवेदी। यह किताब झूठ है। मान लीजिए। इसमें कोई शर्म की बात नहीं, झूठ बोलना भी एक हुनर है, बशर्ते आप कबूल करें कि झूठ बोल रहे हैं, वरना तो अधिकतर सच भी झूठ से बदतर निकलते हैं। इसके पात्र वैसे ही गढ़े गए हैं जैसे थाने में एफ़ आई आर गढ़ी जाती है, ज़रूरत के हिसाब से, सुविधा के हिसाब से, न वे कहीं जीते थे न मरेंगे, बस काग़ज़ पर साँस लेते रहेंगे। जगहों के नाम भी असली नहीं, उधार के हैं, ठीक वैसे जैसे किसी नेता की डिग्री, काम भर के लिए काफ़ी, जाँच हो तो जवाब तैयार। घटनाएँ किसी बाज़ार से नहीं आईं, मेरी अपनी खोपड़ी की उसी फैक्ट्री से निकली हैं जहाँ रोज़ नए झूठ बनते हैं और पुराने रीसायकल होते हैं।

अब असली बात, जो शर्म की नहीं, हिसाब चुकाने की है। इस किताब के पीछे जो असली मेहनत लगी, वह मेरी पत्नी नेहा की है। उसने ठीक उतनी ही मेहनत की जितनी एक रस्सी करती है, जब वह अंधेरे कुएं में उतर कर भारी बाल्टी खींच लाती है, यह जाने बग़ैर कि पानी पीने वाला कभी शुक्रिया अदा करेगा या नहीं। और मैं? मैं बस बाल्टी था, इधर टकराता, उधर डोलता, अपने आप कुछ न कर पाता, बस लटका रहता अगर वह रस्सी न होती, हाँ यह ज़रूर है कि किताब के कवर पर नाम बाल्टी का ही छपेगा, यही दुनिया का दस्तूर है, मेहनत रस्सी करे और श्रेय बाल्टी को मिले।

मेरे बड़े भाई आनंद ओझा की जो प्रेरणा रही, वह भी कुछ वैसी ही रही जैसे गर्मी की दोपहर में अचानक कोई बादल का टुकड़ा आ जाए सूरज के आगे, न बारिश करता है न ठंडक, बस थोड़ी देर के लिए धूप की मार से बचा लेता है, ताकि हम खेत में और थोड़ी देर हल चला सकें।

मेरा सफर भी मेरा न था।

अनुक्रमणिका

अटरिया का लोटन कबूतर 1
बे-तार यंत्र 52
हैंडपंप वाली दोपहर 71
बहानों का मौसम 93
चौपाल का फ़ैसला 117
मलहम और चिट्ठी 179
दो सुबहें, दो रास्ते 207
पहला खुमार 231

अटरिया का लोटन कबूतर

सन उन्नीस सौ पैंसठ का जनवरी था।

गाँव के बच्चे कुबेर सिंह की अमरूद की बगिया में घुसे ही थे कि उन्होंने वहाँ जो देखा, वह शायद कभी नहीं भूल पाए। खाट पर एक चीज़ पड़ी थी, और वह चीज़ कोई अजूबा लग रही थी, ऐसी जो गाँव में पहले कभी नहीं देखी गई। बच्चे धीरे-धीरे उस अजूबे के पास गए, साँस रोककर, जैसे कोई जादू देखने जा रहे हों।

और फिर वह अजूबा बोल उठा।

बच्चे इतने डरे कि वहाँ से भागे, और दोबारा कभी कुबेर सिंह की बगिया की तरफ़ नहीं गए। अगर वे रुककर उस आवाज़ को सुन पाते, तो उन्हें पता चलता कि उन दिनों दिल्ली से मद्रास तक भाषा को लेकर ऐसा बवाल मचा हुआ था कि अख़बार वाले रोज़ नई सुर्ख़ी ढूँढ निकालते थे। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात चल रही थी। दक्षिण में जुलूस निकल रहे थे। नारे लग रहे थे। और दिल्ली के दफ़्तरों में फ़ाइलें इस बात पर मोटी हो रही थीं कि किस ज़बान को कितना बड़ा माना जाए।

पर बच्चे भाग चुके थे, और उनके पीछे रह गई थी एक आवाज़ जो किसी कुर्सी पर बैठकर बनाई गई महत्वाकांक्षा की थी, खेतों पर नहीं बनी हुई। और जो लड़ाई

कुर्सियों पर लड़ी जाती है, उसकी ख़बर खेतों तक पहुँचते-पहुँचते इतनी बासी हो जाती है कि कोई उसे ताज़ा मानकर खाता नहीं।

मैनपुरी के गाँवों में इस आंदोलन की कोई हलचल नहीं थी।

इसलिए नहीं कि गाँव वालों को अपनी ज़बान से प्यार नहीं था, बल्कि इसलिए कि जिसे यह सोचना पड़े कि रात की रोटी कहाँ से आएगी, उसके पास यह सोचने की फ़ुर्सत नहीं बचती कि मुल्क किस ज़बान में बात करे। पेट की भाषा एक होती है, हर गाँव में, हर सूबे में, और वह भाषा सबसे पहले बोली जाती है।

राजनीति यहाँ भी आती थी, पर अपने ही रास्ते से। किसी की चौपाल की बीड़ी के सहारे। किसी की अधपढ़ी चिट्ठी के सहारे। और आकर ज़्यादा देर ठहरती नहीं थी, जैसे कोई परदेसी मेहमान आए, पानी पिए, और आगे बढ़ जाए। गाँव तक सड़क नहीं पहुँची थी, यह सच था, पर राजनीति पहुँच जाती थी, क्योंकि राजनीति को सड़क की ज़रूरत कभी नहीं पड़ती, उसे तो बस एक कान चाहिए जो उसे सुन ले।

मैनपुरी के इन्हीं गाँवों में एक गाँव था जिसका नाम किसी अख़बार में नहीं छपा, किसी बहस में नहीं आया।

नाम था बालमपुर।

और बालमपुर का वह कान, वही कान जिसने उन बच्चों को इतना डरा दिया, वह कुबेर सिंह के पास था। यह कान बिना तार के देश-विदेश की बातें बताता, और वे बातें कुबेर सिंह चौपाल में बाँचते, जैसे कोई पुजारी किसी पुराने ग्रंथ का पाठ करे, अधिकार से, और गाँव सुनता, आधा समझता, आधा नहीं, पर सुनता ज़रूर।

बालमपुर की नींद किसी मुर्गे की बाँग से नहीं खुलती थी।

उसकी नींद खुलती थी एक आवाज़ से, जो रोज़ सुबह चार बजे के आसपास गली से उठती, और धीरे-धीरे पूरे गाँव में फैल जाती, जैसे कोई अदृश्य हाथ हो जो

एक-एक घर को जगाता चला जाता। यह आवाज़ बाल ब्रह्मचारी कोमल बजरंगी की थी।

कोमल बजरंगी को समझना हो तो पहले यह समझना होगा कि बालमपुर में नाम सिर्फ़ नाम नहीं होते थे। नाम के पीछे एक पूरी ज़िंदगी होती थी, और अगर ज़िंदगी भी न हो तो कम से कम एक आदत होती थी जो ज़िंदगी की तरह दिखती थी। कोमल बजरंगी भुरवा के चाचा थे, और यह उनकी पहली पहचान थी, इसलिए नहीं कि वे चाचा होने पर गर्व करते थे, बल्कि इसलिए कि भुरवा हाई स्कूल में दस बार फेल हुआ था और अंत में स्कूल ने उसे यह कहकर विदा किया था कि बेटा, अब घर को ही अपना स्कूल समझो। भुरवा ने यह सलाह मान ली और घर पर ही रहने लगा। ऐसे भतीजे के चाचा होने की एक ख़ास क़िस्म की इज़्ज़त होती है जिसे कोमल बजरंगी ने कभी नहीं समझा पर हमेशा महसूस किया। उनकी दूसरी पहचान यह थी कि वे एयरफ़ोर्स में रहे थे। एयरफ़ोर्स में वे ग्रुप डी के सफ़ाई कर्मचारी थे, पर गाँव को यह बात किसने बताई होती। गाँव ने देखा कि आदमी एयरफ़ोर्स में है, बस यही काफ़ी था। फिर धीरे-धीरे कहानी बनी, और जब कहानी बन जाती है तो उसे सच्चाई की ज़रूरत नहीं रहती। सो बालमपुर में कोमल बजरंगी एयरफ़ोर्स के पायलट थे, कोमल बजरंगी ख़ुद यह जानते थे कि वे पायलट नहीं थे, पर जब गाँव वाले यह कहते तो वे सुधारते नहीं थे, बस एक हल्की-सी मुस्कान आती थी जो न हाँ थी न ना, जो बस थी। अब वे रिटायर हो चुके थे और रोज़ चार बजे उठना उनकी पुरानी आदत थी जो नौकरी जाने के बाद भी नहीं गई, जैसे नौकरी आदमी को छोड़ देती है पर आदमी नौकरी को नहीं छोड़ पाता।

उठने के पंद्रह मिनट के भीतर वे गली में निकल आते थे और हनुमान चालीसा शुरू हो जाती थी। घर में नहीं, गली में। उनके घर में कोई मंदिर नहीं था और मंदिर बस्ती के दूसरे छोर पर था, तो उनका नियम यह था कि चालीसा घर से शुरू होकर मंदिर पर ख़त्म होनी चाहिए और बीच का जो रास्ता था वह उनका मंच

था और बालमपुर उनका श्रोता। यह बात अलग थी कि बालमपुर ने कभी यह भूमिका क़बूल नहीं की थी, पर कोमल बजरंगी को इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता था।

उनकी आवाज़ में सुर कम था और संकल्प ज़्यादा, जैसे कोई आदमी भगवान को मनाने नहीं, बल्कि याद दिलाने निकला हो कि मैं आ रहा हूँ, तैयार रहो। भक्ति और आदत में बस इतना फ़र्क़ होता है कि भक्ति में आँखें बंद होती हैं और आदत में खुली। कोमल बजरंगी की आँखें हमेशा खुली रहती थीं, वे रास्ता देखते थे, पत्थर से बचते थे, रास्ते में अगर कोई मिल जाता तो एक पल के लिए चालीसा धीमी हो जाती और एक हाथ उठ जाता नमस्कार में, फिर आवाज़ वापस अपनी जगह आ जाती। यह आदत थी, और यह आदत उनकी तीसरी और सबसे बड़ी पहचान थी।

चालीसा जब पहली पंक्ति पर होती तब उनके अपने घर के दरवाज़े बंद होते थे। चौथी पंक्ति तक भुरवा की माँ की खाँसी शुरू हो जाती थी। छठी पंक्ति तक सामने वाले घर की चिड़ियाँ अपनी डाल छोड़ देती थीं। बालमपुर के मुर्गों को कभी सूरज का इंतज़ार नहीं करना पड़ा, वे कोमल बजरंगी की आवाज़ सुनकर बाँग देते थे। और जिस दिन कोमल बजरंगी बुख़ार में पड़े होते उस दिन मुर्गे देर तक चुप रहते, और गाँव वालों को लगता कि आज कुछ ग़लत है, सूरज भी शायद आज देर करेगा।

इसी आवाज़ में बालमपुर की सुबह जागती थी और इसी आवाज़ में सन पैंसठ के एक दिन ने भी आँखें खोलीं।

फ़रवरी का महीना था। हवा में ठंडक थी पर वह ठंडक जो जाने की तैयारी में है, जो सुबह की पहली धूप में थोड़ी पिघलती है और दोपहर तक खेतों की मेड़ों पर बैठ कर दम लेती है। खेतों में सरसों के फूल थे और उनकी पीली चादर इतनी दूर तक फैली थी कि देखने वाले को लगता जैसे ज़मीन को किसी ने हल्दी से नहला

दिया हो और वह हल्दी अभी सूखी नहीं है। आसमान में धुंध थी, गाढ़ी नहीं, बस उतनी जितनी उन दिनों बालमपुर के घरों में दूध में होती थी, यानी थी तो ज़रूर पर उसकी कोई शिकायत नहीं की जा सकती थी। गायें अपने खूँटों पर रस्सी खींच रही थीं और घर-घर के चूल्हों से धुएँ की पतली-पतली रेखाएँ उठ रही थीं जो आसमान तक पहुँचने से पहले ही हवा में घुल जाती थीं, जैसे कोई बात कही जाए और पूरी होने से पहले ही भुला दी जाए।

यह बालमपुर का चित्र था। इस चित्र में हर रोज़ कुछ जुड़ता था और कुछ झड़ता था, पर जुड़ने और झड़ने की रफ़्तार इतनी धीमी थी कि किसी को कभी लगा ही नहीं कि कुछ बदल रहा है। बदलाव जब इतना धीमा हो तो वह बदलाव नहीं, साँस लेना है।

गाँव के बीच में एक पीपल था।

पीपल के नीचे एक चबूतरा था, और उस चबूतरे पर शाम को कुछ बूढ़े आकर बैठते थे। उनका काम सिर्फ़ बैठना था, और यह काम वे बड़ी गंभीरता से करते थे, जैसे बैठना कोई ज़िम्मेदारी हो जो उनके हाथ लगी है, और जिसे निभाने वे हर शाम आते हैं, बिना नागा, बिना थके। वे हुक्का पीते थे, धीरे-धीरे, और गाँव का हिसाब रखते थे, हालाँकि कोई उनसे हिसाब माँगता नहीं था। पर माँगता तो वे दे सकते थे, यह बात वे जानते थे, और यही जानना उन्हें ज़रूरी बनाता था, उस ज़रूरी होने जैसा जो काम नहीं करता पर जिसका होना काफ़ी होता है।

पीपल के चबूतरे पर ही गाँव की चौपाल बैठती थी, और गाँव की पंचायत भी।

और जब पंचायत बैठती थी, तो सबसे पहले कुबेर सिंह की मचिया आती थी।

मचिया लकड़ी की थी, पुरानी थी, उसके पाए थोड़े घिसे हुए थे, पर दूसरों की मचियों से थोड़े ऊँचे थे। यह ऊँचाई किसी ने नाप कर नहीं बनाई थी। यह बस थी, जैसे कुछ चीज़ें होती हैं, बिना किसी के बनाए, बिना किसी फ़रमान के, बस धीरे-धीरे जम जाती हैं, जैसे रिवायतें जमती हैं, बरसों की चुप्पी से।

कुबेर सिंह जब उस पर बैठते, उनका सिर बाक़ी सबके सिरों से चार उँगल ऊँचा होता था। और इन चार उँगल में बालमपुर का पूरा सामाजिक ढाँचा समाया हुआ था, वह सब जो किसी काग़ज़ पर नहीं लिखा था पर जिसे हर बच्चा अपनी माँ की गोद में ही सीख लेता था।

जो आदमी इन चार उँगल को नहीं समझता था, वह बालमपुर को नहीं समझता था।

और जो समझता था, वह कभी इस बारे में बात नहीं करता था। क्योंकि कुछ बातें बात करने से टूट जाती हैं, और कुछ बातें बात न करने से टिकी रहती हैं। बालमपुर ऐसी ही बातों से टिका हुआ था, उन चुप्पियों से जो कभी सवाल नहीं बनतीं, बस रिवायत बन जाती हैं, और रिवायत बनकर इतनी पुरानी हो जाती हैं कि कोई उन्हें रिवायत भी नहीं समझता, सच समझ लेता है।

इसी गाँव में, पीपल और चौपाल से थोड़ी दूर, उस गली के मोड़ पर जहाँ रात को अंधेरा थोड़ा जल्दी आता था क्योंकि वहाँ कोई दीपक जलाने वाला नहीं था, एक घर था जिसका कोई नाम नहीं था। नाम रखे जाते हैं उन घरों के जिनमें कुछ ऐसा हो जो लोगों को याद रहे, पर रामखेलावन के घर में जो कुछ था वह लोगों को याद नहीं रहता था, वह बस महसूस होता था। घर मिट्टी का था, ऊपर खपरैल थी जिसकी कुछ खपरें टूटी हुई थीं और बरसात में उनकी जगह से पानी आता था जिसे फूलमती बाल्टी रखकर रोकती थीं। आँगन में एक नीम था जो इतना पुराना था कि उसकी उम्र का हिसाब घर के किसी बड़े को भी नहीं पता था। गर्मियों में उसकी छाँव पूरे आँगन को ढक लेती थी और सर्दियों में वह सिकुड़ कर एक कोने में सिमट जाती थी, जैसे पेड़ को भी पता हो कि माघ में धूप की ज़रूरत है और वह रास्ता देता है। आँगन के एक कोने में चूल्हा था, दूसरे कोने में एक खूँटा था जहाँ गाय बँधती थी, और बीच में एक चारपाई थी जो रामखेलावन की थी। यह बात घर में सबको पता थी और किसी ने कभी इस पर सवाल नहीं उठाया था, क्योंकि

कुछ चीज़ें बिना किसी आदेश के तय हो जाती हैं और एक बार तय हो जाएँ तो उन्हें सवाल की ज़रूरत नहीं रहती।

दरवाज़े के पास एक लाठी रखी रहती थी। यह लाठी रामखेलावन की पहचान थी जैसे कोमल बजरंगी की पहचान उनकी चालीसा थी। लाठी से उन्होंने कभी किसी को मारा नहीं था, पर उसके होने से एक इत्मीनान रहता था, घर में भी, और रामखेलावन को भी। उस सुबह लाठी दरवाज़े पर नहीं थी। वह भीतर थी।

घर के भीतर से एक बच्चे के रोने की आवाज़ आ रही थी, वह रोना जो ज़ोर-ज़ोर का नहीं था, जो छाती में दबाकर किया जाता है, जो तब निकलता है जब रोना भी डर के साथ आता है।

"बोल। स्कूल का भूत उतरेगा या हम उतारें।"

रामखेलावन की आवाज़ घर की मिट्टी की दीवारों से टकराकर गली तक आ रही थी। पर गली में उस वक़्त कोई नहीं था जो सुनता। इस वक़्त बालमपुर की गलियाँ अपने काम में थीं।

रामखेलावन कभी नहीं चाहते थे कि लोटन स्कूल जाए। रामखेलावन की दुनिया में हिसाब बहुत सीधा था। ज़मीन है, ज़मीन पर काम है, काम से पैसा है। अधिया पर जो ज़मीन उन्होंने ली थी वह उनकी नहीं थी पर उस पर पसीना उनका था और पसीने की अपनी क़ीमत होती है जो बाज़ार में नहीं मिलती पर मन को मिलती है। इस दुनिया में स्कूल की जगह कहाँ थी, यह वे नहीं जानते थे। स्कूल से क्या मिलता है यह उन्होंने कभी देखा नहीं था। गाँव में पढ़े-लिखे लोग थे, पर वे या तो शहर चले गए थे या यहीं रहकर वही करते थे जो बाक़ी लोग करते थे, बस उनके हाथ में एक काग़ज़ होता था जो किसी काम का नहीं था।

भीतर लोटन चुपचाप सिसकियाँ भर रहा था। नौ साल का था। उम्र उस मोड़ पर थी जहाँ बच्चा पूरी तरह बच्चा नहीं रहा था और आदमी अभी बना नहीं था। रोने

और न रोने के बीच वह उस धागे पर खड़ा था जो इतना पतला होता है कि उस पर खड़े होना सीखने में पूरी उम्र लग जाती है।

फूलमती उस समय चूल्हे के पास थीं। वह हर सुबह सबसे पहले उठती थीं, यह नियम था जो किसी ने थोपा नहीं था पर जिसे फूलमती ने ख़ुद चुना था। और जो चीज़ें हम ख़ुद चुनते हैं वे थोपी हुई चीज़ों से ज़्यादा गहरी हो जाती हैं, क्योंकि उनमें हमारी मरज़ी का हिस्सा होता है, और मरज़ी को रात के अँधेरे में भी नींद नहीं आती। उठकर वह पहले मुँह धोती थीं, फिर चूल्हे की राख निकालती थीं, उपले रखती थीं, और चूल्हा जलाती थीं। चूल्हा जलने के बाद वह लोटे में पानी लेकर आँगन आती थीं, तुलसी के पौधे को पानी देती थीं और उसके सामने एक पल के लिए हाथ जोड़ती थीं। यह पल बहुत छोटा होता था, पर इस छोटे पल में जो कुछ होता था वह फूलमती और तुलसी के बीच होता था, किसी और का उसमें हिस्सा नहीं था। तुलसी सुनती थी या नहीं यह कोई नहीं जानता था, पर फूलमती को यक़ीन था कि सुनती है, और जिस आदमी या औरत को किसी के सुनने का यक़ीन हो जाए उसका जीना थोड़ा आसान हो जाता है। यह यक़ीन दुनिया की सबसे सस्ती दवा है और सबसे काम की भी।

उस सुबह जब रामखेलावन की आवाज़ और लोटन की सिसकियाँ एक साथ घर में थीं, फूलमती ने तुलसी के सामने हाथ जोड़े और थोड़ा ज़्यादा देर तक रुकीं। उन्होंने कुछ कहा नहीं, पर तुलसी ने शायद समझ लिया।

घर में कुल मिलाकर छह जनें थे और इन छह जनों के बीच जो दुनिया बसती थी वह इतनी भरी-पूरी थी कि उसमें बाहर की दुनिया के लिए ज़्यादा जगह नहीं बचती थी। रामखेलावन के भाई कब के अलीगढ़ चले गए थे। उनसे रिश्ता एक चिट्ठी का रह गया था जो कभी-कभी आती थी और कभी-कभी जाती थी। इन चिट्ठियों में जो ख़बरें होती थीं वे आधी पहुँचने से पहले पुरानी हो जाती थीं और आधी पहुँचकर भी नई नहीं लगती थीं। रिश्ते जब चिट्ठी पर आ जाएँ तो उनकी उम्र काग़ज़ जितनी हो जाती है।

शिवकुमार बड़ा बेटा था, ग्यारह साल का। उसके चेहरे पर बाप की झलक थी, वही चौड़े कंधे, वही गहरी आँखें, पर बाप में जो ठहराव था वह बेटे में नहीं आया था। बेटे में बेचैनी थी, वह बेचैनी जो खाली हाथों में होती है जब आदमी को पता नहीं होता कि उन्हें किस काम में लगाना है। सूरज आठ साल का था, लोटन से एक साल छोटा। सूरज पतला था, बाल थोड़े घुँघराले जो परिवार में किसी और के नहीं थे, और आँखों में एक हल्कापन था जो समझदारी का एक अलग रूप होता है, वह समझदारी जो किताबों में नहीं मिलती बल्कि यह जानने से आती है कि कुछ चीज़ें हैं जिनसे लड़ना बेकार है इसलिए उनके साथ बहना बेहतर है। सूरज को पढ़ाई में मन नहीं लगता था पर उसे यह ज़रूर पता चल जाता था कि लोटन कब कुछ अंदर दबाए बैठा है और कब उसे कोई सुनने वाला चाहिए।

रानी पाँच साल की थी और घर में सबसे छोटी थी। छोटे होने के दो फ़ायदे होते हैं, एक यह कि सबसे ज़्यादा छूट मिलती है और दूसरा यह कि सबसे कम ध्यान। यह दोनों बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं यह सिर्फ़ छोटे बच्चों को पता होता है। रानी के दो चोटियाँ थीं और उनमें हर रोज़ अलग फ़ीते बँधते थे। फ़ीते वह ख़ुद चुनती थी एक छोटे टीन के डिब्बे में से जिसमें कुल सात फ़ीते थे, लाल, हरा, पीला, नीला, काला, सफ़ेद और एक नारंगी जो किनारे से थोड़ा फट गया था पर था। हर सुबह वह डिब्बा खोलती और देर तक सोचती कि आज कौन से दो। यह फ़ैसला उसका अपना था और घर में इसके अलावा कोई फ़ैसला उसका नहीं था। बाकी सब फ़ैसले माँ करती थी, भइया लोग करते थे, बाप करते थे। फ़ीते उसके थे।

उस सुबह यह घर इसी तरह था। एक तरफ़ रामखेलावन की आवाज़ थी, दूसरी तरफ़ लोटन की सिसकियाँ थीं, बीच में फूलमती तुलसी के सामने खड़ी थीं, शिवकुमार अभी उठा नहीं था, सूरज आँखें मलते हुए आँगन में आया और सबसे पहले लोटन को देखा, और रानी अपने डिब्बे के पास बैठी थी और आज कौन से फ़ीते पहनने हैं यह सोच रही थी। बालमपुर की हर सुबह इसी तरह शुरू होती थी,

कहीं कोई चिल्लाता था, कहीं कोई चुप था, कहीं कोई सोचता था और कहीं कोई बस होता था।

जिस दिन लोटन की पिटाई होती उस दिन शाम को फूलमती उसे एक कटोरी चाय देती थीं। यह कटोरी किसी नियम के तहत नहीं आती थी, कोई रस्म नहीं थी, कोई इलाज नहीं था। बस आती थी, जैसे कुछ चीज़ें बिना किसी कारण के होती हैं और इसीलिए सबसे ज़रूरी होती हैं। चाय में दूध कम होता और चीनी ज़्यादा, क्योंकि लोटन को मीठी चाय पसंद थी और यह पसंद फूलमती की एकमात्र ऐसी ज़िद थी जिसमें वे कभी पीछे नहीं हटती थीं। घर में बाकी हर चीज़ में कमी होती थी, दाल में पानी थोड़ा ज़्यादा होता, रोटी एक कम बनती, तेल की कुप्पी को झुकाकर आख़िरी बूँद निकालनी पड़ती, पर चीनी के डिब्बे में जब तक घर में एक भी दाना था तब तक लोटन की चाय मीठी रहती थी। वह कहाँ से बचाती थीं, यह उन्हीं को पता था। शायद अपने हिस्से से। माँएँ जो बचाती हैं वह किसी खाते में नहीं लिखा जाता।

लोटन उस कटोरी को दोनों हाथों से पकड़ता था, जैसे ठंड में कोई गर्म चीज़ को पकड़ता है, चाहे ठंड हो या न हो। पीता था धीरे-धीरे, छोटे घूँट लेकर। पिटाई के बाद जो चुप्पी होती थी वह उस कटोरी के भीतर थोड़ी कम हो जाती थी। यह बात उसने कभी सोची नहीं, पर यह बात थी।

उस सुबह भी पिटाई हुई थी। बाप की आवाज़ अभी तक कानों में थी, हथेली पर अभी तक कुछ जलता था, और रामखेलावन ने जो कहा था वह भीतर अभी तक उतर रहा था। खेत की बात थी, हमेशा खेत की बात होती थी। पर लोटन उस सुबह खेत की तरफ नहीं गया। वह स्कूल की तरफ गया।

यह कोई बड़ा फ़ैसला नहीं था। इसमें कोई विद्रोह नहीं था, कोई घोषणा नहीं थी। बस इतना था कि जब वह दरवाज़े से निकला तो उसके पैर उस तरफ मुड़ गए जहाँ उन्हें मुड़ना था। पैर कभी-कभी आदमी से ज़्यादा समझदार होते हैं। वह

चला, किताबें बग़ल में दबाए, आँखें ज़मीन पर, और उसे पता नहीं था कि यह एक छोटा-सा चुनाव था या कुछ और, पर यह चुनाव था, और यही काफ़ी था।

रास्ते में एक कुआँ पड़ता था।

यह वही कुआँ था जिसे कुबेर सिंह का कुआँ कहते थे। देखने में साधारण था, ईंट की मुंडेर, रस्सी पर बाल्टी, पास में नीम जिसकी एक जड़ मुंडेर की ईंटों को अंदर से धीरे-धीरे तोड़ रही थी और किसी को पता नहीं था या किसी ने ध्यान नहीं दिया था। पर इस कुएँ के होने के पीछे एक पूरी दुनिया थी जो किसी काग़ज़ पर नहीं लिखी थी। जो चीज़ें काग़ज़ पर नहीं लिखी होतीं वे हवा में होती हैं, और हवा में जो होता है उसे मिटाया नहीं जा सकता, क्योंकि उसे पकड़ा भी नहीं जा सकता।

लोटन इस कुएँ के पास से रोज़ गुज़रता था और रोज़ थोड़ा दूर से गुज़रता था। यह दूरी उसने नापी नहीं थी, तय नहीं की थी। यह बस होती थी, जैसे चलते-चलते आदमी अपने आप किसी जगह से बचता है जिसके बारे में उसे ठीक-ठीक पता भी नहीं होता कि वह क्यों बच रहा है। उसके साथ के बच्चे भी इसी तरह गुज़रते थे। किसी ने किसी को नहीं बताया था कि दूर से जाना है, यह बात बिना बताए पता होती थी, उस तरह जैसे कुछ बातें सिखाई नहीं जातीं, हवा में होती हैं और बच्चे उन्हें साँस के साथ अंदर ले लेते हैं।

एक बार वह पास गया था। तब वह छह साल का था।

गर्मी की दोपहर थी, वह दोपहर जो बालमपुर में चुप हो जाती थी, जब छाँव भी थककर सिकुड़ जाती थी और धूल भी उड़ना बंद कर देती थी। लोटन खेलते-खेलते पहुँच गया था, बिना किसी सोच के, जैसे बच्चे पहुँच जाते हैं। प्यास लगी थी और कुआँ सामने था। उसके छह साल के दिमाग़ में प्यास और पानी के बीच कोई दीवार नहीं थी। दीवारें बाद में बनती हैं, वह उस उम्र में नहीं था जब दीवारें दिखने लगती हैं। उसने मुंडेर पकड़ी, झाँका, एक बाल्टी रस्सी से बँधी ऊपर रखी

थी। पानी था बाल्टी में, ताज़ा निकाला हुआ, धूप में चमक रहा था। उसने हाथ बढ़ाया।

"किसके हो?"

आवाज़ पीछे से आई। लोटन ने मुड़कर देखा। एक आदमी था, चालीस के आसपास, गहरा साँवला, माथे पर तिलक, हाथ में लाठी जो कंधे पर टिकी थी जैसे वहाँ रहना उसकी आदत हो। यह बजरू था, कुबेर सिंह का नौकर। बजरू कुबेर सिंह के यहाँ तीस बरस से था, इतने बरस कि उसकी अपनी ज़िंदगी कहाँ ख़त्म होती थी और कुबेर सिंह की शुरू होती थी, यह तय करना मुश्किल हो गया था। उसने लोटन को देखा और उसकी आँखों में कुछ हुआ, बहुत हल्का, पर हुआ। वह कुछ शायद पहचान था, शायद हिसाब था, शायद कुछ और जिसका नाम बजरू के पास भी नहीं था।

लोटन ने अपने बाप का नाम बताया।

बजरू ने सुना। थोड़ी देर चुप रहा, उस तरह की चुप्पी जो किसी के लिए नहीं होती, सिर्फ़ अपने लिए होती है, जब आदमी भीतर कुछ तय कर रहा हो। फिर उसने जो कहा उसके शब्द लोटन को बाद में याद नहीं रहे। शब्द भूल जाते हैं, हमेशा भूल जाते हैं, पर जो उनके पीछे होता है वह नहीं भूलता। बजरू ने कहा था कुछ ऐसा कि यह कुआँ उसके लिए नहीं है, कि वह दूसरे कुएँ पर जाए। आवाज़ में कठोरता थी या नहीं, यह लोटन तय नहीं कर पाया कभी। बजरू की आवाज़ में जो था वह शायद वही था जो उस आदमी की आवाज़ में होता है जो कुछ ऐसा कर रहा हो जो उसे नहीं करना चाहिए पर जो उसे करना है, और यह फ़र्क़ वह आदमी ख़ुद भी जानता है पर उसके पास इस जानने का कोई इलाज नहीं है। बजरू ने लोटन को देखा, फिर पानी की बाल्टी को देखा, फिर कही और तरफ़ देखने लगा।

लोटन के भीतर कुछ उतरा, वैसे जैसे पानी की एक बूँद कपड़े पर पड़े और कपड़े को थोड़ा भारी कर दे। भारी इतना कि पता चले, पर इतना नहीं कि किसी को बताया जा सके।

वह घर लौटा। फूलमती चूल्हे के पास थीं। उन्होंने पूछा, "कहाँ था?" उसने कहा, "कुएँ पर।" फूलमती ने पूछा, "कौन से?" उसने बताया। फूलमती के हाथ में जो था वह नीचे रख दिया। उन्होंने उसे एक बार ऊपर से नीचे तक देखा, उस तरह जैसे माँएँ देखती हैं जब यह जाँचना हो कि कुछ टूटा तो नहीं। फिर कहा, "वहाँ नहीं जाना। और कभी नहीं।"

"क्यों?"

फूलमती ने जवाब नहीं दिया। जिन सवालों के जवाब देना मुश्किल हो उन्हें वे हमेशा से छोड़ देती थीं। पर इस बार की चुप्पी में कुछ और था, एक डर जो उनके चेहरे पर उस एक पल के लिए आया था, वह डर जो उन माँओं के पास होता है जो जानती हैं कि दुनिया कैसी है और चाहती हैं कि बच्चा थोड़ा और देर से जाने। लोटन ने वह डर देखा। उसने दुबारा नहीं पूछा। वह उस कुएँ पर फिर कभी नहीं गया। प्यास लगने पर दूसरे कुएँ का इंतज़ार कर लेता, चाहे देर लगे। और एक दिन उसे लगा कि भूल गया। पर भूलना झूठ था। कुछ चीज़ें हम भूलते नहीं हैं, उन्हें भीतर किसी ऐसी जगह रख देते हैं जहाँ रोज़ की नज़र नहीं पड़ती।

तो उस सुबह भी, पिटाई खाकर, लोटन उस कुएँ के पास से गुज़रा, थोड़ा दूर से, और स्कूल की तरफ चलता रहा।

बालमपुर का स्कूल उस रास्ते पर थोड़ा आगे था जो रामनगर की तरफ़ जाता था। पक्की दीवारें, कच्ची छत जो बरसात में अपना धर्म भूल जाती थी, और एक नीम जिसके नीचे सुबह प्रार्थना होती थी। प्रार्थना के वक़्त बच्चे खड़े होते थे, आँखें बंद रखने का नियम था, पर आँखें बंद करने वाले कम होते थे।

स्कूल में तीन मास्टर थे और उन तीनों की एक-एक दुनिया थी।

हेडमास्टर प्राणनाथ शुक्ला जी हिंदी पढ़ाते थे। उनकी आवाज़ में एक थकान रहती थी जो इतने बरसों से उनके साथ थी कि अब वह उनकी आवाज़ का हिस्सा बन गई थी। वे पढ़ाते थे, बच्चे सुनते थे या सुनने का भाव बनाए रखते थे, घंटी बजती थी। इस पूरे क्रम में एक शांति थी जिसे किसी ने माँगा नहीं था पर जो थी।

शिवशरण मिसिरा गणित के मास्टर थे और उनके हाथ में एक बेंत रहता था जिसका नाम उन्होंने न्यूटन रखा था। क्यों रखा, यह किसी बच्चे ने कभी नहीं पूछा, क्योंकि पूछना और फिर न्यूटन का परिचय सीधे हथेली पर पाना एक ऐसा जोखिम था जिसे उठाने की हिम्मत किसी में नहीं थी। न्यूटन की एक ख़ासियत थी कि वह होशियार और नालायक़ दोनों पर बराबर पड़ता था, होशियार पर इसलिए कि ग़लती करके उन्होंने उम्मीद तोड़ी, नालायक़ पर इसलिए कि ग़लती करके उन्होंने कुछ नया नहीं किया। न्यूटन इस इंसाफ़ में किसी से नहीं चूकता था।

क़ुरबान अली विज्ञान पढ़ाते थे। उनके पीरियड में बच्चे या तो सोते थे या खिड़की से बाहर देखते थे, और खिड़की से बाहर देखना सोने से बेहतर था क्योंकि उसमें कम से कम दुनिया दिखती थी। क़ुरबान अली को इस बात का ग़म नहीं था, या था तो उन्होंने उसे बहुत पहले किसी कोने में रख दिया था जहाँ से वह कभी-कभी झाँकता था और फिर वापस चला जाता था।

लोटन छठवीं में था। पढ़ाई में न तेज़ था न कमज़ोर, उस बीच की जगह पर जिसे मास्टर "ठीक ठाक है" कहकर अगले बच्चे की तरफ़ देख लेते हैं। यह बीच की जगह अपनी तरह की एक सुविधा थी। न ज़्यादा ध्यान आता था न न्यूटन का परिचय होता था। लोटन इस अदृश्यता में बैठा रहता था, चुपचाप, और बाहर से देखने पर लगता था कि सब ठीक है। पर "ठीक ठाक" और "ठीक" में एक फ़र्क़ होता है जिसे वह बच्चा जानता है जिस पर यह लागू होता है।

स्कूल से लौटते वक़्त लोटन के साथ पूरब होता था।

पाँचवीं में था, एक साल छोटा, पर दोस्ती उम्र नहीं देखती। पूरब पतला था, कोहनियाँ हर कमीज़ की बाँह से बाहर निकलती थीं, बाल बिखरे रहते थे क्योंकि कंघी उसे वक़्त की बर्बादी लगती थी। और उसके पास हर बात पर एक राय थी जो अक्सर ग़लत होती थी, पर दी जाती थी इतने यक़ीन से कि एक पल के लिए सुनने वाले को लगता, शायद यही सच है। लोटन उसकी राय सुनता था। कभी-कभी मानता था। ज़्यादातर भूल जाता था, जैसे भूलने में भी कोई अपनापा हो।

रास्ते में एक इमली का पेड़ था, सड़क से थोड़ा हटकर। वहाँ कभी-कभी दोनों रुकते थे, और पूरब अपनी कहानियाँ सुनाता था जिनमें वह ख़ुद नायक होता था, हर बार एक नई बहादुरी के साथ, हर बार पिछली कहानी से बड़ी। लोटन जानता था कि कहानियाँ बनाई हुई हैं। पर टोकता नहीं था। टोकने से कहानियाँ रुक जाती हैं, और कुछ चीज़ें टोकी जाने के लिए नहीं होतीं, सुनी जाने के लिए होती हैं।

स्कूल के बाद पूरब और लोटन रेल की पटरी की तरफ़ निकल जाते, वह पटरी जो गाँव के पीछे से गुज़रती थी।

लोटन को पटरी पसंद थी।

वह पटरी पर कान लगाकर बता देता था कि ट्रेन आने वाली है, और यही उसका रोमांच था, यह जान लेना कि कोई बड़ी चीज़ अभी दूर है पर आ रही है, और उसकी आहट ज़मीन के भीतर से पहले पहुँचती है, कानों से पहले, जैसे ज़मीन ख़ुद ख़बर देती हो। वह रेलगाड़ी का इंतज़ार करता, और कभी-कभी कोई मालगाड़ी मिल जाती, और रेलगाड़ी देखते ही उसका चेहरा खिल जाता, ऐसे जैसे कुछ बहुत बड़ा मिल गया हो, मुफ़्त में, बिना माँगे।

जब रेलगाड़ी गुज़र जाती, तब भी लोटन वहीं बैठा रहता, कान पटरी पर रखे, उस आवाज़ को सुनता जो रेल के जाने के बाद भी पटरियों में थोड़ी देर रह जाती है, एक काँपती हुई गूँज, जैसे कोई आवाज़ जाने के बाद भी अपनी छाप छोड़ जाती

है, और वह छाप उस वक़्त लोटन को कुछ ऐसा देती जो वह ख़ुद नहीं जानता था कि उसे चाहिए था।

उस दिन लोटन बब्बन भैया के घर शाम को गया।

रोज़ जाता था, यह बात अलग नहीं थी। पर उस दिन जाने की वजह थोड़ी अलग थी। सुबह की मार अभी तक बदन में थी, हथेली पर कुछ जलता था और भीतर कहीं एक भारीपन था जो देर से जाता है। घर में वापस जाना था, यह पता था, पर जितनी देर से जाएँ उतना बेहतर। अँधेरे में घर में घुसना आसान होता है। कम दिखता है, कम पूछा जाता है, कम याद रहता है।

इसीलिए वह बब्बन भैया के आँगन में आकर बैठ गया।

बब्बन भैया का घर लोटन के घर से चार घर आगे था। बालमपुर में चार घर बहुत क़रीब होते हैं, इतने क़रीब कि एक घर में चूल्हा जले तो दूसरे घर में धुआँ पहुँचे, और एक घर में कोई ज़ोर से बोले तो तीसरे घर में सुनाई दे। बब्बन भैया का पूरा नाम बलबान पासी था पर यह नाम सिर्फ़ काग़ज़ों पर था। मोहल्ले में वे बब्बन भैया थे, मैनपुरी की बसों में बब्बन भाई थे, और दुकानदारों के लिए वह आदमी थे जो महीने में कुछ बार आता है और जो ले जाता है उसे अगले हफ़्ते बेच आता है।

काम यही था, बसों में चढ़कर चीज़ें बेचना। कभी दाद-खाज की दवाई, कभी तीस दिन में अंग्रेज़ी सिखाने वाली किताब, सर्दियों में गरम उपन्यास, और जब मन हुआ तो चना-जोर-गरम ताकि मुँह चलता रहे। क्या बिकेगा यह उन्हें ठीक-ठीक पता नहीं होता था, पर यह ज़रूर पता था कि लोगों को किस वक़्त क्या सुनना अच्छा लगता है। इसी समझ के भरोसे उनका सामान हर दस-पंद्रह दिन में बदल जाता था पर उनकी आवाज़ नहीं बदलती थी, वही भरोसा दिलाने वाली आवाज़ जिसमें हर चीज़ थोड़ी ज़रूरी लगने लगती थी। यह हुनर नहीं था जो सीखा हो, यह स्वभाव था, और स्वभाव सीखा नहीं जाता।

उनकी उम्र तीस के क़रीब थी पर लगते ज़्यादा थे। यह बसों ने दिया था, रोज़ की धूप ने, और हर दिन नए लोगों के सामने खड़े होकर उन्हें किसी चीज़ पर यक़ीन दिलाने की मेहनत ने। उनकी पत्नी सावित्री एक सीधी-सादी औरत थीं। घर में दो छोटी बच्चियाँ थीं जिनकी कहानी अभी शुरू नहीं हुई थी।

बब्बन भैया का आँगन छोटा था पर साफ़। एक तुलसी, एक क्यारी में मिर्च के पौधे, और एक चारपाई जिस पर शाम को बब्बन भैया बैठते थे। इसी चारपाई पर मोहल्ले के बच्चे भी बैठते थे जब बब्बन भैया बैठने देते थे, और वे बैठने देते थे क्योंकि उन्हें बच्चों का आना-जाना अच्छा लगता था। अच्छा लगने के लिए कोई बड़ी वजह नहीं चाहिए होती।

तो लोटन उस आँगन में था। मोहल्ले के तीन-चार बच्चे पहले से थे। शाम का अँधेरा उतरने में अभी देर थी।

तभी बब्बन भैया आए।

हाथ में एक रंग-बिरंगी पन्नी थी। शहरी पन्नी। भारी, इतनी कि दोनों हाथों में पकड़ी थी। उनके चेहरे पर एक भाव था जो पहले कभी नहीं देखा था, उत्साह और एक हल्का-सा डर, दोनों एक साथ। वह डर जो उस आदमी को होता है जो कुछ बड़ा ख़रीद लाया हो और जिसे अब यक़ीन नहीं है कि सही था या नहीं, और सावित्री क्या कहेंगी।

पन्नी आँगन में ज़मीन पर रखी। बच्चों की आँखें उस पर टिक गईं। रंग-बिरंगी थी, लाल था उसमें, पीला था, और बीच में अंग्रेज़ी के कुछ अक्षर थे। बच्चों के लिए अंग्रेज़ी अक्षर रहस्य होते हैं और रहस्य की चीज़ें हमेशा ज़्यादा सुंदर लगती हैं उनको जो उन्हें नहीं समझते।

बब्बन भैया ने रस्सी खोलनी शुरू की। कई गाँठें थीं, हर गाँठ में थोड़ा वक़्त लगा। बच्चे चुप थे, एक भी नहीं बोला। रस्सी खुली। पन्नी खुली। नीचे एक सादी सफ़ेद पन्नी थी। वह भी हटी।

और तब वह बक्सा सामने आया।

लाल और क्रीम रंग का। चमकता हुआ। उसकी सतह पर एक चिकनापन था जो लोटन ने पहले किसी चीज़ पर नहीं देखा था। एक तरफ़ गोल छेद, दूसरी तरफ़ बटन, ऊपर एक तार जैसी चीज़ जो कहीं नहीं जाती थी, और सामने एक छोटा शीशा जिसके पीछे नंबर लिखे थे। जिसका धड़ नहीं था। जिसकी ज़बान नहीं थी।

"ये क्या है, भैया?"

बब्बन भैया ने जवाब नहीं दिया।

उन्होंने बक्से को उठाया, मेज़ पर रखा, और एंटीना सीधा किया। एंटीना झुका था और सीधा करने में थोड़ी मेहनत लगी क्योंकि यह पहली बार था, उन्हें भी नहीं पता था कि कितना सीधा करना है। फिर एक बटन घुमाया। हल्की क्लिक की आवाज़। फिर कुछ नहीं। फिर एक खड़खड़ाहट।

बब्बन भैया ने डायल घुमाया।

वह छोटा पहिया, जिसे घुमाने पर शीशे के पीछे एक सुई हिलती थी, धीरे, जैसे कोई किसी अनजान दरवाज़े को थोड़ा-थोड़ा खोल रहा हो, यह देखने को कि भीतर क्या है।

सुई एक नंबर से दूसरे पर सरकती गई, और हर नंबर पर एक अलग आवाज़ निकली, जैसे हर नंबर के पीछे एक अलग दुनिया छुपी हो। कहीं खड़खड़ाहट थी, बस खड़खड़ाहट, बेमतलब। कहीं कोई बोल रहा था, ज़ोर से, ऐसे जैसे बहुत दूर से चीख़कर कुछ कह रहा हो। कहीं कोई औरत हँस रही थी, वह हँसी जो किसी और के घर की लगती थी, किसी और की ज़िंदगी की। कहीं सिर्फ़ शोर था, ऐसा शोर जिसमें कोई मतलब नहीं था, बस आवाज़ों का एक जंगल।

बच्चों ने एक साथ "अरे" कहा।

फिर डरे। फिर एक-दूसरे को कोहनी मारी, उस डर को छुपाने के लिए जो छुपाया नहीं जा रहा था। कुछ बच्चे तो इतना डरे कि वहीं से भाग गए, नंगे पाँव, मुड़कर भी नहीं देखा, जैसे पीछे कोई भूत लगा हो, और शायद उनके लिए वह भूत ही था, एक ऐसी आवाज़ जिसे किसी देह ने नहीं बोला, किसी मुँह ने नहीं निकाला, बस एक डिब्बे से आई थी, बिना किसी के वहाँ बैठे।

फिर एक जगह डायल रुका।

पहले एक हल्की सरसराहट। फिर बाजे की आवाज़। फिर एक गाना। मेरे महबूब क़यामत होगी।

उस बक्से में, जिसका धड़ नहीं था और जिसकी ज़बान नहीं थी, एक आवाज़ थी।

लोटन ने बोल सुने। हिंदी थी, समझ में आए। पर बोल उस वक़्त मायने नहीं रखते थे। मायने वह आवाज़ रखती थी जो उन बोलों को कह रही थी। उस आवाज़ में कुछ था जिसका नाम लोटन के पास नहीं था। दर्द जैसा, पर दर्द नहीं था। ख़ुशी जैसा, पर ख़ुशी नहीं थी। कुछ ऐसा जो आदमी के भीतर होता है पर जिसे वह अकेले नहीं जानता, किसी आवाज़ के मिलने पर पहचानता है।

लोटन चुप खड़ा था। उसकी आँखें रेडियो पर थीं।

सीने के पास, जहाँ हड्डियाँ मिलती हैं, वहाँ एक खिड़की थी। यह खिड़की पहले बंद थी। इतनी बंद कि लोटन को यह भी नहीं पता था कि खिड़की है। पर अब वह खुल गई थी, हल्की सी, और उससे एक हवा अंदर आ रही थी। गर्म नहीं थी, ठंडी नहीं थी, बस हवा थी, उस हवा जैसी जिसका कोई स्वाद नहीं होता और जो भीतर जाकर भी कुछ बदल रही होती है।

सावित्री चौखट पर खड़ी थीं। उन्होंने अपने पति की तरफ़ देखा।

"इसमें क्या क्या आता है?"

बब्बन भैया कुछ देर चुप रहे, रेडियो को देखते रहे। फिर बोले, "सब आता है।"

सब। यह शब्द लोटन के भीतर जाकर बैठ गया। सब। गाने, ख़बरें, आवाज़ें, कहानियाँ, एक छोटे-से लाल और क्रीम रंग के बक्से में।

अँधेरा उतरने लगा। सावित्री के चूल्हे से रोटी सिकने की गंध आ रही थी, आँगन में गाय के गोबर की हल्की महक थी जो हमेशा रहती थी, और इन सबके ऊपर रेडियो की आवाज़ थी। तीनों चीज़ें एक साथ, तीनों मिलकर एक ऐसा वक़्त बना रही थीं जो लोटन की पूरी ज़िंदगी में फिर ठीक वैसा नहीं लौटेगा, हालाँकि वह यह नहीं जानता था।

एक गाना ख़त्म हुआ, दूसरा शुरू हुआ। उसी आवाज़ में। तब लोटन ने पूछा।

"भैया, ये कौन गा रहा है?"

बब्बन भैया के चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कान आई, वह मुस्कान जो उनके चेहरे पर कभी-कभी आती थी और जल्दी चली जाती थी।

"किशोर कुमार।"

"किशोर कुमार।" लोटन ने धीरे से दोहराया। नाम उसकी ज़बान पर आया, फिर उतरा, फिर वापस आया। लोटन को नाम पसंद थे, पर अपने नाम से लगाव नहीं था। दूसरों के नामों से लगाव था। और कुछ नाम ऐसे होते हैं जो पहली बार सुनने में ही जाने-पहचाने लगते हैं।

"ये कहाँ रहते हैं?"

बब्बन भैया ने उसे ध्यान से देखा। सवाल अजीब लगा। बच्चे ऐसे सवाल नहीं पूछते। बच्चे पूछते हैं कि गाना अच्छा लगा कि नहीं, कि क्या वे रेडियो छू सकते हैं। गायक कहाँ रहता है यह बड़ों का सवाल है। पर लोटन ने पूछा था।

"बंबई में।"

"बंबई।" उसने पहले यह शब्द कहीं सुना था पर नहीं पता था कि बंबई कहाँ है। उसके लिए दुनिया बालमपुर से शुरू होती थी और मैनपुरी पर ख़त्म होती थी।

उससे आगे भी कुछ है यह पता था, पर वह इतना दूर और इतना अलग था कि उसके बारे में सोचना दिमाग़ की सीमा से बाहर था।

"तो यहाँ कैसे आए?"

बब्बन भैया ने रेडियो की तरफ़ इशारा किया।

"रेडियो से।"

लोटन ने रेडियो को देखा। उस बक्से को जिसका धड़ नहीं था और जिसकी ज़बान नहीं थी। पर वह बोल रहा था, और अब बंबई से बोल रहा था। मतलब यह था कि रेडियो एक रास्ता है, ऐसा रास्ता जिस पर पैर नहीं चलते, आवाज़ें चलती हैं। यह बात उसके भीतर एक नई तरह की रोशनी लेकर आई जिसे उसने किसी को नहीं बताया, क्योंकि बच्चे ऐसी बातें नहीं बताते। वे उन्हें भीतर रखते हैं और भीतर रखी हुई बातें आगे चलकर बड़ी होती हैं।

बब्बन भैया ने रेडियो बंद किया। बटन घुमाया, क्लिक की आवाज़ आई, और वह आवाज़ जो भीतर थी वह बाहर आ गई। भीतर ख़ालीपन था। लोटन ने उसे महसूस किया। यह पहली बार था जब उसे ख़ालीपन का अहसास हुआ। बाद में यह कई बार होगा, अलग-अलग वजहों से, पर पहली बार उसी शाम हुआ था।

"भैया, फिर कब बजेगा?"

"कल।"

"कब?"

"शाम को।"

लोटन ने सिर हिलाया। शाम तक का इंतज़ार। एक पूरा दिन। उसने तय किया कि कर लेगा।

"जाते हैं।"

"जा। घर जा। देर हो रही है।"

"कल आएँगे।"

बब्बन भैया मुस्कुराए। इस बार मुस्कान थोड़ी देर रुकी।

"आ जाना।"

लोटन निकला। आँगन से गली में। बालमपुर में बिजली नहीं थी, गली में अँधेरा था। पैरों के नीचे धूल थी, हवा में हल्की सर्दी थी, ऊपर तारे थे। तारों पर लोटन की नज़र कभी नहीं जाती थी, वे रोज़ रहते थे और जो रोज़ रहता है उस पर ध्यान नहीं जाता। पर उस रात ध्यान गया। शायद इसलिए कि भीतर जो खिड़की खुली थी वह बाहर भी कुछ नया दिखा रही थी। उसने सोचा कि क्या बंबई में भी ये ही तारे हैं। फिर सोचा कि होंगे। फिर सोचा कि किशोर कुमार भी इन्हें देखते होंगे। यह सोच बहुत बड़ी थी और बड़ी सोचें बच्चों को जल्दी थका देती हैं। उसने सोचना बंद किया और चलता रहा।

घर का दरवाज़ा दिखा। अँधेरा था, भीतर से फूलमती की आवाज़ आ रही थी, चूल्हे का धुआँ था। रोज़ का दृश्य था।

लोटन घर पहुँचा। दरवाज़े पर रुका।

भीतर ढिबरी जल रही थी। आँगन में रामखेलावन बैठे थे, बीड़ी और वे दोनों सुलग रहे थे। उनकी आँखें दरवाज़े पर थीं। यह आदत थी। घर का कोई बाहर हो तो दरवाज़े को देखते रहते, चाहे इंतज़ार हो या न हो। आदत और चिंता में बहुत कम फ़र्क़ होता है, कभी-कभी बिलकुल भी नहीं।

लोटन ने एक पैर डेहरी के भीतर रखा।

"कहाँ था?"

आवाज़ में वह भारीपन था जो तब होता है जब आदमी जवाब जानता हो और पूछ फिर भी रहा हो। लोटन ने यह भारीपन पहले भी सुना था।

"बब्बन भैया के यहाँ।"

"इतनी रात तक?"

"रेडियो सुन रहा था।"

"रेडियो।"

यह सवाल नहीं था।

रामखेलावन ने बीड़ी फेंकी। उठे, उस तरह जैसे पत्थर हिलता है, धीमे पर भारी। चप्पल उठाई। रबर की, पुरानी, किनारे घिसे हुए, रोज़ पहनी जाती थी वही। लोटन भागा नहीं। उसके पैर वहीं रहे जहाँ थे। भागने के बाद भी लौटना है, और लौटने पर वही होगा जो अभी होने वाला है।

चप्पल पड़ी। एक बार। पीठ पर।

दूसरी बार। थोड़ी ज़्यादा।

"मुजरा सुनने का टाइम है और खेत जाने में नानी मरती है ? खेत का काम है, घर का काम है। यह सब कौन करेगा?"

लोटन चुप रहा।

तीसरी बार चप्पल उठी। पर रामखेलावन का हाथ हवा में रुक गया। लोटन ने ऊपर देखा। रामखेलावन की आँखें उससे मिलीं और फिर एक तरफ़ हट गईं। चप्पल नीचे आई, पर पीठ पर नहीं, ज़मीन पर।

"जवाब दो।"

"हम करेंगे।"

"तो आज क्यों नहीं किया?"

जो जवाब थे वे सब झूठ लगते थे। तो उसने कुछ नहीं कहा। चुप रहना भी एक जवाब है, यह माँ से सीखा था।

रामखेलावन फिर बैठ गए। बीड़ी उठाई।

"कल से सीधे घर आओगे।"

"हाँ।"

रामखेलावन ने सुना। फिर बीड़ी का धुआँ छोड़ा। दोनों जानते थे कि यह "हाँ" क्या थी, पर इस वक़्त यही कहा जा सकता था। फूलमती भीतर थीं। उन्होंने सब सुना था। आँगन की तरफ़ खुलने वाली खिड़की पर खड़ी थीं, हाथ चौखट पर। हर चप्पल जो लोटन की पीठ पर पड़ी थी वह उनके सीने पर पड़ी थी। यह भी एक तरह की मार होती है, अलग, और शायद ज़्यादा गहरी। जब लोटन भीतर आया तो उन्होंने एक बार उसे देखा, ऊपर से नीचे तक। चोट दिखाई नहीं दी। चप्पल की मार ऐसी होती है, बाहर निशान नहीं छोड़ती, भीतर छोड़ती है। यह फूलमती जानती थीं। थाली निकाली। रोटी रखी। सब्ज़ी कद्दू की थी। लोटन को कद्दू पसंद नहीं था पर आज उसने कुछ नहीं कहा। भूख नहीं थी, पर माँ ने जो रखा वह खाना था। बिना खाए उठना एक और तरह की बेइज़्ज़ती होती जो माँ को लगती, और माँ को यह लगे, यह उसके बस का नहीं था। उसने खाया, धीरे-धीरे, एक कौर चबाता, रुकता, अगला कौर। फूलमती सामने ज़मीन पर बैठी थीं, चुप। उनकी चुप्पी में एक नर्मी थी जिसे लोटन ने पहचाना। खाना ख़त्म हुआ। पानी पिया। मुँह धोया।

कमरे में दो चारपाइयाँ थीं। एक पर सूरज लेटा था। एक आँख खुली जब लोटन आया।

"दर्द है?"

"थोड़ा।"

"अगली बार जल्दी आ जाना।"

"हाँ।"

सूरज ने आँख बंद कर ली। इन चार वाक्यों में जो आना था आ गया।

लोटन लेट गया। चारपाई की रस्सी ढीली थी, पीठ धँसती थी। पीठ पर अभी भी हल्का दर्द था पर वह दर्द बड़ा नहीं था। उसने ऊपर देखा। खपरैल की छत थी और एक कोने में एक छिपकली थी। रोज़ वहाँ रहती थी। लोटन उसे जानता था। उसने उसका कोई नाम नहीं रखा था। नाम रखने का काम उसका नहीं था। नाम तो ख़ुद उसके पास भी ठीक से नहीं था। छिपकली हिलती नहीं थी। पड़ोस के कमरे से ढिबरी की टिमटिमाती रोशनी आ रही थी और उसमें छिपकली की पूँछ चमकती थी।

लोटन ने आँखें बंद कीं। नींद नहीं आई।

वह आवाज़ भीतर थी।

किशोर कुमार। वह नाम। वह आवाज़।

और वह जगह, सीने के पास जहाँ हड्डियाँ मिलती हैं, वह अब भी खुली थी। उसने हाथ छाती पर रखा। धड़कन थी, और धड़कन के साथ कुछ और भी, एक हल्का-सा भर जाना, जैसे कोई ख़ाली घड़ा धीरे-धीरे भरने लगा हो, बिना किसी के डाले। दर्द नहीं था। पर वह जगह खुली थी, खुली रहना चाहती थी, और लोटन को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि इस खुले रहने का क्या किया जाए।

उसने बंबई के बारे में सोचा।

उस आदमी के बारे में जो वहाँ रहता था, जिसकी आवाज़ रेडियो से आती थी पर जिसका चेहरा लोटन ने कभी नहीं देखा था। बंबई कैसी होगी। क्या वहाँ भी कोमल बजरंगी जैसे लोग सुबह गली में चालीसा पढ़ते होंगे। शायद नहीं। शायद वहाँ बहुत सारे रेडियो होंगे, हर घर में, हर दुकान में, जैसे यहाँ हर घर में चूल्हा

होता है। शायद किशोर कुमार ख़ुद वहीं कहीं घूमते होंगे, बाज़ार में, चाय की दुकान पर, जैसे कोई भी आदमी घूमता है, बिना यह जाने कि एक गाँव में, एक रात, एक लड़का उसकी आवाज़ की वजह से अपने भीतर कुछ खुला हुआ महसूस कर रहा है।

यह सोचना उसे अच्छा लगा।

फिर उसने अपने नाम के बारे में सोचा।

लोटन। यह नाम उस रात और भी बेकार लगा, उससे भी छोटा जितना वह हमेशा लगता था। किशोर। कुमार। ये दो शब्द एक साथ कितने बड़े लगते थे, कितने पूरे। जिस आदमी की आवाज़ में वह सब था जो वह सब था, उसका नाम भी उसी तरह का होना चाहिए था। और लोटन, यह एक शब्द कितना छोटा था, कितना मामूली, जैसे किसी ने जल्दी में रख दिया हो, बिना सोचे।

उसने सोचा कि उसका भी कोई और नाम होना चाहिए। ऐसा नाम जो उसने ख़ुद चुना हो, किसी और के दिए हुए नाम जैसा नहीं, अपना।

प्रेम।

यह शब्द आया। कहाँ से आया, यह वह नहीं जानता था। बस आया, जैसे कुछ शब्द बिना बुलाए आ जाते हैं, ठीक उस वक़्त जब उनकी ज़रूरत होती है। और अच्छा लगा।

प्रेम। और कुमार।

प्रेम कुमार।

यह नाम बना उसी रात, उसी चारपाई पर, उसी ढीली रस्सी में जो हर हिलने के साथ चरमराती थी। उसने इसे कहीं लिखा नहीं, किसी से कहा नहीं। बस भीतर रख लिया, जैसे कोई गुप्त ख़ज़ाना रखा जाता है, ऐसी जगह जहाँ कोई देख न सके पर जो हमेशा अपनी रहे। कोई उसे प्रेम कुमार नहीं बुलाएगा। सब लोटन ही

बुलाएँगे, और वह जवाब देगा, जैसे हमेशा देता था। पर भीतर वह जानता था कि अब वह सिर्फ़ लोटन नहीं रहा।

थोड़ी हँसी आई। इतनी छोटी कि सूरज ने भी नहीं सुनी, इतनी हल्की कि सिर्फ़ रात ने महसूस की।

नींद आई, धीरे-धीरे, जैसे नींद आती है जब भीतर कुछ सुलझ गया हो, कुछ नाम पाकर शांत हो गया हो।

जो आख़िरी बात याद रही वह यह थी कि कल शाम को वह फिर बब्बन भैया के यहाँ जाएगा। और उसके बाद हर शाम। और जब तक वह जाता रहेगा, वह आवाज़ उसके भीतर बजती रहेगी। और जब तक वह आवाज़ बजती रहेगी, वह जगह खुली रहेगी। और जब तक वह जगह खुली रहेगी, वह जो भी चीज़ उसने उस रात बनाई थी, वह बना रहेगा, चुपचाप, किसी को बताए बिना, बस उसके अपने भीतर।

रात गहरी हुई। बालमपुर सोया।

पर एक चारपाई पर, एक लड़का जागता रहा थोड़ी देर और, अपने नए नाम को मन में दोहराते हुए, जैसे कोई पहली बार सीखा हुआ शब्द दोहराता है, डर से कि भूल न जाए।

कोमल बजरंगी अपने घर में सो रहे थे, अगले दिन की चालीसा के लिए तैयार। बजरू अपनी झोंपड़ी में सो रहा था और सपने में भी शायद कुएँ के पास ही था। रामखेलावन आँगन की उसी चारपाई पर थे जो उनकी थी, बीड़ी का आख़िरी सिरा बुझ चुका था, हाथ एक तरफ़ लटका था।

और कुबेर सिंह अपनी बड़ी चारपाई पर सो रहे थे। उनके बग़ल में एक रेडियो रखा था। लाल और क्रीम रंग का, बंद। बालमपुर में वह भी था जिसके पास

रेडियो था, और उसके लिए वह एक बंद बक्सा था जो सोते वक़्त बग़ल में रखा जाता था।

रामखेलावन के घर में फूलमती अभी जाग रही थीं। सब समेट दिया था पर बैठी थीं तुलसी के पास, अँधेरे में। उन्होंने तुलसी से कुछ कहा, धीरे से, इतना धीरे कि शायद तुलसी ने भी ठीक से न सुना हो।

लड़के को सँभालना।

यह प्रार्थना थी। और प्रार्थनाएँ उसी वक़्त की जाती हैं जब आदमी को लगता है कि आगे जो आने वाला है उसे वह अकेले नहीं थाम सकता।

अगली सुबह कोमल बजरंगी फिर निकले। वही चालीसा थी, वही गली थी, वही आवाज़ थी। पर लोटन के लिए वह आवाज़ उस सुबह थोड़ी अलग सुनाई दी। ऐसा नहीं था कि कोमल बजरंगी ने कुछ बदला हो। उन्होंने नहीं बदला था। पर जब भीतर कोई खिड़की खुल जाती है तो बाहर की हर आवाज़ एक नए कोण से आती है।

फूलमती सबसे पहले उठी थीं, जैसे रोज़। चूल्हा जला, तुलसी को पानी मिला, हाथ जुड़े। रामखेलावन साढ़े पाँच पर उठे, मुँह धोया, बीड़ी माँगी। शिवकुमार उठा और सूरज को साथ लेकर खेत की तरफ़ निकल गया। रानी ने अपना टीन का डिब्बा खोला, आज लाल और हरा चुना।

लोटन सबसे आख़िर में उठा। उठते ही आँख ऊपर गई। छत की तरफ़। छिपकली अभी भी उसी कोने में थी। उसने उसे एक पल देखा। फिर मुस्कुराया। छिपकली हिली नहीं।

स्कूल जाते वक़्त पूरब रास्ते में मिला।

"कहाँ थे कल शाम को?"

"बब्बन भैया के यहाँ।"

"क्या कर रहा थे?"

लोटन एक पल रुका। कुछ बातें बताने की होती हैं और कुछ अपने पास रखने की। यह बात कहाँ रखनी है यह उसने अभी तय नहीं किया था। पर पूरब दोस्त था।

"रेडियो सुन रहा था।"

"रेडियो?" पूरब की आँखें बड़ी हुईं। "बब्बन भैया के पास रेडियो है?"

"कल लाए हैं।"

"यार हमें भी देखना है। आजतक कभी नहीं देखा।"

"शाम को आ जाना।"

स्कूल में दिन वैसे ही बीता जैसे बीतता था। शुक्ला जी ने हिंदी पढ़ाई। उस दिन एक कविता थी। लोटन ने पहले भी कविताएँ पढ़ी थीं, पर पढ़ना और सुनना दो अलग काम होते हैं, और उस दिन पहली बार उसे लगा कि इन शब्दों में कुछ है जो समझा जा सकता है। शुक्ला जी की थकी हुई आवाज़ में कविता चल रही थी और लोटन उन शब्दों को उस आवाज़ की तरह सुनने की कोशिश कर रहा था जो कल रात रेडियो से आई थी। नहीं हुआ। शुक्ला जी की आवाज़ में वह नहीं था। पर यह कोशिश नई थी और नई कोशिश का होना भी कुछ होना है।

गणित के पीरियड में ध्यान भटका। यह पहले भी होता था। पर पहले जब ध्यान भटकता था तो वह कहीं नहीं जाता था, बस इधर-उधर होता था। उस दिन ध्यान एक ख़ास जगह गया। बब्बन भैया के आँगन में। रेडियो के पास। शिवशरण मिसिरा ने न्यूटन उठाया पर उस दिन किसी ने ग़लत जवाब नहीं दिया इसलिए न्यूटन को काम नहीं मिला। क़ुरबान अली आए और चले गए।

छुट्टी हुई तो लोटन सीधे घर आया। आज पटरी की तरफ़ नहीं गया।

फूलमती ने देखा।

"आज जल्दी?"

"हाँ।"

"भूख लगी है?"

"हाँ।"

खाना खाया। फिर आँगन में बैठ गया। शाम होने में देर थी। उसने देखा कि वक़्त कितना धीरे चलता है जब किसी को जल्दी होती है। यह भी नया था। पहले वक़्त के धीरे या तेज़ चलने पर ध्यान नहीं गया था। रामखेलावन खेत से लौटे। उन्होंने लोटन को आँगन में बैठा देखा। कुछ नहीं कहा। पर देखा ज़रूर। शाम होते-होते पूरब घर के पास आकर खड़ा हो गया था। दोनों चले।

"रेडियो में क्या क्या आता है?"

"सब आता है।"

"सब क्या मतलब?"

"गाने। बातें। बहुत कुछ।"

"बब्बन भैया बैठने देंगे?"

"देंगे।"

"क्यों?"

"क्योंकि देंगे।"

पूरब ने यह मान लिया। कभी-कभी जवाब का मतलब यह होता है कि कोई और जवाब नहीं है।

बब्बन भैया थोड़ी देर बाद आए। देखा कि लोटन पहले से बैठा है। फिर पूरब को देखा।

"यह कौन है?"

"पूरब। मेरा दोस्त।"

बब्बन भैया ने पूरब को देखा। पूरब ने उन्हें देखा। दोनों ने कुछ नहीं कहा।

"बैठो।"

दोनों बैठे, चारपाई के पास ज़मीन पर। चारपाई बब्बन भैया की थी और उस पर बच्चे नहीं बैठते थे। यह नियम किसी ने बताया नहीं था, बस था। बब्बन भैया ने रेडियो चालू किया। डायल घुमाया। खड़खड़ाहट, फिर एक आवाज़, फिर दूसरी, फिर एक जगह रुके। एक गाना शुरू हुआ। यह किशोर कुमार नहीं थे। लोटन ने पहचाना।

"दूसरा है?"

"हाँ। अभी कोई और बजेगा।"

"किशोर कुमार कब बजेंगे?"

"जब बजेंगे तब बजेंगे।"

लोटन ने सिर हिलाया। आँखें रेडियो पर टिका दीं।

पूरब भी सुन रहा था। उत्सुक था, हैरान था, उसे अच्छा लग रहा था। पर लोटन को जो लगा था वह पूरब को नहीं लग रहा था। यह साफ़ था, किसी को बताने की ज़रूरत नहीं थी। ख़बरें आईं। राजनीति की, दूर के देश की, बारिश की। पूरब ऊब गया।

"घर चलें?"

"तुम जाओ। मैं रुकता हूँ।"

पूरब ने उसे एक पल देखा। फिर उठा। बब्बन भैया से कुछ नहीं कहा। बच्चे ऐसे ही जाते हैं, बिना अलविदा के। बब्बन भैया भी कुछ नहीं बोले। ख़बरें चलती रहीं। फिर ख़त्म हुईं। एक नया कार्यक्रम शुरू हुआ। और उसमें वह आवाज़ आई।

किशोर कुमार।

लोटन ने तुरंत पहचाना। उसका दिल थोड़ा तेज़ धड़का। यह तेज़ धड़कना पहले कभी नहीं हुआ था। उसने महसूस किया, एक पल डर भी गया, फिर डर चला गया। डर के ऊपर कुछ और था। तीन गाने एक के बाद एक बजे। तीनों उसी आवाज़ में। लोटन को लगा कि यह उसके लिए हो रहा है। यह बात सच नहीं थी। पर महसूस होती थी और महसूस होना भी एक तरह का सच होता है। बब्बन भैया कुछ देर लोटन को देखते रहे। उन्होंने अपनी बीड़ी जलाई, एक कश लिया, और फिर रेडियो को देखा। उनके मन में कुछ चल रहा था, पर वे वैसे आदमी नहीं थे जो मन की बात आसानी से बाहर आने दें। सावित्री ने भीतर से आवाज़ दी।

"घर जा। फिर देर हो जाएगी।"

लोटन उठा। पैरों में वही सुस्ती थी जो कल भी थी। आँगन से निकला। गली में अँधेरा था। उसके क़दम घर की तरफ़ चले। पर चलते हुए वह जानता था कि कल शाम को वह फिर यहाँ आएगा। और यह जानना, इस एक छोटे-से जानने ने उसकी चाल में कुछ डाल दिया था जो पहले नहीं था। इतना हल्का कि देखा नहीं जा सकता था, पर था।

घर पहुँचा। आँगन में रामखेलावन थे। हाथ में आधी जली बीड़ी थी।

"आ गया?"

"हाँ।"

"बब्बन के यहाँ था?"

"हाँ।"

रामखेलावन ने एक लंबा कश खींचा। धुआँ छोड़ा। कुछ नहीं कहा। चप्पल नहीं उठाई।

लोटन भीतर गया। फूलमती ने देखा। उनकी आँखों में एक सवाल था जो उन्होंने नहीं पूछा।

"खाना खाओगे कि खा के आये हो ?"

"खाऊंगा।"

रात को सूरज ने पूछा, "आज तो नहीं कूटे गए न ?"

"नहीं।"

सूरज ने आँख बंद की। सोचा कि बाप का मूड बदल गया है। मूड क्यों बदला यह उसकी समझ में नहीं आया। फिर सोचा कि समझने की क्या ज़रूरत है। नहीं पड़ी, अच्छा है। लोटन ने ऊपर देखा। छिपकली थी, आज एक कोने से दूसरे कोने में खिसक आई थी। शायद कुछ खाने के पीछे गई थी। शायद कुछ नहीं। छिपकलियों का काम कौन समझे। नींद आने से पहले उसने अपने आप से कहा, मन में, बहुत धीरे, "मैं प्रेम कुमार हूँ।" फिर हँसी आई, इतनी छोटी कि सूरज ने नहीं सुनी। यह राज़ था। उसका अपना। वह सो गया। अगले दिन वह फिर गया। उसके अगले दिन भी। और उसके अगले दिन भी। बब्बन भैया ने टोकना बंद कर दिया था, शायद उन्हें भी अच्छा लगता था कि कोई इतने ध्यान से सुनता है। रेडियो अकेले बजना एक तरह से अधूरा होता है, उसे सुनने वाला चाहिए। लोटन वह सुनने वाला बन गया था।

पाँचवें दिन रामखेलावन ने पूछा।

वे आँगन में बैठे थे, शाम ढल रही थी, बीड़ी जल रही थी, और लोटन अभी-अभी बब्बन भैया के यहाँ से लौटा था। नीम की आख़िरी छाँव आँगन के एक कोने में सिकुड़ आई थी।

"रोज़ क्यों जाता है?"

"रेडियो सुनता हूँ।"

"रोज़ सुनने की क्या ज़रूरत है?"

"है।"

"क्या है?"

लोटन ने एक पल सोचा। फिर कहा, "पता नहीं। पर है।"

रामखेलावन कुछ देर चुप रहे। यह जवाब उन्होंने पहले कभी नहीं सुना था। "पता नहीं" आमतौर पर बहाना होता है, पर इस "पता नहीं" में बहाना नहीं था। एक सच्चाई थी, कच्ची, बिना तराशी, पर सच्चाई। सच्चाई के सामने रामखेलावन कमज़ोर पड़ जाते थे।

"ठीक है। पर खेत का काम छूटना नहीं चाहिए।"

"नहीं छूटेगा।"

रामखेलावन उठकर भीतर चले गए। यह झूठ था, दोनों जानते थे। पर बात आगे नहीं बढ़ी।

थोड़ी देर बाद फूलमती बाहर आईं।

"बापू ने मना नहीं किया?"

"नहीं।"

"अच्छा है।"

फूलमती कुछ देर खड़ी रहीं, आँगन की उस जगह पर जहाँ अभी तक रामखेलावन बैठे थे। फिर उन्होंने कहा, "रेडियो में जो आता है, सब सच नहीं होता।"

लोटन ने उनकी तरफ़ देखा। "क्या मतलब?"

"मतलब तू बाद में समझेगा।"

फूलमती भीतर चली गईं। लोटन वहीं खड़ा रहा। उसे उस वक़्त इस बात का मतलब नहीं समझ आया। पर यह बात हवा में रही, उस हवा में जो आँगन में देर तक रहती है जब चूल्हे का धुआँ बुझ जाता है और रात उतरने लगती है।

माघ बीता। फागुन आया।

फागुन की हवा में एक मिठास होती है जो माघ में नहीं होती। होली नज़दीक आ रही थी, बच्चे रंग जमा कर रहे थे, बूढ़े होली की पुरानी बातें कर रहे थे, और औरतें गुझिया की तैयारी में थीं। बालमपुर में हर त्योहार का अपना तरीक़ा था और इन तरीक़ों को कोई नहीं बदलता था क्योंकि जो पुश्तों से चला आए उसे बदलने का अधिकार किसी के पास नहीं होता।

एक शाम बब्बन भैया ने पूछा, "तुम्हें किशोर कुमार ही क्यों पसंद हैं?"

लोटन ने सोचा। कुछ देर सोचा। फिर कहा, "बस।"

"बस क्या?"

"बस। पसंद है।"

बब्बन भैया हँसे। उन्होंने आगे नहीं पूछा।

एक और शाम लोटन ने पूछा, "भैया, अगर मैं भी किशोर कुमार जैसा गाऊँ तो?"

बब्बन भैया ने उसे देखा। फिर मुस्कुराए। "गाओ। कौन रोक रहा है?"

"नहीं। मेरा मतलब, अगर मैं इतना अच्छा गाऊँ कि लोग सुनें?"

बब्बन भैया चुप रहे। बीड़ी का धुआँ छोड़ा। फिर बोले, "यह तो वक़्त बताएगा।"

"कैसे बताएगा?"

"वक़्त सब बताता है। बस इंतज़ार करना पड़ता है।"

लोटन ने यह मन में रख लिया।

होली आई।

बालमपुर में होली रंगों से ज़्यादा शोर की होती थी, और इसमें कोई बुराई नहीं थी, बल्कि यही बालमपुर की होली की पहचान थी, जैसे हर गांव की होली की अपनी पहचान होती है, कहीं रंग ज़्यादा होता है, कहीं भांग ज़्यादा, कहीं गाना ज़्यादा, बालमपुर में शोर ज़्यादा था, ढोल बजते थे इतने ज़ोर से कि पेड़ों पर बैठी चिड़ियां उड़ जातीं, फाग गाए जाते थे इतनी तल्लीनता से कि गाने वालों को ख़ुद नहीं पता होता कि वे क्या गा रहे हैं, बस गा रहे हैं, और गाने में जो बेसुरापन था वह भी होली का हिस्सा था, क्योंकि होली वह दिन है जब बेसुरा भी सुरीला हो जाता है और बदसूरत भी ख़ूबसूरत, यही होली का कमाल है कि वह सब कुछ बदल देती है, एक दिन के लिए, बस एक दिन, और फिर सब वैसा ही हो जाता है जैसा पहले था।

पीपल के नीचे चौपाल लगी थी।

उस दिन कोमल बजरंगी का दरबार जमा था, और दरबार में वही पुरानी इज़्ज़त उन्हें मिल रही थी जो पायलट होने के नाम पर मिलती थी, एक ऐसी इज़्ज़त जिसकी बुनियाद ख़ुद कोमल बजरंगी ने नहीं रखी थी, गांव ने रखी थी, और बरसों की दोहराई के बाद अब यह झूठ इतना पुराना हो गया था कि सच जैसा महसूस होता था, उस सच जैसा जिसे जाँचने की ज़रूरत किसी को कभी नहीं पड़ी।

ठीक उसी वक़्त ऊपर से एक जहाज़ गुज़रा। आवाज़ भारी थी, गूंजती हुई, ऐसी जैसे आसमान ख़ुद बोल रहा हो। चौपाल में सबकी गर्दनें ऊपर उठ गईं, आँखों पर हाथ आए धूप रोकने के लिए, पर आसमान नीला था और बेदाग़, जहाज़ कहीं दिखा नहीं, शायद बादलों के पार था, शायद इतना ऊँचा था कि दिखना मुमकिन ही नहीं। पर आवाज़ आ रही थी, और बालमपुर के लिए यही काफ़ी था।

कोमल बजरंगी ने गर्दन उठाई, आँखें सिकोड़ीं, जैसे कोई पुराना शिकारी हवा में शिकार की आहट सूँघता है, और बड़े अधिकार से सिर हिलाते हुए बोले, "मालवाहक है।"

यह दो शब्द चौपाल में किसी फ़तवे की तरह गिरे। मालवाहक है, यानी सामान ले जा रहा है, यानी नीचे से, बिना देखे, सिर्फ़ आवाज़ से बता दिया गया कि ऊपर क्या जा रहा है। ताली बजी, वह ताली जो गांव में किसी पायलट रहे आदमी के सामने ही बजती है, ज़ोर से, बिना किसी शक के, क्योंकि शक करने की हिम्मत किसी में नहीं थी, और न होती, क्योंकि जो चीज़ दिखी ही नहीं उसके बारे में जो कह दो वही सच मान लिया जाता है, यही इस खेल का सबसे पुराना नियम है।

पंडित रामअवतार मिसिरा, जिन्हें दूसरों की तारीफ़ करने में उतना ही सुख मिलता था जितना दूसरों को सुनकर, बोल पड़े, "देखा, इसे कहते हैं अनुभव। बजरंगी भाई साहब ने नीचे से ही देखकर बता दिया मालवाहक है, हम तो कभी न बता पाते।" तारीफ़ सुनकर कोमल बजरंगी फैले, जैसे आटे में पानी पड़े तो फैलता है, और फैलकर उन्होंने उड़ने की पूरी कहानी सुना दी, हनुमान जी से शुरू करके पुष्पक विमान तक, ऐसे यक़ीन से जैसे कोई प्रोफ़ेसर लेक्चर दे रहा हो, और इस लेक्चर में विज्ञान भी था, धरम भी, इतिहास भी, और सबसे ज़्यादा कोमल बजरंगी थे, खरे और बेमिसाल। चौपाल में फिर तालियाँ बजीं, क्योंकि कोमल बजरंगी की हर बात पर ताली बजना एक रिवाज था, और रिवाज से बालमपुर कभी नहीं हटता।

ठीक उसी वक़्त कुबेर सिंह पहुंच गए।

कुबेर सिंह के आने की एक अलग तासीर थी, जैसे चौपाल में किसी ने ठंडा पानी डाल दिया हो, सब कुछ एक पल को रुक गया, ढोल रुका, फाग रुकी, कोमल बजरंगी के पुष्पक विमान की उड़ान रुकी, और लोगों की नज़रें कुबेर सिंह की तरफ गईं। कुबेर सिंह ठाकुर थे, ज़मींदार थे, गांव में उनकी वही जगह थी जो पीपल के पेड़ की थी, पुरानी, गहरी, हिलाओ तो न हिले, और उस जगह को वे

उसी अधिकार से भरते थे जिस अधिकार से पीपल का पेड़ अपनी छाया फैलाता है, बिना किसी से पूछे, बिना किसी की इजाज़त से। पीछे बजरू मचिया लेकर खड़ा था, वह मचिया जो कुबेर सिंह के लिए आती थी, क्योंकि कुबेर सिंह ज़मीन पर नहीं बैठते थे, ज़मीन पर बैठना उनके लिए वैसा ही था जैसे राजा का सिंहासन से उतरना, नहीं होता, कभी नहीं, और बजरू वह आदमी था जो सिंहासन लेकर चलता था, हर जगह, हर वक़्त।

चौपाल से कुछ लोग उठे, नीचे आए, और कुबेर सिंह के पैर छुए। यह पैर छूना एक रिवाज था, उम्र का नहीं, हैसियत का, कुबेर सिंह उम्र में कई लोगों से छोटे थे पर हैसियत में सबसे बड़े, और हैसियत के सामने उम्र झुकती है, यह गांव का नियम है, अनलिखा, अनकहा, पर इतना पक्का कि लिखे हुए से भी ज़्यादा। सबने पैर छुए, एक एक करके, वह पैर छूना जो श्रद्धा नहीं, रिवाज है, और रिवाज से कोई नहीं हटता।

सिवाय कोमल बजरंगी और पंडित रामाअवतार मिसिरा के।

कोमल बजरंगी ने पैर नहीं छुए। वे अपनी जगह बैठे रहे, वही संतोष, वही अधिकार, वही चाय का प्याला। कोमल ब्राह्मण थे, और ब्राह्मण ठाकुरों के पैर नहीं छूते, यह नियम था, वह नियम जो हज़ारों साल पुराना था, जो मनु ने बनाया था या किसी और ने, पर जो अभी भी चल रहा था, बालमपुर में, उस पीपल के नीचे, उस चौपाल में, जहां एक आदमी जो कभी हवाई जहाज़ के पास नहीं गया वह पायलट था, और एक आदमी जो ज़मीन का मालिक था वह राजा, और ब्राह्मण दोनों से ऊपर, यही वर्ण का खेल था जो खेला जा रहा था, सदियों से, बिना रुके, बिना थके, और इस खेल में हर किसी की जगह तय थी, और जो जगह तय है उसे बदलना वैसा ही है जैसे नदी का रास्ता बदलना, होता है, पर बहुत देर में, बहुत मेहनत से, और अक्सर नहीं होता।

कुबेर सिंह बैठे, मचिया पर, और कोमल बजरंगी अपनी जगह, और दोनों के बीच वह फ़ासला था जो जाति का है, जो दिखता नहीं पर होता है, जो शब्दों में नहीं आता पर हवा में है, चाय में है, बैठने की जगह में है, खड़े होने में है, पैर छूने में है, और न छूने में भी।

उसके बाद तास खेली गई।

तास की गड्डी कुबेर सिंह के पास हुआ करती थी, और सिर्फ़ उन्हीं के पास, गाँव में और किसी के पास नहीं। यह बात अजीब लगे पर अजीब नहीं थी, क्योंकि तास रखना एक हैसियत थी, जैसे जीप रखना, जैसे ट्रांज़िस्टर रखना, और हैसियत सबके पास नहीं होती। कुबेर सिंह तास तीन मौकों पर निकालते थे, होली, दशहरा, दीवाली, और बस। बाकी दिन गड्डी बंद रहती, ताले में, जैसे कोई ख़ज़ाना हो जो ख़ास मौकों पर ही खुले। और इस खोलने में एक दरबार था, एक मेहरबानी, एक एहसान, कि देखो, कुबेर सिंह ने तास खिलवाई, कुबेर सिंह ने इजाज़त दी।

और लोग खेलते थे, उस कृपा में, उस एहसान में। कोई नहीं कहता कि तास तो बाज़ार में दो रुपये की मिलती है, कोई भी ख़रीद सकता है। यह बात सबको पता थी, पर कोई नहीं कहता, क्योंकि कहने से कुबेर सिंह की मेहरबानी का अपमान होता, और मेहरबानी का अपमान गाँव में पाप है, उतना ही बड़ा जितना मंदिर में थूकना।

तास बंटी, पत्ते आए, खेल शुरू हुआ, और उस खेल में वही ढाँचा था जो गाँव में हर जगह था। कुबेर सिंह जीतें तो सब ख़ुश। कुबेर सिंह हारें तो कोई और जीते, पर ख़ुश फिर भी कुबेर सिंह ही रहते, क्योंकि हार में भी उन्हें यह तसल्ली रहती कि खेल उन्हीं की तास से खेला गया।

कोमल बजरंगी अपनी जगह बैठे, चाय पीते, तास नहीं खेलते। क्योंकि ब्राह्मण ठाकुर की तास नहीं खेलते, या शायद इसलिए कि कोमल बजरंगी को तास आती

नहीं थी। पर यह बात उन्होंने कभी नहीं बताई, और न बताना भी एक कला थी जिसमें कोमल बजरंगी माहिर थे, वह कला जो किसी भी हुनर से बड़ी है, यह जान लेना कि कब चुप रहना ख़ुद को बचाना है।

तभी किसी ने कुबेर सिंह को बताया कि गाँव में एक और रेडियो आया है। पासियों के मोहल्ले में।

कुबेर सिंह के कान खड़े हो गए।

उन्होंने अपने नौकर बजरू को पता करने को कहा। वह नहीं चाहते थे कि उनकी कोई बराबरी करे। और जलन और गुस्से में बैठे रहे, फिर उनका मन ताश की गड्डी से हट गया, जैसे एक रेडियो की ख़बर ने इतने सालों की उनकी बादशाहत में पहली बार दरार डाल दी हो।

होली की रात धीरे-धीरे गहरी होती रही। और बब्बन का रेडियो बजता रहा। पर उस रात कुबेर सिंह ने अपने रेडियो को हाथ नहीं लगाया, जैसे वह भी कोई अछूत पासी का रेडियो हो जिसे छूने से कुछ बिगड़ जाएगा।

फागुन ख़त्म हुआ। चैत आया।

चैत में गेहूँ की कटाई शुरू होती थी, और रामखेलावन के परिवार के लिए यह सबसे व्यस्त समय होता था। शिवकुमार पूरे दिन खेत में रहता। सूरज भी जाता, रामखेलावन भी जाते। लोटन भी जाता, पर लोटन को थोड़ा कम काम मिलता क्योंकि वह स्कूल भी जाता था। उसका काम होता था बँधी हुई पूलियों को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना। यह काम भारी था, पर वह करता था बिना शिकायत के, जैसे शिकायत करना उसकी फ़ितरत में ही नहीं था।

खेत से लौटकर शाम को वह नहाता, खाना खाता, और फिर बब्बन भैया के यहाँ जाता।

थका होता था। पर रेडियो की आवाज़ सुनकर थकान कम हो जाती थी। यह कैसे होता था, यह उसे नहीं पता था, पर होता था। थकान कम होना भी एक तरह की दवा है, और यह दवा रेडियो में थी, उस छोटे से डिब्बे में जो उसकी पूरी दिनभर की मेहनत को कुछ देर के लिए भुला देता था।

एक शाम जब वह बब्बन भैया के आँगन में बैठा था तो एक बड़ी बात हुई। रेडियो पर वह गाना बजा जिसे लोटन बहुत बाद तक याद रखेगा। मेरे महबूब क़यामत होगी। इसमें कुछ था जो लोटन को बहुत भीतर तक छू गया। बोल समझ में नहीं आए पर एक एहसास था जो था। महबूब क्या होता है यह उसे नहीं पता था। क़यामत क्या होती है यह भी नहीं। पर इन दो शब्दों के बीच कुछ था जो था।

उसने बब्बन भैया से पूछा, "महबूब क्या होता है?"

बब्बन भैया ने उसे देखा। थोड़ी देर चुप रहे। फिर बोले, "जिससे प्रेम हो।"

"प्रेम क्या होता है?"

बब्बन भैया फिर चुप हुए। यह सवाल बड़ा था। एक नौ साल के बच्चे को इसका जवाब कैसे दिया जाए, यह वह नहीं जानते थे। फिर उन्होंने एक काम किया। उन्होंने जवाब नहीं दिया। उन्होंने रेडियो की तरफ़ इशारा किया।

"ये जो आ रहा है, यही है।"

लोटन ने रेडियो की तरफ़ देखा। फिर बब्बन भैया की तरफ़। फिर रेडियो की तरफ़। उसने यह जवाब अपनी समझ में रखा। यह जवाब उसके लिए काफ़ी था। प्रेम वह है जो रेडियो से आता है। यह सच नहीं था पर एक तरह का सच था और बच्चों के लिए इस तरह के सच ज़्यादा काम के होते हैं।

घर आते वक़्त उसने सोचा। प्रेम। उसका नाम भी तो प्रेम कुमार है। यह नाम उसने जन्म से रखा है, यानी उस रात से जब रेडियो पहली बार आया था। तो क्या वह ख़ुद प्रेम है? यह सोच उसे अजीब लगी पर अच्छी भी लगी। अगर वह ख़ुद प्रेम

है तो उसे प्रेम के बारे में सब पता होना चाहिए। पर उसे कुछ नहीं पता था। यह विरोधाभास उसने अपने भीतर रख लिया, बिना सुलझाए, क्योंकि कुछ चीज़ों को सुलझाने की ज़रूरत नहीं होती, वे अपने आप सुलझती हैं या कभी नहीं सुलझतीं और दोनों स्थितियाँ एक जैसी होती हैं।

उन्हीं दिनों एक और बात हुई । लोटन हमेशा की तरह बब्बन भैया के यहाँ गया। लोटन ने उस रात भी रेडियो सुना। उस रात वह आवाज़ फिर आई। किशोर कुमार। वह गाना नया था। लोटन ने पहली बार सुना। बोल थे, आके सीधी लगी दिल पे जैसे कटारिया, ओ सांवरिया ओये। लोटन को बोल पूरे समझ में नहीं आए। पर, ले गई मेरा दिल तेरी जुल्मी नज़रिया ओ गुजरिया ओये, वाली लाइन समझ में आई। ये लाइन उसके भीतर कुछ देर रही। या शायद उसका कोई एक हिस्सा अंदर रह गया। उस रात वह घर लौटा तो माँ ने एक काम किया जो उन्होंने पहले कभी नहीं किया था। उन्होंने उसे अपने पास बुलाया। वह बैठा। माँ ने उसके सिर पर हाथ फेरा।

"क्या हुआ अम्मा?"

"कुछ नहीं। बस ऐसे ही।"

लोटन को यह अजीब लगा। माँ का हाथ फेरना उसने पहले महसूस किया था, बहुत छोटे में, जब बीमार होता था। पर अब उसे बीमार न होने पर भी हाथ फेरा जा रहा था। उसने पूछा नहीं क्यों। माँ की कुछ बातें पूछी नहीं जातीं।

"लोटन।"

"हाँ।"

"रेडियो अच्छा है। पर बहुत मत डूब उसमें। समझ रहा है?"

"हाँ।"

"नहीं समझ रहा।"

"अम्मा? हम सब समझते है।"

"बस सुन ले। ज़्यादा डूबने से कभी कभी बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है।"

लोटन ने सिर हिलाया। पर समझा नहीं था पूरा। माँ की बात बड़ी थी और बड़ी बातें छोटे बच्चे एक बार में नहीं समझते। वह लेटा। आज छिपकली नहीं थी। शायद कहीं और चली गई थी। यह उसे थोड़ा अजीब लगा। छिपकली रोज़ रहती थी। आज नहीं थी। उसने सोचा कि छिपकली कहाँ गई होगी। फिर सोचा कि कहीं भी गई होगी। फिर सोचा कि छिपकलियाँ भी कहीं जाती हैं तो शायद कोई वजह होगी। पर वजह जानना उसके वश में नहीं था। उसने आँख बंद की। नींद आने से पहले वह आवाज़ फिर भीतर बजी। किशोर कुमार। आके सीधी लगी दिल पे जैसे कटारिया ओ सांवरिया ओये। यह पंक्ति उसके भीतर रही। और रही, और रही।

अगले दिन सुबह उठा तो पंक्ति अभी भी थी। यह नई बात थी। पहले गाने एक वक़्त के लिए होते थे, सुनकर भूल जाते थे। अब एक गाना भीतर रुक गया था। यह रुकना अच्छा लगा। स्कूल गया। पूरब रास्ते में मिला।

"आज तो काफी खुश लग रहे हो।"

"हाँ।"

"क्यों?"

"पता नहीं।"

"रेडियो सुनकर?"

"शायद।"

पूरब हँसा। "तुम तो रेडियो में डूब गए हो।"

लोटन रुका। माँ ने भी कल यही कहा था। डूबना। यह शब्द दो लोगों ने एक के बाद एक कहा था और दोनों ने अलग संदर्भ में। माँ ने चेतावनी की तरह, पूरब ने हँसी की तरह। पर शब्द एक ही था। उसने सोचा कि क्या वाक़ई वह डूब रहा है। डूबना अच्छा होता है या बुरा। पानी में डूबने से तो आदमी मरता है। पर रेडियो में डूबने से क्या होता है। शायद कुछ और। शायद रेडियो में डूबने से कुछ बनता है, मरता नहीं। यह सोच उसे अच्छी लगी।

उसने पूरब से कुछ नहीं कहा। बस मुस्कुराया।

स्कूल का दिन वैसे ही बीता जैसे हर दिन बीतता था।

वही घंटी, वही धूल, वही बेंचों पर खिंची हुई लकीरें। फ़र्क़ बस इतना था कि उस दिन शिवशरण मास्टर ने एक लड़के को न्यूटन से मारा। ज़ोर से। लड़का रोया, वैसे ही जैसे बच्चे रोते हैं, बिना सोचे, बिना समझे कि रोने से दर्द कम होता है या नहीं, बस रोते हैं क्योंकि देह को यही आता है। मास्टर रुके नहीं। बाकी बच्चे चुप बैठे रहे, जैसे यह भी पाठ का ही एक हिस्सा हो, जो किताब में नहीं लिखा पर रोज़ पढ़ाया जाता है।

यह नया कुछ नहीं था। पर उस दिन लोटन ने कुछ अलग देखा।

उसने देखा कि शिवशरण मास्टर के चेहरे पर एक तरह का सुख था। मारते हुए उनका हाथ नहीं, उनका चेहरा बोल रहा था। यह बात लोटन ने पहले भी देखी होगी, पर उस दिन समझ में आई, जैसे कोई बात बरसों आँखों के सामने रहे और एक दिन अचानक दिखने लगे।

उसे लगा कि मास्टर के भीतर कोई ऐसी जगह है जहाँ से यह सुख निकलता है।

फिर उसने सोचा।

हर आदमी के भीतर कोई न कोई ऐसी जगह होती है। उसके अपने भीतर रेडियो वाली जगह है, जहाँ बैठते ही सब ठीक लगता है, जहाँ दिन भर की धूल और

थकान भी थोड़ी देर के लिए कहीं छिप जाती है। मास्टर के भीतर मारने वाली जगह है, जहाँ से उनका दिन पूरा होता है, जैसे कुछ लोगों का दिन भगवान के नाम से पूरा होता है और कुछ लोगों का किसी और के दर्द से। बाप के भीतर शायद रसगुल्ले वाली जगह है, वह दुकान के सामने से गुज़रते हैं तो क़दम अपने आप धीमे हो जाते हैं, और अगर जेब में पैसे हों तो चेहरा खुल जाता है, उस मिठास के एक पल के लिए। रसगुल्ले के बाद बीड़ी पीते हैं, जैसे मिठास को धुएँ से बराबर कर रहे हों, एक सुख को दूसरे सुख से ढक रहे हों। माँ के भीतर तुलसी वाली जगह है। सुबह सबसे पहले वहीं जाती हैं, पानी डालती हैं, पत्ते छूती हैं, जैसे दिन की शुरुआत वहीं से होती हो, उस एक पौधे से जो घर का सबसे शांत कोना है।

लोटन को लगा कि हर किसी के भीतर ऐसी एक जगह होती है, और वही जगह धीरे-धीरे आदमी को चलाती है, उसे बनाती है जो वह है।

यह बात उसके लिए नई थी। थोड़ी बड़ी भी थी, इतनी बड़ी कि वह उसे ज़्यादा देर तक पकड़े नहीं रख सका। तभी छुट्टी की घंटी बजी, और बच्चे उठकर बाहर निकलने लगे। वह भी उठ गया। घर जाने का समय हो गया था।

पटरी की तरफ़ गया। फिर घर आया। आज खेत पर जाना था। शिवकुमार ने पुकारा।

"लोटन, चल।"

वह गया। खेत में काम किया। पूलियाँ उठाईं। थक गया। पर थकान आज पहले जैसी नहीं थी। थकान के नीचे कुछ और था, कुछ जो उस दिन की सोच से बचा रह गया था, एक हल्की सी गर्माहट जो शरीर की थकान के बावजूद भीतर कहीं बनी रही।

शाम को घर आया। फिर बब्बन भैया के यहाँ जाने को निकला।

पर आज एक बात हुई।

बब्बन भैया घर पर नहीं थे।

सावित्री ने बताया।

"भैया तो मैनपुरी गए हैं। कुछ काम था।"

"कब लौटेंगे?"

"पता नहीं। शायद देर हो जाए।"

लोटन रुका। उसे क्या करना चाहिए यह तय नहीं हो पा रहा था। रेडियो वहाँ था, मेज़ पर, बंद। पर रेडियो को छूना नहीं था। बब्बन भैया के बिना रेडियो को छूने का अधिकार उसे नहीं था। यह नियम कहीं लिखा नहीं था पर वह जानता था।

"बैठ जा। आ जाएँगे।"

लोटन बैठ गया। आँगन में। चुप।

सावित्री अंदर चली गईं। लोटन रेडियो को देखता रहा। रेडियो बंद था, चुप था, उसमें कोई आवाज़ नहीं थी, और यह चुप्पी लोटन को किसी अनजान जगह पर खड़े होने जैसी लग रही थी, जहाँ रोज़ का एक सहारा अचानक हट गया हो।

बब्बन भैया देर रात तक नहीं लौटे। लोटन काफ़ी देर बैठा रहा। फिर सावित्री ने कहा कि अब घर जाओ, बहुत देर हो गई। लोटन उठा। चला गया।

एक पूरी रात किशोर कुमार के बिना, उस रेडियो के बिना, काटना मुश्किल था। फिर उसने धीरे-धीरे गाना शुरू किया, "मेरे महबूब क़यामत होगी।"

तभी छोटा भाई सूरज बोला, "सो जाओ भैया, नहीं तो बापू जाग गए तो वाकई में क़यामत हो जाएगी।"

लोटन फिर भी नहीं रुका। वह गाता रहा, और गाते-गाते सो गया।

नींद में किशोर कुमार आए थे। पर जब वह सुबह जगा, तो उसे किशोर कुमार की शक्ल याद नहीं रही। लाख कोशिशों के बाद भी याद नहीं आई, जैसे कोई सपना सुबह की रोशनी में घुल जाता है, बस एक एहसास छोड़कर, चेहरा नहीं छोड़ता।

शाम के इंतज़ार में अगला दिन भी बहुत मुश्किल से कटा। वह स्कूल नहीं गया। दिन भर लेटा रहा। सोता रहा। सोने से समय जल्दी कटता है, यह उसने उस दिन सीखा। वह सोता रहा।

अगले दिन वह बब्बन भैया के यहाँ गया।

रेडियो बज रहा था। लोटन बैठा। मोहम्मद रफ़ी गा रहे थे। फिर समाचार आए।

फिर किशोर कुमार आए।

गाने के बोल थे, "ये गलियाँ, ये चौबारा, भूल जाने को कहाँ जाएँ। दिल की घबराहट को हम, दबा पाने को कहाँ जाएँ।"

लोटन को पहली बार किसी गाने का एक-एक बोल ऐसे समझ आया जैसे वह बात उसी से कही जा रही हो। जैसे किशोर कुमार बंबई में बैठकर मैनपुरी के एक लड़के के बारे में सोच रहे हों, जिसका नाम लोटन है, जिसका बाप कल मारेगा क्योंकि आज वह बिना पूछे आ गया है। यह बात मानने में थोड़ी मुश्किल थी, पर लोटन ने मान ली, क्योंकि किशोर कुमार से बहस करने का मन किसी का भी नहीं होता।

बाहर आसमान में तारे टिमटिमा रहे थे। लोटन उन्हें देख रहा था।

और देखते-देखते एक बात उसके दिमाग़ में अटक गई।

बब्बन भैया ने एक बार बताया था कि किशोर कुमार बहुत बड़ा सितारा है। बंबई में रहता है। फ़िल्मों में गाता है। पैसा बरसता है उस पर। सितारा। यह शब्द लोटन के दिमाग़ में बैठ गया था। पर अब, इस वक़्त, आसमान की तरफ़ देखते हुए,

लोटन के दिमाग़ में एक सवाल आया, ऐसा सवाल जो किसी और के दिमाग़ में आता तो उसे हँसी आती, पर लोटन को नहीं आई।

सवाल यह था, आसमान में जो तारे टिमटिमा रहे हैं, वे तारे हैं। और बब्बन भैया जिन्हें सितारा कहते हैं, वे भी सितारे हैं। तो दोनों में फ़र्क़ क्या है। दोनों एक ही चीज़ हैं, या अलग-अलग चीज़ें हैं, या एक ही चीज़ के दो नाम हैं। और अगर अलग हैं, तो ऊपर वाले तारे चुप क्यों हैं और नीचे वाले सितारे गाते क्यों हैं। और अगर एक ही हैं, तो किशोर कुमार आसमान में क्यों नहीं हैं, और तारे रेडियो पर क्यों नहीं आते।

यह सवाल लोटन ने किसी से पूछा नहीं। पूछता भी तो जवाब किसके पास था। बब्बन भैया मलहम बेचते थे, तारों का इलम उनके पास नहीं था। बाप के पास तो रेडियो तक का इलम नहीं था, तारे क्या बताते। और मास्टर साहब से पूछते तो वे कक्षा में डाँट देते, कहते कि किताब पढ़ो, तारे आसमान में रहने दो।

सो लोटन ने किसी से नहीं पूछा।

बस तारों को देखता रहा, चुपचाप, उस उम्मीद में जो शायद ख़ुद उसे भी पूरी तरह समझ नहीं आ रही थी, कि कोई तारा अपने आप गाने लग जाए, और तब बात साफ़ हो जाए, बिना किसी से पूछे, बिना किसी जवाब के इंतज़ार के, सिर्फ़ एक तारे के गाने से।

रात हुई।

रात हुई तो लोटन को याद आया कि घर भी जाना है। घर वह जगह है जहां से सुबह निकलते हैं और जहां शाम लौटते हैं, यह बात इतनी पुरानी है कि कोई इस पर सवाल नहीं उठाता। लोटन भी नहीं उठाता था। लोटन उठा। बब्बन भैया ने कुछ नहीं कहा। रेडियो अब भी बज रहा था। वह घर लौटा।

रास्ते में अंधेरा था। ऊपर वही तारे टिमटिमा रहे थे, चुप, बेआवाज़, बिना किसी रेडियो के। और लोटन के दिमाग में किशोर कुमार के बोल बज रहे थे। ये गलियां, ये चौबारा, भूल जाने को कहां जाएं।

घर के दरवाज़े पर पहुंचकर वह एक पल रुका। बस एक पल। फिर अंदर चला गया। बाप ने उस रात कुछ नहीं कहा। शायद सो रहे थे। शायद जाग रहे थे और कुछ कहने का मन नहीं था। या शायद उन्हें भी लग रहा हो कि कुछ बातें कल पर छोड़ देनी चाहिए। कल पर बातें छोड़ना भी एक हुनर है।

सोने से पहले उसने आज एक नई बात की। उसने अपने आप से कहा, ज़ोर से नहीं, मन में, "मैं प्रेम कुमार हूँ।" यह दूसरी बार था। पहली बार वह दिन था जब रेडियो आया था। दूसरी बार आज। और दोनों के बीच एक फ़र्क़ था। पहली बार में यह एक खेल जैसा था। दूसरी बार में यह एक हक़ीक़त जैसा था। नाम जब बार बार दोहराया जाए तो वह अपना हो जाता है। यह बात उसे किसी ने नहीं बताई थी पर वह जान रहा था।

प्रेम कुमार। इस नाम में अब एक भार था। एक मतलब था। यह नाम उसने अपने भीतर रखा हुआ था और इसे वह किसी को नहीं बताएगा। यह नाम बढ़ेगा। एक दिन यह नाम बाहर आएगा। पर वह दिन अभी दूर है। अभी तो वह नौ साल का है। नौ साल का लड़का जो लोटन भी है और प्रेम कुमार भी। एक नाम बाहर का, एक नाम भीतर का। और दोनों के बीच जो फ़ासला है वह उसकी पूरी ज़िंदगी का फ़ासला है।

बालमपुर सोने लगा था। फूलमती ने तुलसी के सामने अपनी रोज़ की चुप प्रार्थना दोहराई। रामखेलावन ने आख़िरी कश खींचकर बीड़ी का बुझा सिरा अंधेरे में फेंक दिया। शिवकुमार करवट बदलता रहा, उस शादी के बारे में सोचता हुआ जिसमें उसकी अपनी मरज़ी से ज़्यादा बाकी सबकी मरज़ी शामिल थी। सूरज पलटकर सो गया, और रानी अपने फ़ीतों के डिब्बे को छाती से लगाए सपनों में

उतर गई। कोमल बजरंगी अपनी खटिया पर लेटे, चार बजे की चालीसा के लिए जैसे पहले से ही तैयार। बालमपुर अपनी उसी पुरानी, बेपरवाह नींद में डूब गया जिसमें वह बरसों से डूबता आया था।

और एक छोटे कमरे में, एक छोटी चारपाई पर, वह बच्चा पड़ा था जिसे बाहर लोटन कहा जाता था और जो भीतर प्रेम कुमार हो चुका था। सीने के पास, जहाँ हड्डियाँ मिलती हैं, वह जगह अब भी खुली थी, और उस खुली जगह में एक आवाज़ बजती रहती थी, किशोर कुमार की आवाज़, और उस आवाज़ के पीछे एक शहर था जिसे बंबई कहते थे, जहाँ तक अभी कोई रास्ता नहीं था। पर उस बच्चे ने ख़ुद से एक बात तय कर ली थी, बिना किसी से कहे, बिना किसी क़सम के, कि रास्ता एक दिन बनेगा, और यह तय करना उस चुप्पी में हुआ था जो रोज़ रात सोने से पहले उसके भीतर उतरती और बजती रहती थी।

यह कहानी की शुरुआत भर थी।

आगे एक लड़की आने वाली है जिसका नाम मुनिया होगा।

आगे एक पतंग आने वाली है, जो किसी पेड़ की डाल पर अटक जाएगी, हवा से छूटी हुई, बिना यह जाने कि उसका अटकना भी किसी की आँखों में बरसों पुराना एक सवाल फिर से जगा देगा।

आगे एक स्टेशन होगा।

और एक साइकिल होगी जो एक रात पश्चिम की तरफ़ निकल जाएगी, और लौटकर नहीं आएगी, जैसे कुछ रास्ते सिर्फ़ जाने के लिए बने होते हैं, लौटने के लिए नहीं।

यह सब आगे की बात थी। अभी दूर थी। अभी अनजानी थी।

पर यह सब शुरू हुआ इसी रात से।

इस एक रेडियो से। इस एक आवाज़ से। और एक नौ साल के लड़के से, जिसने उस रात अपने भीतर अपना दूसरा नाम रख लिया था, बहुत चुपके से, बिना किसी को बताए, जैसे कोई बीज मिट्टी में दबाया जाता है, यह जाने बिना कि वह कब अंकुरित होगा, कैसा पेड़ बनेगा।

और वह लड़का आगे उम्र भर उसी नाम का होकर जीने वाला था, भीतर से, चुपचाप, चाहे बाहर की दुनिया उसे कुछ भी कहती रहे, चाहे माँ बुलाए, चाहे बाप पुकारे।

क्योंकि कुछ नाम बाहर के लोग देते हैं, और कुछ नाम इंसान ख़ुद चुनता है, अकेले में, किसी रात, किसी अधूरी समझ के साथ। और दूसरा नाम अक्सर पहले से ज़्यादा सच्चा होता है, क्योंकि वह किसी और की मर्ज़ी से नहीं आता, अपनी मर्ज़ी से आता है।

बे-तार यंत्र

बब्बन भैया के आँगन में जो नीम था जो इतना पुराना था कि बब्बन भैया के पिता भी उसे बुज़ुर्ग कहते थे। एक तुलसी का चौरा था जिस पर सावित्री सुबह पानी डालती थीं और शाम को दिया जलाती थीं, और इन दोनों कामों के बीच वह जो कुछ कहती थीं वह हवा से कहती थीं, किसी और से नहीं। यह आँगन उस साल से लोटन का ठिकाना बन गया था। किसी ने बुलाया नहीं था। वह अपने आप आया था, जैसे गौरैया आती है, जैसे शाम को गायों के खुरों की आवाज़ आती है।

शाम को पाँच बजे वह आ जाता। झाड़ू उठाता और आँगन के एक कोने से शुरू करता। झाड़ू के बाद साइकिल की बारी।

बब्बन भैया के पास एक हर्क्यूलिस साइकिल थी जो उनके बड़े भाई मुंशी जी ने उन्हें मेट्रिक पास करने पर दी थी और जिसके बारे में बब्बन भैया का कहना था कि यह साइकिल उनकी पत्नी से पुरानी है और उनकी पत्नी से ज़्यादा वफ़ादार है। यह बात वे सावित्री के सामने भी कहते थे और सावित्री हर बार हँसती थीं, जैसे पहली बार सुन रही हों। लोटन साइकिल को एक पुराने कपड़े से पोंछता था जो सावित्री ने दिया था और जिसमें कुर्ते के बटन का एक पुराना छेद था। वह पहले हैंडल पोंछता, फिर सीट, फिर कैरियर, फिर ताज़ पर पड़ी धूल, फिर चेन का ढक्कन, और अंत में पहियों की तीलियाँ, एक-एक करके, जैसे कोई रामायण का पाठ कर रहा हो।

साइकिल के बाद बाज़ार।

सावित्री एक परची पर हिंदी में लिखकर देती थीं, उस हिंदी में जिसमें तिलक तिरछा होता था और मात्राएँ कभी ऊपर चढ़ जातीं कभी नीचे गिर जातीं। पाँच सौ ग्राम आलू, सौ ग्राम मँझली, हरी मिर्च, और थोड़ा अदरक। वह "थोड़ा" शब्द बड़ा बेईमान था। पहले दिन लोटन ढाई रुपए का अदरक ले आया था और सावित्री ने आँखें बड़ी करके कहा था कि इतना अदरक कौन खाएगा। लोटन ने चुपचाप कहा कि आपने थोड़ा लिखा था। सावित्री ने कहा कि थोड़ा यानी पच्चीस पैसे का, ज़्यादा से ज़्यादा पचास, यह ढाई रुपए तो सेरभर है। लोटन ने तब से थोड़ा को पच्चीस पैसे के बराबर मान लिया था। इस बात का कोई पंचनामा नहीं हुआ पर दोनों की समझ में यह बात बैठ गई।

इस सब का कोई हिसाब नहीं था। बब्बन भैया न तनख़्वाह देते, न खाने के पैसे। कभी-कभी सावित्री गुड़ दे देती थीं, कभी पुरानी बनियान, कभी एक चवन्नी और कहतीं जा कुछ खा लेना। पर यह सब इतना बेहिसाब था कि इसे मेहनताना नहीं कहा जा सकता था। लोटन ने कभी माँगा नहीं था।

वह चाहता था तो बस एक चीज़।

शाम को रेडियो के पास बैठने को मिल जाए। बस यही।

और इसके लिए वह झाड़ू लगाता, साइकिल पोंछता, बाज़ार जाता, चिट्ठियाँ डाकख़ाने पहुँचाता। यह सब एक साधना थी और इस साधना का फल था वह शाम जब बब्बन भैया आख़िरी बस से लौटकर हाथ-मुँह धोते, फिर रेडियो चालू करते। पहले ख़बरें आती थीं। ख़बरें लोटन के लिए बोझ थीं जिन्हें भुगतना पड़ता था, क्योंकि ख़बरों के बाद विविध भारती चालू होती थी और तब लगभग हर रोज़ कोई गाना आता था। गाना कोई भी हो, लोटन के लिए वह एक खिड़की थी जिसमें से वह कहीं कूद जाता था, बालमपुर से बहुत दूर, मैनपुरी से भी आगे, इटावा से भी परे, उस जगह जहाँ वह कभी नहीं गया था।

बब्बन भैया का रेडियो से एक अजीब रिश्ता था। वे उसे अपने से अलग कोई चीज़ नहीं मानते थे। रेडियो उनके लिए एक बूढ़ा रिश्तेदार था जो कभी-कभी खाँसता है, कभी ठीक से नहीं बोल पाता, पर जिसकी बात फिर भी सुननी पड़ती है। वे उसे रोज़ सुबह एक सूती कपड़े से पोंछते थे और पोंछते हुए बुदबुदाते थे, आज कैसे हो, तबियत ठीक है न। रेडियो जवाब नहीं देता था पर बब्बन भैया यह मानकर चलते थे कि जवाब आ गया। जब भीतर से खड़खड़ाहट आती, वे उसे धीमे से थपथपाते, जैसे किसी छोटे बच्चे की पीठ थपथपा रहे हों, और कहते, अरे भाई, क्यों गुस्सा हो रहे हो। और कुछ सेकंड बाद रेडियो सचमुच ठीक हो जाता था। लोटन ने यह कई बार देखा था।

एक शाम की बात।

लोटन आँगन में बैठा था। पैर मोड़े हुए, घुटनों पर हाथ रखे हुए। वह बैठक नहीं थी, कोई आसन नहीं था, बस वह तरीक़ा था जिस तरह ग़रीब घरों के लड़के बैठते हैं जिन्होंने ज़मीन को ही अपना आसन माना है।

रेडियो पर किशोर कुमार गा रहे थे।

वह गाना लोटन ने पहले भी सुना था, कई बार। हर बार सुना और आगे बढ़ गया। गाने आते हैं, जाते हैं, कुछ ठहरते हैं कुछ नहीं ठहरते। पर उस शाम वही पुराना गाना, जो इतनी बार बिना किसी हलचल के गुज़र गया था, भीतर कहीं जाकर ठहर गया। ठहरा और कुछ खोल दिया।

और लोटन के आँसू बहने लगे।

वह रो नहीं रहा था। यह फ़र्क बहुत ज़रूरी है। रोने में आवाज़ होती है, सिसकी होती है, कंधे काँपते हैं। यह कुछ नहीं था। बस आँसू थे, जो अपने आप बह रहे थे, बिना किसी की इजाज़त के, बिना किसी चेतावनी के। जैसे किसी ने भीतर कोई नल खोल दिया हो। और वह नल बंद करना लोटन को नहीं आता था। आता भी तो उस पल बंद करने की कोशिश नहीं करता, क्योंकि कोई नहीं देख रहा था।

और यह बात ज़रूरी है। अगर कोई देख रहा होता तो लोटन यह न बहने देता। उसने बचपन से जाना था कि आँसू बचाने की चीज़ हैं, अकेले में ही बहाने की। पर कोई नहीं देख रहा था। सो आँसू बह गए।

यह रोना किस बात का था?

यह उस गाने का रोना नहीं था। किशोर कुमार बस एक बहाना थे। बहाना छोटा होता है, रोना बड़ा होता है। यह रोना बरसों पुराना था, वह रोना जो किसी आदमी के भीतर परत-दर-परत जमा होता जाता है, जैसे पुराने घर में धूल जमती है, जैसे तालाब में काई जमती है। और ऐसा जमा हुआ रोना किसी दिन किसी बहाने बाहर आता है।

उस शाम लोटन ने पहली बार ख़ुद को बाहर से देखा।

जो दिखा वह यह था। एक बच्चा था जो उस घर में पैदा हुआ था जहाँ जो होता था वह किस्मत था, जो नहीं होता था वह भी किस्मत था। बाप की लाठी थी दरवाज़े पर, माँ की दुआ थी तुलसी के सामने, और इन दोनों के बीच एक नाम था जो लोटन था और एक नाम था जो प्रेम कुमार था, और दोनों नाम उसके थे पर दोनों की दुनिया अलग थी। बाहर की दुनिया में वह लोटन था। भीतर की दुनिया में वह प्रेम कुमार था। और भीतर की दुनिया तक पहुँचने का एक ही रास्ता था, वह रेडियो था जो बब्बन भैया के आँगन की मेज़ पर रखा था।

आँसू बहते रहे। फिर रुक गए। जैसे आए थे, वैसे चले गए।

लोटन ने आस्तीन से मुँह पोंछा। रेडियो बज रहा था। शाम अभी ख़त्म नहीं हुई थी। बाहर बालमपुर अपनी रोज़ की शाम में था, गायें खूँटों की तरफ़ लौट रही थीं, चूल्हे जल रहे थे, कोमल बजरंगी न जाने किस घर के दरवाज़े पर किससे बात कर रहे थे। सब वैसा ही था जैसा कल था।

पर लोटन के भीतर कुछ थोड़ा हल्का हो गया था।

लोटन को उसके माँ बाप ने जन्म तो दिया था, पर जन्म देने के पीछे कोई ख़्वाहिश नहीं थी, कोई सपना नहीं था, बस एक मज़दूर और तैयार हो गया था, हाथों की एक और जोड़ी जो किसी और के खेत में चल सके, एक और पीठ जो बोझ उठाने के लिए बनी हो, एक और पेट जिसे रोटी की तलाश में उमर भर भटकना पड़े, और इस तसवीर में गाने, सपने, किशोर कुमार, तारों और सितारों का सवाल, इन सबकी कोई जगह नहीं थी, क्योंकि घर वालों के हिसाब से ये चीज़ें ग़रीब के बच्चों में होती ही नहीं। शिवकुमार उसी रास्ते पर जा चुका था, छह दर्जे के बाद स्कूल का मुँह उसने दोबारा नहीं देखा था और सीधे खेत में उतर गया था। सूरज भी उसी रास्ते पर जाने वाला था, सिर्फ़ उमर भर की देर थी। रामखेलावन ख़ुद वही रास्ता चल रहे थे जो उनके बाप ने चला था, और उनके बाप ने वही जो उनके दादा ने। यह कोई रिवायत नहीं थी, यह ग़रीबी थी, और रिवायत और ग़रीबी में बस यही फ़र्क़ होता है कि रिवायत को कोई तोड़ सकता है अगर उसमें हिम्मत हो, ग़रीबी को तोड़ने के लिए हिम्मत से बढ़कर किसी और चीज़ की ज़रूरत होती है जो उस घर में सिरे से थी ही नहीं। गाने, सपने, ये सब उस रास्ते के किनारे पड़ी चीज़ें थीं जिन्हें रास्ते पर चलने वाला आदमी उठाता नहीं, उठाने की फ़ुर्सत उसके पास होती ही नहीं। लोटन उठाता था। और यही उसकी असली मुश्किल थी।

घर में बस इतने पैसे थे कि तन ढका जा सके, और ढकना भी बड़ा शब्द था, क्योंकि तन फिर भी दिखता रहता था, कभी कुर्ते की बाँह छोटी पड़ जाती, कभी पाजामा घुटनों से ऊपर चढ़ने लगता, कभी कमीज़ में एक छेद हो जाता जो हफ़्ते दर हफ़्ते बढ़ता जाता, पर इसी को ढकना कहा जाता था क्योंकि इससे ज़्यादा की उम्मीद किसी ने रखी ही नहीं थी। खिलौने लोटन ने कभी नहीं देखे थे, एक भी नहीं, और जो बच्चे खिलौनों से खेलते थे वे उसे किसी और दुनिया के लगते थे जिन्हें वह दूर से देखता था, पास जाने की हिम्मत कभी नहीं हुई। मेले में भी वह नहीं जाता था। साल में एक बार मेला लगता, पूरा गाँव उमड़ पड़ता, बच्चे चूरन

खाते, गुब्बारे लेते, झूला झूलते, और फूलमती हर बार यही कहतीं कि मेले में भीड़ बहुत होती है, खो जाएगा, मत जा। यह बहाना था, और बहाने की असलियत यह थी कि मेले में हर चीज़ के पैसे लगते थे और घर में पैसे नहीं थे, पर लोटन ने कभी यह बहाना पकड़ा नहीं, क्योंकि कुछ बहानों की हक़ीक़त पूछ ली जाए तो घर में रोटी का सवाल उठ आता है, और रोटी का सवाल एक बार उठ जाए तो बहुत दिनों तक नहीं बैठता। और जाति की बात तो वह कुआँ कह चुका था, बजरू की वह आँखें कह चुकी थीं जो उस दिन एक झलक के लिए लोटन पर टिकी थीं, फूलमती का वह "वहाँ मत जाना" कह चुका था जो किसी सवाल का इंतज़ार किए बिना ही आ जाता था। यह सब लोटन के भीतर परतों में जमा था, सालों से, बिना किसी को बताए, बिना ख़ुद से भी कहे, जैसे पुराना दर्द हड्डियों में रह जाता है और आदमी उसके साथ जीना सीख लेता है। और उस शाम किशोर कुमार की आवाज़ ने उस दर्द को छू दिया था।

बब्बन भैया ने रेडियो बंद किया, इस वजह से नहीं कि उन्हें कुछ पता चल गया था, बल्कि इस वजह से कि गाना ख़त्म हो गया था, और उन्हें इतना ही पता था। उस रात लोटन घर लौटा तो कुछ बदला हुआ था, हालाँकि बदलाव दिखता नहीं था, माँ ने नहीं देखा, बाप ने नहीं देखा, पर भीतर कुछ हिल गया था, जैसे कोई बहुत पुरानी दीवार जो बरसों से दबाव झेलती आई हो, थोड़ी हिल जाए, गिरे नहीं, बस हिल जाए, और जो दीवार एक बार हिल जाए वह फिर कभी पूरी तरह वैसी नहीं रहती जैसी पहले थी।

स्कूल एक अलग कहानी थी।

बालमपुर के उस स्कूल का सरकारी नाम जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय था, पर गाँव में उसे पंडित का स्कूल कहा जाता था, क्योंकि उसके हेडमास्टर प्राणनाथ शुक्ला थे, और प्राणनाथ शुक्ला के बारे में गाँव की एक आम राय यह थी कि वह इंसान के रूप में भेजा गया एक दंड थे, ख़ास तौर पर बालमपुर के बच्चों को सबक़ सिखाने के लिए भेजा गया। लंबे थे, पतले थे, एक आँख में हल्का-सा

भेंगापन था जिससे ऐसा लगता था कि वह एक साथ दो बच्चों को देख रहे हैं, और उनकी आवाज़ ऐसी थी कि फुसफुसाते भी तो पाँच कमरे छोड़कर सुनाई देती। धोती पहनते थे, रोज़ धुली हुई, रोज़ इस्त्री की हुई, और उनकी पत्नी गाँव की एकमात्र औरत थीं जिनके पास कोयले वाली इस्त्री थी। उनका एक सिद्धांत था कि हर बच्चा बुनियादी तौर पर आलसी पैदा होता है और हर बच्चे को मारना धर्म है, और यह सिद्धांत उन्होंने किसी किताब से नहीं लिया था, किसी शास्त्र में नहीं पढ़ा था, बस उनके भीतर ऐसे बैठा था जैसे किसी ने बचपन में ही उनके कान में डाल दिया हो। उनके पास आम की एक बेंत थी जिसे वह हर तीन महीने में बदलते थे, क्योंकि बेंत लड़कों की पीठों पर घिसते घिसते धीरे धीरे छोटी पड़ जाती।

लोटन उनके सबसे प्रिय ग्राहक थे।

यह मज़ाक़ में नहीं कहा जा रहा। लोटन के पास मार खाने की एक काबिलियत थी जो उसकी उमर के हिसाब से बहुत ज़्यादा थी, वह मार खाता और उसकी आँख में पानी नहीं आता, और यही बात शुक्ला जी को सबसे ज़्यादा खलती थी, क्योंकि वह बच्चों को इसलिए मारते थे कि वे रोएँ, गिड़गिड़ाएँ, माफ़ी माँगें, और उनकी दुनिया की सबसे बड़ी नाकामी यह थी कि लोटन इनमें से कुछ नहीं करता था, मार खाकर खड़ा हो जाता, हथेली को ज़रा रगड़ता, अपनी जगह बैठ जाता, और फिर वही करने लगता जो पहले कर रहा था, जो अक्सर यह होता कि वह अपनी कॉपी में कोई गाना लिख रहा होता। एक बार निबंध का विषय आया था, हमारे देश के किसान, और शुक्ला जी ने कहा था कि इसमें भला कौन सी मुश्किल है, किसान खेती करते हैं, हमारे लिए अनाज उगाते हैं, उनके बिना देश भूखा मर जाए, बस इतना लिख दे। लोटन ने कॉपी निकाली, क़लम उठाई, लिखना शुरू किया, पर कॉपी में जो उतरा वह निबंध नहीं था, गाने की पंक्तियाँ थीं, हम तो चलते थे कि बस तेरी तलाश थी, जिसे हम खोजते थे वो तू ही है। शुक्ला जी पीछे से आए, कॉपी पर झाँका, उनके चेहरे का रंग बदला, वह कॉपी

को ऐसे घूरते रहे जैसे उसने कोई बड़ा धोखा किया हो, फिर बेंत उठी, फिर गिरी, लोटन की हथेली लाल हो गई, पर कॉपी फिर भी वही लिखती रही।

एक दिन शुक्ला जी ने पूछा, "सच सच बता, तू यह जानबूझकर करता है न, मुझे चिढ़ाने के लिए?"

लोटन ने सिर हिलाया, "ना जी, हम जानबूझकर नहीं करते।"

"तो फिर क्या है?"

लोटन कुछ देर चुप रहा। फिर बोला, "मेरे हाथ में गाना आ जाता है मास्टर जी।"

शुक्ला जी कुछ सेकंड के लिए चुप रह गए। फिर उन्होंने दो बेंत और मारे, पर उन बेंतों में पहले जितनी ताक़त नहीं थी।

मार सिर्फ़ स्कूल में नहीं पड़ती थी, घर में भी पड़ती थी, और फूलमती इन सब मारों के बीच एक चुपचाप बहने वाली नदी थीं। जब लोटन स्कूल से लौटता और उन पर नज़र पड़ती, वह बिना पूछे जान लेती थीं कि आज कुछ हुआ है, और तब वह दो रोटियाँ अलग से बना देती थीं, एक अलग थाली में, चुपके से उसके पास ला देती थीं। कभी उन रोटियों पर थोड़ा गुड़ होता, कभी थोड़ा अचार, कभी सिर्फ़ रोटी, पर उस रोटी में एक फ़र्क़ होता जो माँ की रोटी में ही होता है। लोटन समझता था कि यह फूलमती की तरफ़ से एक माफ़ी है, किस बात की माफ़ी, यह सवाल कभी पूछा नहीं गया, पर दोनों जानते थे कि माफ़ी ज़रूरी है। दुनिया लोटन को मार रही थी, फूलमती उसे रोटी दे रही थीं, और यह एक हिसाब था जो हर शाम बराबर हो जाता था।

अगहन का महीना था। बालमपुर के जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में वार्षिक उत्सव हर साल होता था। इसमें कुछ बड़ा नहीं था, भाषण होते थे, कविताएँ होती थीं, और अंत में शुक्ला जी ख़ुद एक लंबा भाषण देते थे जिसमें वे

बच्चों को बताते थे कि वे कितने आलसी हैं। यह भाषण हर साल होता था और हर साल बच्चे उसी तरह सुनते थे जैसे बारिश सुनते हैं।

उस साल रमेश, जो हर साल गाता था, दो दिन से खाँस रहा था। शुक्ला जी की चिंता हुई। वार्षिक उत्सव बिना गाने के अधूरा था। उन्होंने कक्षा में पूछा, कौन गाएगा। किसी ने हाथ नहीं उठाया। शुक्ला जी का चेहरा लाल होने लगा। दूसरी बार पूछा। फिर चुप्पी। तीसरी बार पूछने से पहले उन्होंने बेंत उठाया।

तब पीछे से, बहुत धीमी आवाज़ में, लोटन ने कहा, "हम गा लेंगे।"

शुक्ला जी पलटे। उनकी भेंगी आँख ने लोटन को पकड़ा।

"तू। तू क्या गाएगा। तू तो निबंध नहीं लिख सकता।"

"हम गाना जानते हैं जी।"

शुक्ला जी ने बेंत नीचे किया। कुछ देर सोचते रहे। फिर कहा, "ठीक है। शनिवार को वार्षिक उत्सव है। तैयार रह। अगर ठीक से गाया तो ठीक, और अगर नहीं गाया तो..." और यह कहते हुए उन्होंने बेंत हवा में लहराया।

घर में किसी को नहीं पता था। सूरज को नहीं, रानी को नहीं, फूलमती को भी नहीं। लोटन ने किसी को नहीं बताया था क्योंकि उसे पता था कि बताएगा तो मज़ाक़ होगा। और कुछ चीज़ें ऐसी होती हैं जिनका मज़ाक़ उठाया जाना बरदाश्त नहीं होता। बस पूरब को बताया था, जो उसका दोस्त था और जो उसे सुनना जानता था।

शनिवार आया।

स्कूल के मैदान में चार लकड़ी के तख़्ते जोड़कर मंच बनाया गया था। मंच पर एक टेबल थी, टेबल पर सफ़ेद कपड़ा था, और कपड़े पर एक माइक रखा था। माइक सच में माइक नहीं था। वह एक टीन का डब्बा था जिसे एक लकड़ी से बाँध दिया गया था ताकि देखने में माइक जैसा लगे। स्कूल के पास असली माइक ख़रीदने

के पैसे नहीं थे। इस नक़ली माइक के सामने बच्चे बोलते थे और उनकी आवाज़ बिना बढ़ाए ही पीछे तक पहुँच जाती थी क्योंकि मैदान छोटा था।

पहले एक छोटी लड़की ने कविता पढ़ी, बीच में भूल गई, शुक्ला जी ने याद कराया, उसने फिर से शुरू से पढ़ा। फिर एक लड़के ने देश के किसानों पर भाषण दिया, वही भाषण जो हर साल किसी न किसी से दिलवाया जाता था। फिर एक लड़के ने अंग्रेज़ी में कुछ पढ़ा जो किसी को समझ नहीं आया, ख़ुद उसे भी नहीं, पर शुक्ला जी ने ज़ोर से ताली बजाई थी इसलिए सबने बजाई।

और फिर लोटन की बारी आई।

वह मंच पर गया। उसके पैर थोड़े काँप रहे थे। उसने माइक के सामने खड़े होकर भीड़ को देखा। स्कूल के बच्चे, मास्टर, और पीछे कुछ गाँव वाले जो बस खड़े थे। उसका परिवार वहाँ नहीं था। लोटन ने सोचा कि यह अच्छा है।

उसने आँखें बंद कीं। एक पल के लिए लगा कि सब कुछ भूल गया। फिर उसने रेडियो की आवाज़ को याद करने की कोशिश की। वह आवाज़ जो हर शाम बब्बन भैया के आँगन से आती थी। उसने याद किया कि तलत महमूद पहला शब्द कैसे छोड़ते थे। कि मुकेश बीच में साँस कैसे लेते थे। कि किशोर कुमार पहली पंक्ति में कहाँ ठहरते थे।

और फिर उसने गाना शुरू किया।

वह गाना जो उसने कम से कम दो सौ बार सुना था, जो उसके भीतर इतनी बार उतरा था कि वह उसका हिस्सा बन चुका था। प्रेम और उस प्रेम के बोझ का गाना, जिसे वह नहीं समझता था पर जिसे महसूस करता था।

उसने पहली पंक्ति गाई।

मैदान में कुछ हुआ।

पीछे खड़ी लड़कियाँ जो बुदबुदा रही थीं, चुप हो गईं। सामने बैठे लड़के जो एक-दूसरे को कुहनी मार रहे थे, रुक गए। शिवशरण मिसिरा जो पहली पंक्ति में बैठे थे, उनकी आँख थोड़ी चौड़ी हुई।

लोटन गाता रहा। उसकी आवाज़ बड़ी नहीं थी, वह बहुत ऊँचे पर नहीं जा सकती थी, पर उसमें कुछ था जिसे समझाना मुश्किल है। एक पीड़ा थी, पर वह पीड़ा जो चीख़कर नहीं, धीरे-धीरे निकलती है, जैसे मटके से पानी की बूँद निकलती है। उसकी आवाज़ में कहीं कुछ काँप रहा था पर वह काँपना गीत का हिस्सा बन गया था, जैसे गीत को काँपना ही था।

दूसरी पंक्ति। तीसरी। पूरा अंतरा।

शिवशरण मिसिरा ने मुँह खोला। फिर बंद कर लिया। जो शब्द निकलने वाले थे वे उन्हें ग़लत लगने लगे इसलिए अंदर ही रख लिए। और फिर उन्होंने एक काम किया। वह बेंत जो उनके हाथ में था, उसे उन्होंने अपनी धोती की पाट के नीचे छुपा लिया। यह एक बहुत छोटी हरकत थी। शायद किसी और ने नहीं देखी।

लोटन ने देखी।

वह एक क्षण के लिए रुका। जैसे उसे विश्वास नहीं हो रहा कि यह वही शिवशरण मिसिरा हैं।

फिर उसने गाना पूरा किया।

मैदान कुछ क्षण चुप रहा। फिर ताली बजी। धीमी, जैसे लोग समझ नहीं पा रहे कि कितने ज़ोर से बजानी है। शिवशरण मिसिरा उठे। लोटन की पीठ पर हाथ रखा।

"बैठ जा।"

बस इतना। बैठ जा।

लोटन मंच से उतरा। एक किनारे जाकर बैठ गया। उसके हाथ काँप रहे थे, पर अब डर से नहीं।

शाम को घर लौटते वक़्त रास्ते में फूलमती मिलीं। कपड़े धोकर कुएं से लौट रही थीं, हाथ में कपड़े का थैला था। उन्होंने लोटन को देखा। लोटन ने उन्हें देखा।

फूलमती ने पूछा, "अच्छा गाया क्या आज?"

लोटन चौंका। "तुम्हें कैसे पता?"

फूलमती मुस्कुराईं। वह मुस्कुराहट जो माँओं की होती है और जिसे बेटे कभी पूरी तरह नहीं समझ पाते। उन्होंने कहा, "माँ को सब पता चल जाता है।"

रास्ते में रुककर उन्होंने लोटन के सिर पर हाथ फेरा। फिर आगे चली गईं।

लोटन कुछ देर वहीं खड़ा रहा। उसके भीतर जो चीज़ बन रही थी उसे अभी नाम नहीं मिला था, पर इतना पता था कि यह चीज़ न बेंत से मिटने वाली है, न किसी की नज़र से छिनने वाली है। यह उसकी थी।

घर पहुँचा तो रामखेलावन दीवार से टेक लगाए बैठे थे। उनकी आँख लोटन पर पड़ी। लोटन ठिठका। पर उस दिन वह नज़र नहीं आई जो आमतौर पर आती थी। रामखेलावन ने बस एक क्षण के लिए उसे देखा, फिर आँख हटा ली। कोई बोझ नहीं डाला। यह पहली बार था।

रसोई में गया। फूलमती ने रोटी दी। आज रोटी पर गुड़ नहीं था, अचार नहीं था। आज सिर्फ़ रोटी थी। और रोटी पर थोड़ा घी था, बहुत पतला-सा, पर घी था।

लोटन ने रोटी खाई। एक-एक कौर, धीरे-धीरे।

उस रात नींद आई तो सपने में गाना था। कौन-सा गाना था, यह अगले दिन याद नहीं आया। पर गाना था, पूरी रात।

अगले दिन स्कूल में शुक्ला जी ने लोटन की तरफ़ नहीं देखा। जानबूझकर नहीं देखा। हाज़िरी ली, निबंध का विषय बताया, बोर्ड पर लिखा, और नज़र चारों तरफ़ गई पर लोटन तक नहीं पहुँची। लोटन ने कॉपी खोली। आज उसने निबंध नहीं लिखा। उसके हाथ में गाना आ गया, वही जो उस रात से भीतर बज रहा था और जिसके बोल अभी पूरे नहीं हुए थे। कुछ पंक्तियाँ टूटी हुई आईं, कुछ जुड़ गईं। वह लिखता रहा।

शाम को बब्बन भैया के यहाँ ख़बरें आईं। पाकिस्तान से रिश्ते बिगड़ रहे थे। ताशकंद में बातचीत हो रही थी। लाल बहादुर शास्त्री जी वहाँ जाने वाले थे। रेडियो ने यह सब बताया उसी आवाज़ में जिसमें रेडियो बड़ी और छोटी सब बातें बताता है। लोटन ने सुना, क्योंकि ख़बरों के बाद गाना आता था। ख़बरें ख़त्म हुईं। विविध भारती आई।

और एक गाना शुरू हुआ जो लोटन पहले भी सुन चुका था, कई बार, पर उस शाम वह गाना कुछ अलग था। उसमें प्रेम और उस प्रेम के बोझ की बात थी, और उस शाम लोटन को लगा कि यह गाना उसके लिए ही है, ख़ास उसके लिए, और इसे सुनकर उसे कुछ करना है। क्या करना है, यह नहीं पता था।

सावित्री आईं, रेडियो के पास खड़ी हुईं, गाने की तर्ज़ पर हल्का-सा सिर हिलाया। उन्होंने लोटन को देखा, लोटन ने उन्हें देखा। दोनों ने कुछ नहीं कहा, पर सावित्री ने एक हल्की मुस्कुराहट दी।

उस शाम के बाद से कुछ बदल गया। लोटन अब रेडियो के पास सिर्फ़ सुनने के लिए नहीं बैठता था। सुनता था, याद रखता था, और भीतर कहीं कुछ बनता जाता था। जैसे किसान हर दिन थोड़ा-थोड़ा बीज डाले और किसी को न दिखे कि क्या बो रहा है।

नए साल की छुट्टियाँ थीं।

एक दिन फूलमती ने कहा कि गेहूँ पिसवाना है। रामनगर में चक्की है। शिवकुमार उस दिन मैनपुरी गया था, खाद लेने। तो लोटन गया।

रामनगर बालमपुर से ज़्यादा विकसित था।

वहाँ तेल की और आटे की चक्की थी।

गेहूँ रखकर लोटन लौट रहा था। शाम घिर रही थी। आसमान में वह नीलापन आ चुका था जो जाड़े की शामों में आता है, वह नीलापन जिसमें न दिन रहता है पूरी तरह, न रात आती है पूरी तरह, बस एक बीच का रंग जो ज़्यादा देर नहीं टिकता। हवा में धुआँ था, कहीं कोई चूल्हा जल रहा था, और गलियों में कुछ बच्चे अब भी खेल रहे थे, उस आख़िरी रोशनी को पकड़ने की कोशिश में जो हर शाम कुछ देर के लिए मिलती है और फिर छिन जाती है।

रामनगर जाने के दो रास्ते थे।

एक रास्ता बालमपुर और रामनगर को एक तिराहे से जोड़ता था। तिराहे पर बैरागी की दुकान थी, जहाँ से एक कच्ची सड़क दाहिने रामनगर की तरफ़ जाती थी, और एक बायीं सड़क बालमपुर की तरफ़, और इन दोनों से बना वह तिराहा एक तीसरे रास्ते को भी जन्म देता था जो सीधे मैनपुरी की तरफ़ जाता था। एक छोटी सी दुकान थी, तीन बेंच, एक काउंटर, और काउंटर पर एक स्टोव जो हमेशा जलता रहता था, जिस पर चाय हमेशा उबलती रहती थी। बैरागी की चाय अच्छी नहीं थी, इसमें दूध कम होता था और चीनी ज़्यादा, पर बैरागी की दुकान का वह अड्डा था जहाँ शाम को लोग इकट्ठा होते थे और बातें होती थीं, उस तरह की बातें जो किसी काम की नहीं होतीं पर जिनके बिना गाँव का दिन पूरा नहीं होता।

रामनगर जाने का दूसरा रास्ता खेतों के बीच एक पगडंडी से होकर जाता था, स्कूल के पीछे वाले खेत से गुज़रता हुआ।

लोटन पगडंडी वाले रास्ते से रामनगर जा रहा था। उसकी चाल धीमी थी। मन अभी भी उस गाने में था जो उसने रेडियो पर सुना था, उन्हीं बोलों में डूबा हुआ, जैसे पाँव चलते हों एक रास्ते पर और मन किसी और रास्ते पर भटकता रहे।

रामनगर में घुसते ही गली के मोड़ पर एक हैंडपंप था, तीन-चार साल पहले का नया, और गाँव वालों के लिए यह बड़ी राहत थी, उस राहत जैसी जो किसी छोटी सी सुविधा से मिलती है जिसकी आदत अभी पूरी तरह नहीं पड़ी।

हैंडपंप पर उस शाम एक लड़की पानी भर रही थी, पीठ लोटन की तरफ़ थी, और उसके साथ एक और लड़की खड़ी थी, बाल्टी पकड़े।

लोटन ने ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। वह आगे बढ़ने लगा, उसी धुन में, उसी गाने में, बिना यह जाने कि उस पीठ के पीछे एक चेहरा है जो आगे आने वाले बरसों में उसकी पूरी दुनिया बदल देगा।

तभी बाल्टी पकड़े खड़ी लड़की ने ज़ोर से हँस दिया। उस हँसी में कुछ ऐसा था कि लोटन ने मुड़कर देखा। और जैसे ही उसने देखा, पीठ वाली लड़की भी पलटी। पानी भरना रुक गया।

उसके कंधे पर एक दुपट्टा था, हल्का पीला-सा। सीधी होते हुए उसने एक आदत से दुपट्टा कंधे पर खींचा।

यह कोई ख़ास हरकत नहीं थी। गाँव की हर लड़की यह करती है, हर औरत यह करती है। पर उस लड़की के इस खींचने में कुछ ऐसा था जो लोटन की आँख में अटक गया, जैसे किसी पूरे गाने को एक छोटी-सी पंक्ति में बाँध दिया हो।

लोटन रुक गया।

उसने सोचा कि आगे बढ़ जाए। अजनबी लड़कियों को ऐसे देखते रहना गाँव में ठीक नहीं माना जाता था। पर पैर आगे नहीं बढ़े।

लड़की ने उसकी तरफ़ नहीं देखा। अपनी सहेली से कुछ कहा, कोई हल्की-सी बात, सहेली फिर हँसी, और दोनों अपने काम में लग गईं। लोटन ने कुछ और सेकंड देखा। उसका रंग गेहुँआ था। बाईं तरफ़ के गाल पर एक तिल था जो दूर से भी दिख रहा था। बाल पीछे बँधे थे। उसने अपनी नज़र ऊपर रखी।

लड़की ने बाल्टी उठाई, हैंडपंप के नीचे रखी, और पंप चलाने लगी। और तब किसी कारण से उसकी आँख ऊपर उठी और लोटन से टकराई।

यह टकराव आधे सेकंड का था।

आधे सेकंड में बहुत कुछ हो सकता है। उस आधे सेकंड में लोटन ने देखा कि उसकी आँखें भूरी हैं, हल्की-सी, किसी पुरानी किताब की जिल्द जैसी। और उन आँखों में कुछ था जिसे लोटन उस वक़्त नहीं समझा, पर जिसे वह बरसों बाद पहचानेगा और जिसे वह उसी पल का नाम देगा, पहली पहचान। लड़की ने उसे देखा और तुरंत आँख नीचे कर ली, जैसे कुछ हुआ ही न हो, और पंप चलाती रही।

लोटन ने क़दम आगे बढ़ाया। पर उसका सिर पीछे रह गया। उसने मुड़कर देखने की इच्छा रोकी, क्योंकि उसे डर था कि अगर मुड़ा तो शायद गिर जाएगा।

घर पहुँचा। फूलमती कुछ कहने वाली थीं कि पानी लाओ, पर लोटन का चेहरा देखकर चुप हो गईं। फूलमती लोटन का चेहरा पढ़ सकती थीं जैसे कोई किताब पढ़ता है। आज उस चेहरे पर कुछ ऐसा था जो पहले कभी नहीं था। क्या था, यह उन्हें नहीं पता था, पर इतना पता था कि इसे कुछ नहीं कहना चाहिए। वह चुपचाप अपने काम में लगी रहीं।

लोटन खटिया पर लेट गया। छत की तरफ़ देखा। छिपकली थी अपनी जगह। लोटन ने सोचा, वह लड़की कौन थी। कहाँ की है। फिर दिखेगी?

यह आख़िरी सवाल सबसे बड़ा था।

अगले दिन वह बब्बन भैया के यहाँ गया। झाड़ू लगाई, साइकिल पोंछी, बाज़ार गया। पर मन में वह लड़की घूमती रही। आलू के बोरे देखते हुए उसे लगा कि आलू का रंग उस लड़की के रंग जैसा है। फिर उसने ख़ुद को डाँटा कि यह क्या पागलपन है। फिर टमाटर देखे। टमाटर लाल थे, उस लड़की के रंग से कोई मेल नहीं खाता था। यह बात उसे थोड़ी तसल्ली देने वाली लगी, पर फिर उसे लगा कि वह इन चीज़ों से उसके रंग को क्यों मिला रहा है, यह तो और भी पागलपन है।

उसके क़दम एक बार फिर उस हैंडपंप की तरफ़ मुड़ गए।

वहाँ कोई नहीं था। बस एक बकरी बँधी थी जो घास चबा रही थी और जिसने लोटन को ऐसे देखा जैसे पूछ रही हो, तू यहाँ क्या कर रहा है। लोटन कुछ देर रुका, फिर आगे बढ़ गया।

पर उसमें एक नई आदत आ गई थी। अब वह रामनगर की बाज़ार जाने लगा। सावित्री ने एक बार पूछा कि तू रामनगर क्यों जाता है। उसने कहा कि वहाँ नन्हे लाल की दुकान पर सस्ता सामान मिलता है। यह झूठ था। नन्हे लाल की दुकान पर सामान उसी दाम का था जो बाक़ी दुकानों पर था। पर सावित्री ने झूठ पकड़ा नहीं, या पकड़ा और छोड़ दिया।

फिर एक दिन वह फिर मिली।

सहेली के साथ थी, कहीं जा रही थीं। लोटन ने दूर से देख लिया। उसके पैर वैसे ही हुए जैसे पहली बार हुए थे। पर इस बार उसने कोशिश की कि आगे बढ़ता जाए, रुके नहीं। आँख नीचे की और तेज़ी से चला। जब पास से गुज़रा तो उसने एक झलक देख ली। लड़की ने भी देखा। इस बार उसकी आँखों में एक हल्की-सी पहचान थी, जैसे कह रही हो, तुम वही हो न। लोटन के कान गरम हो गए। वह आगे बढ़ गया।

स्कूल खुला। उस दिन पूरब को उसने मैदान के एक कोने में पाया जहाँ वह एक चींटी को किसी पत्ते पर चढ़ाने की कोशिश कर रहा था।

"ओये चिलगोजे।"

पूरब ने सिर उठाया।

"समाजसेवा कर चुके हो तो हमारी बात भी सुन लो।"

पूरब ने पत्ता छोड़ दिया। दोनों स्कूल के पीछे वाले गूलर के पेड़ के नीचे गए। वहाँ कोई नहीं था। लोटन ने सब बताया। हैंडपंप की बात, लड़की की बात, दुपट्टे की बात, तिल की बात, भूरी आँखों की बात, और यह भी कि अब वह रोज़ उस तरफ़ से निकलता है।

पूरब ने ध्यान से सुना। उसके छोटे-से चेहरे पर बड़े आदमी के भाव थे। जब लोटन ने बात ख़त्म की, पूरब ने कुछ देर कुछ नहीं कहा।

"नाम पता है?"

"नहीं।"

"घर का पता?"

"नहीं।"

"कौन सी कक्षा?"

"नहीं।"

पूरब ने एक लंबी साँस खींची। "भइया, यह तो बहुत मुश्किल है। इतना कुछ न जानते हुए कुछ करना बहुत मुश्किल है।"

"तो क्या करें?"

"पता लगाना पड़ेगा। पर पता लगाते हुए यह ध्यान रखना होगा कि किसी को शक न हो।"

पूरब कुछ देर सोचता रहा। "मेरा एक दोस्त है, मोथर, रामनगर में रहता है, हैंडपंप के पास। उससे पूछूँगा। पर उससे पूछते वक़्त मैं यह नहीं कहूँगा कि तुम्हारे लिए पूछ रहा हूँ। मैं कहूँगा कि कल किसी ने बकरी पर पत्थर मारा था और मुझे शक है उस लड़की पर, तो पता बताओ। मोथर मान जाएगा।"

लोटन को इस योजना में कई कमियाँ दिखीं। पर पूरब की योजनाओं में हमेशा कमियाँ होती थीं और फिर भी वे किसी तरह चल जाती थीं।

अगले दिन पूरब आया।

"भइया, पता चल गया।"

"क्या?"

"लड़की का नाम मुनिया है। अपने ही स्कूल की सातवीं कक्षा में पढ़ती है। हरिप्रसाद ओझा की बेटी है। बीस बीघा ज़मीन है उनके पास। मकान पाठक वाली गली में है, हैंडपंप से थोड़ा आगे।"

लोटन का दिल एक पल के लिए रुका। सातवीं कक्षा। एक दर्जा ऊपर। ओझा जी की बेटी। बीस बीघा।

"और भइया," पूरब ने आगे कहा, "हरिप्रसाद ओझा बड़े ग़ुस्से वाले हैं। और तुम जानते हो, जाति का भी मसला है।"

लोटन ने सिर हिलाया। जाति का मसला वह जानता था, बचपन से जानता था, उस कुएँ के दिन से जानता था।

पर इन सब बातों के पहले, इन सब बातों से बड़ी एक बात थी।

मुनिया।

यह नाम उसके होंठों पर ऐसा बैठा जैसे पहले से वहीं रखा हो।

मुनिया।

हैंडपंप वाली दोपहर

मुनिया का कमरा घर के पिछवाड़े में था, एक छोटा-सा कमरा जिसमें एक खिड़की थी जो एक अमरूद के पेड़ पर खुलती थी। खिड़की से रोशनी कम आती थी, हवा थोड़ी आती थी, और गर्मियों में एक तोता झांकता था जो अमरूदों के चक्कर में वहाँ रहता था। मुनिया उसे खाना नहीं देती थी, अम्मा ने मना किया था कि खाना दोगी तो हमेशा यहीं बैठेगा और अमरूद बर्बाद करेगा। पर मुनिया उसे देखती थी और तोता मुनिया को देखता था, और दोनों के बीच एक ऐसी चुप्पी थी जो शब्दों से ज़्यादा भरी होती थी।

हरिप्रसाद ओझा की बेटी होना रामनगर में एक वजनदार बात थी और इस वजन को मुनिया ने बहुत छोटी उम्र में महसूस करना शुरू कर दिया था। जब वह चार साल की थी, चाची ने कहा था कि लड़कों की तरह क़दम रखना ठीक नहीं। जब छह साल की थी, आँगन में चिल्लाकर हँसी थी तो दादी ने टोका था कि लड़कियाँ इस तरह नहीं हँसतीं। जब आठ साल की हुई तो पायल पहनाई गई, और साथ में बताया गया कि अब हर क़दम पर एक आवाज़ आया करेगी, इससे घर वालों को पता चलता रहेगा कि वह कहाँ है, किस तरफ़ गई, कब लौटी। उस वक़्त इस बात में मुनिया को कुछ खटका नहीं, बात सीधी लगी, समझ में आने वाली। बरसों बाद, किसी दोपहर अकेले बैठे हुए, उसके मन में यह बात आई कि शायद वह आवाज़ किसी और काम की भी थी, कि एक आवाज़ हमेशा पाँव से बँधी रहे तो

ज़बान की आवाज़ धीरे-धीरे अपने आप कम पड़ने लगती है।वह खिड़की से अमरूद के पेड़ को देखती और सोचती कि इस पेड़ को कोई नहीं कहता कि धीरे डोलो, यह हवा में जितनी चाहे उतनी आज़ादी से हिलता है।

दुपट्टे की बात अलग थी।

मुनिया ने दुपट्टा पहनना आठ साल की उम्र से शुरू किया था, जब अम्मा ने पहली बार उसके कंधे पर एक सूती दुपट्टा डाला था और कहा था, अब से यह तेरा रहेगा। दुपट्टा कंधे पर टिकता नहीं था। हर काम में खिसकता था, सरकता था। और हर बार उसे खींचकर सीधा करना पड़ता। यह खींचना एक आदत बन गई थी, दिन में सौ बार, बिना सोचे।

पर यह आदत एक पुरानी बात से आई थी।

जब वह छह साल की थी, चाचा के घर में एक भोज था। बहुत मेहमान आए थे। मुनिया बाहर आँगन में खेल रही थी, कूद रही थी, हँस रही थी। अम्मा ने उसे आवाज़ दी। जब वह गई तो अम्मा ने बिना कुछ कहे उसके बाल ठीक किए, फ़्रॉक ठीक की, और कहीं से एक चुनरी निकालकर उसके कंधे पर डाल दी। मुनिया ने पूछा, यह क्यों। अम्मा ने कहा, रख। वह फिर खेलने गई। पर चुनरी गिरती रही, बार-बार। और हर बार उसे उठाना पड़ता था। धीरे-धीरे उसने खेलना बंद कर दिया क्योंकि एक साथ चुनरी सीधी रखना और खेलना दोनों नहीं हो सकते थे।

उस दिन के बाद से वह जानती थी कि कुछ चीज़ें दुनिया ने उसके कंधों पर डाल दी हैं जिन्हें वह हमेशा सीधा रखने की कोशिश करेगी और वे हमेशा खिसकती रहेंगी। पर इन सब के बीच एक ख़ुशी थी जो कोई छीन नहीं पाया था। वह स्कूल जाना पसंद करती थी। घर से निकलते ही मन हल्का हो जाता था। स्कूल में उसकी सबसे अच्छी सहेली रूपा थी जो पाठक वाली गली के मोड़ पर रहती थी। रूपा हर बात हँसी में उड़ा देती थी। रूपा को देखकर मुनिया सीखती थी कि हँसी कैसे पास रखी जाती है।

स्कूल में मुनिया की पढ़ाई ठीक थी। बहुत अच्छी नहीं, बहुत बुरी नहीं, ठीक थी। मास्टर शुक्ला जी कहते थे कि अगर मेहनत करे तो वो पहली आ सकती है, पर मुनिया को पहली आने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसे बस पढ़ना पसंद था, नई नई बातें जानना पसंद था, और कभी कभी जब कोई मास्टर कुछ ऐसी बात बताते जो उसे मज़ेदार लगती तो वह घर आकर उसे दोहराती रहती। जैसे एक बार मास्टर कुरबान अली ने बताया था कि पृथ्वी गोल है, सूरज के चारों तरफ़ घूमती है, और मुनिया पूरे दिन इसी बात पर सोचती रही कि अगर पृथ्वी गोल है और घूमती है तो हम गिरते क्यों नहीं, और रात को उसने चाचा से पूछा था तो चाचा ने कहा था, चुप कर, बेकार की बातें करती है, पढ़ाई पर ध्यान दे। चाचा को शायद जवाब नहीं आता था।

रूपा के साथ स्कूल से लौटते हुए दोनों अक्सर हैंडपंप पर रुकती थीं। उस दिन जब लोटन पहली बार वहाँ से गुज़रा था, मुनिया को उसका ध्यान भी नहीं था। रामनगर की गलियों में लड़के लड़कियों को देखते थे, यह कोई नई बात नहीं थी, और मुनिया ने जल्दी ही सीख लिया था कि जो देख रहा हो उसे देखकर भी अनदेखा कर दो।

पर कुछ दिन बाद जब वही लड़का फिर उस गली से आया और पास से गुज़रते हुए आँख नीची कर ली पर उसके कान लाल थे, तब मुनिया ने एक हल्की-सी पहचान महसूस की। ऐसी नहीं कि याद रखे, पर ऐसी कि भूले भी नहीं।

और फिर एक दिन वह अकेली थी।

रूपा उस दिन नहीं आई थी, शायद अम्मा ने घर बुला लिया था। मुनिया अकेली हैंडपंप पर पानी भर रही थी क्योंकि घर का मटका ख़ाली था। उसने दूर से देखा कि वही लड़का आ रहा है। और अनजाने में उसका हाथ धीमा हो गया। पंप चलाना धीमा हो गया। उसे नहीं पता क्यों।

लड़का गुज़र गया। पर इस बार मुनिया ने एक झलक देख ली। बहुत जल्दी, इतनी जल्दी कि अगर कोई पूछता तो वह मना कर देती। पतला था, छोटा क़द, बाल थोड़े उलझे हुए, एक पुरानी क़मीज़, और आँखों में कुछ अलग था। क्या अलग था यह उस दिन समझ नहीं आया।

उसके बाद से उसने पाया कि वह हैंडपंप पर थोड़ी देर ज़्यादा रुकने लगी है। पहले एक बाल्टी भरती तो तुरंत चली जाती। अब एक बाल्टी भरकर थोड़ी देर खड़ी रह जाती, जैसे कुछ सोच रही हो।

इसी दौरान स्कूल में एक बात पता चली। वार्षिक उत्सव में किसी लड़के ने बहुत अच्छा गाया था। दोनों गाँवों में चर्चा थी। मुनिया उस दिन स्कूल नहीं आई थी। उसकी एक सहपाठी ने बताया कि उसका नाम लोटन है।

लोटन।

मुनिया ने सोचा। क्या जो लड़का हैंडपंप के पास से गुज़रता है, वह वही तो नहीं।

अगली बार जब वह लड़का गुज़रा तो मुनिया ने थोड़ी देर के लिए उसकी तरफ़ देखा। बहुत हल्की-सी, इतनी हल्की कि कोई गवाह भी नहीं समझ पाता। उसके चेहरे में कुछ था। क्या था, वह कह नहीं सकती थी।

उधर स्कूल में प्रार्थना की लाइन लगी हुई थी, वही लाइन जो हर सुबह लगती थी, वही बच्चे, वही कतार, वही मास्टर साहब खड़े, वही "ऐ मालिक तेरे बंदे हम" जो इतनी बार गाया जा चुका था कि शब्दों का मतलब किसी को याद नहीं रहा था, बस आवाज़ थी, एक सामूहिक आवाज़ जिसमें कुछ बच्चे गा रहे थे, कुछ गाने का नाटक कर रहे थे, कुछ होंठ हिला रहे थे बिना आवाज़ के, और कुछ ने यह भी छोड़ दिया था और बस खड़े थे, आंखें बंद, जैसे प्रार्थना नहीं नींद आ रही हो। प्रार्थना का यही हाल होता है स्कूलों में, पहले दिन गाते हैं, दूसरे दिन सुनते हैं, तीसरे दिन खड़े रहते हैं, और चौथे दिन से वह प्रार्थना नहीं रहती, वह एक रिवाज रह जाती है

जिसका पालन करना ज़रूरी है, जैसे कोमल बजरंगी की चौपाल में ताली बजाना।

उसी प्रार्थना की उसी लाइन में लोटन और पूरब खड़े थे, और पूरब के दिमाग़ में एक योजना थी जो अभी अभी आई थी, ऐसे आई जैसे बिजली कड़कती है, अचानक, बिना किसी चेतावनी के, और पूरब उस योजना को लोटन को बता रहा था, फुसफुसाकर, होंठ हिलाते हुए, आंखें बंद किए हुए, जैसे प्रार्थना कर रहा हो, पर प्रार्थना नहीं कर रहा था, वह योजना बता रहा था, और यह दृश्य देखने लायक था कि दो लड़के प्रार्थना की लाइन में खड़े भगवान से बात करने की जगह एक दूसरे से बात कर रहे हैं, पर शायद भगवान को इसमें बुरा नहीं लगा होगा, क्योंकि भगवान भी जानते हैं कि बच्चे बच्चे हैं, और बच्चों की बातें प्रार्थना से ज़्यादा ज़रूरी होती हैं, कम से कम बच्चों के लिए।

"देख भाई," पूरब ने कहा, आंखें अभी भी बंद, होंठ प्रार्थना की मुद्रा में, "रेडियो लेकर चलते हैं, मुनिया के पास से गुज़रेंगे, रेडियो बजेगा, कोई अच्छा गाना आएगा।"

यह योजना सुनने में बहुत सीधी थी, और सीधी थी भी, उसमें कोई पेच नहीं था, कोई जटिलता नहीं, बस एक रेडियो, एक रास्ता, एक लड़की, और एक गाना, इतना काफी है, बाकी दुनिया अपने आप संभाल लेगी, यही पूरब का यकीन था, और यह यकीन उस उम्र का था जब लगता है कि दुनिया सीधी है और सीधी चीज़ों से चलती है।

"रेडियो कहां से?" लोटन ने पूछा, और यह सवाल ज़मीनी था, वह सवाल जो हर योजना को ज़मीन पर लाता है, वह सवाल जो सपने और हक़ीक़त के बीच का है।

"बब्बन भैया से।"

"वे नहीं देंगे।"

"क्यों नहीं देंगे।"

"क्योंकि रेडियो उनकी जान है।"

यह बात सच थी, रेडियो बब्बन भैया की जान थी, उसे छूने की इजाज़त किसी को नहीं, उठाने की बात तो दूर, और लेकर चलने की बात तो और दूर, यह वैसा ही था जैसे कुबेर सिंह से उनकी ज़मीन मांगना, या कोमल बजरंगी से उनकी पायलटी छीनना, कुछ चीज़ें मांगी नहीं जातीं, कुछ चीज़ें जिनकी होती हैं उन्हीं की रहती हैं।

पूरब ने एक पल सोचा, वह पल जो योजना बनाने वालों के पास होता है, वह पल जिसमें दिमाग़ तेज़ चलता है, हर रास्ता देखता है, हर मोड़ परखता है, और फिर कुछ ऐसा कहता है जो कहीं से भी आए पर ठीक लगता है।

"भाई, इतिहास उन्हीं को याद करता है जो कोशिश करते हैं।"

यह बात पूरब को कहां से आई, यह लोटन को नहीं पता था, और सच कहें तो पूरब को भी नहीं पता था। शायद किसी मास्टर ने कभी कहा होगा, शायद किसी मेले में सुना होगा, शायद हवा में तैर रही थी और पूरब के कान में आ गिरी, कौन जाने। पर बात अच्छी थी, गोल थी, भारी थी, ऐसी कि सुनकर लगे कि बड़ी बात है, और बड़ी बात का यही कमाल है कि उसे सुनकर आदमी रुकता है, सोचता है, और मान लेता है, चाहे समझे या न समझे। लोटन ने सुनी और मान ली, इसलिए नहीं कि उसे इतिहास की बात समझ आई, लोटन को इतिहास से वही रिश्ता था जो उसका गणित से था, दूर का, पर उसने मान ली क्योंकि पूरब ने कही थी, और पूरब दोस्त था, और दोस्त की बात मानना इतिहास से ज़्यादा पुरानी बात है।

प्रार्थना ख़त्म हो गई थी। "ऐ मालिक तेरे बंदे हम" गाया जा चुका था, आख़िरी पंक्ति गाई जा चुकी थी, लाइन टूट चुकी थी, बच्चे अपनी अपनी कक्षाओं की तरफ जाने लगे थे। पर पूरब की योजना अभी ख़त्म नहीं हुई थी, प्रार्थना ख़त्म हो जाती है पर योजनाएं नहीं, योजनाएं वह चीज़ हैं जो शुरू हों तो बंद होने का नाम नहीं लेतीं, जैसे कोमल बजरंगी की बात, शुरू हो तो ख़त्म कौन करे। पूरब अभी और

बता रहा था, कि रेडियो ऐसे पकड़ना, कि इस रास्ते से जाना, कि उस मोड़ पर ऐसे मुड़ना, और लोटन सुन रहा था, और दोनों को यह पता नहीं था कि प्राणनाथ शुक्ला मास्टर साहब पीछे खड़े हैं, और मास्टर साहब उन्हें देख रहे हैं, उस नज़र से जो मास्टर साहब की अपनी थी, वह नज़र जो बच्चों को कीड़ा समझती है और ख़ुद को कीटनाशक।

"तुम दोनों।"

बस दो शब्द, और दोनों के पैर ज़मीन में गड़ गए। प्राणनाथ शुक्ला की आवाज़ में वह अधिकार था जो शिवशरण मिसिरा के न्यूटन में भी नहीं, क्योंकि न्यूटन डंडा था, डंडे से डर लगता है, पर शुक्ला जी की आवाज़ डंडे से बड़ी थी, उनकी आवाज़ सुनकर बच्चों के भीतर कुछ सिकुड़ जाता था, वह सिकुड़ना जो डर का नहीं, शर्म का होता है, और शर्म डर से ज़्यादा असरदार होती है।

दोनों को सबके सामने मुर्ग़ा बना दिया गया।

मुर्ग़ा बनना, यह सज़ा उतनी ही पुरानी है जितना स्कूल, शायद उससे भी पुरानी, शायद जब से गुरु और शिष्य का रिश्ता बना तब से यह सज़ा है, कान पकड़ो, नीचे बैठो, और उस मुद्रा में रहो जो न आदमी की है न जानवर की, बल्कि बीच की, वह बीच की जगह जो सबसे तकलीफदेह होती है। लोटन ने कान पकड़े, पूरब ने कान पकड़े, दोनों नीचे बैठे, और सामने से पूरा स्कूल गुज़रा, बच्चे देखते हुए, कुछ हंसते हुए, कुछ तरस खाते हुए, कुछ ख़ुश होते हुए कि आज वे नहीं, कोई और बना, और यह ख़ुशी इंसानी फ़ितरत है, दूसरे की सज़ा में अपनी राहत ढूंढना।

पर मुर्ग़ा बनने के बाद भी पूरब की योजना नहीं रुकी।

कान पकड़े-पकड़े, घुटने मोड़े-मोड़े, पैर दुखते हुए, वह उसी फुसफुसाहट में लोटन को समझाता रहा, कि बब्बन भैया से ऐसे कहना, पहले यह बोलना, फिर वह, इस रास्ते से जाना, उस मोड़ पर ऐसे मुड़ना। लोटन ने एक बार उसकी तरफ़

देखा, उसके चेहरे पर न शर्म थी न डर, बस वही चमक थी जो पाँच मिनट पहले थी, और लोटन कुछ नहीं बोला, बस सुनता रहा। शुक्ला मास्टर साहब दूर खड़े यह देखकर मन ही मन संतुष्ट हो रहे थे कि सज़ा अपना काम कर रही है। उन्हें बस इतना दिखा कि दोनों के कान पकड़े हुए हैं। यह उन्हें कभी नहीं दिखा कि कान के साथ-साथ दोनों की योजना भी जस की तस पकड़ी हुई है।

उस शाम लोटन ने हिम्मत जुटाई।

हिम्मत जुटाना एक बड़ा काम है, इसे वही जानता है जिसने कभी कोई ऐसी बात कहनी हो जो कहने में पैर कांपें, ज़बान सूखे, और दिल ऐसे धड़के जैसे भागकर आया हो। लोटन ने पूरा दिन इसी हिम्मत को जोड़ने में लगाया, जैसे कोई टूटे हुए बर्तन के टुकड़े जोड़ता है, एक एक करके, सावधानी से, कि कहीं फिर न टूट जाए। सुबह से वह सोच रहा था कि कैसे कहेगा, क्या कहेगा, किन शब्दों में, किस तरह, और हर बार जब शब्द सोचता तो लगता कि ग़लत हैं, और दूसरे सोचता तो वे भी ग़लत लगते, और तीसरे भी, और इस तरह शब्द बदलते रहे और हिम्मत बनती बिगड़ती रही पूरा दिन, जैसे फूलमती का आटा जो पहले गूंधो तो नरम हो, फिर रख दो तो सख़्त, फिर गूंधो तो नरम, और यही सिलसिला चले।

शाम को जब लोटन बब्बन भैया के आंगन में पहुंचा, उसके भीतर वह हिम्मत थी जो दिन भर की मेहनत से बनी थी, कच्ची, कमज़ोर, ऐसी जैसे कच्ची दीवार, एक धक्के से गिर जाए, पर थी, और होना काफी था।

"बब्बन भैया, एक बात कहनी है।"

"बोलो।"

यह "बोलो" बब्बन भैया का अपना अंदाज़ था, छोटा, सीधा, बिना किसी लाग लपेट के, जैसे दरवाज़ा खोलते हैं, आओ, बोलो, और लोटन ने उस खुले दरवाज़े में से अपनी बात भीतर धकेली, जल्दी से, इससे पहले कि हिम्मत फिर टूट जाए।

"रेडियो चाहिए..., उधार।"

रेडियो। उधार। ये दो शब्द बब्बन भैया के कानों में ऐसे पड़े जैसे किसी ने उनके सबसे क़ीमती बर्तन की तरफ हाथ बढ़ाया हो। बब्बन भैया रुके, उनके हाथ में बीड़ी थी, बीड़ी का धुआं उठ रहा था, और उस धुएं के पीछे उनकी आंखें लोटन को देख रही थीं, पहले हैरानी से, कि इस लड़के की हिम्मत कैसे हुई यह मांगने की, फिर कुछ और से, वह कुछ जो हैरानी से गहरा था, वह देखना जो आदमी तब देखता है जब उसे पता चलता है कि सामने वाला जो कह रहा है वह पूरा सच नहीं, पर उस अधूरे सच के पीछे कुछ ऐसा छिपा है जो पूरा सच है, और वह पूरा सच शब्दों में नहीं, आंखों में है, और बब्बन भैया ने वह आंखें पढ़ीं, क्योंकि बब्बन भैया उन लोगों में से थे जो शब्द नहीं, आंखें पढ़ते हैं।

"किसलिए।"

अब यह सवाल वह सवाल था जिससे लोटन डर रहा था, वह सवाल जो हर मांगने वाले से पूछा जाता है, किसलिए, क्यों, क्या करोगे, और इस सवाल के लिए लोटन ने जवाब तैयार किया था, पूरब की मदद से, और वह जवाब आधा सच था और आधा झूठ, और आधे सच और आधे झूठ से बेहतर कोई जवाब नहीं होता, क्योंकि पूरा सच कहने की हिम्मत नहीं और पूरा झूठ बोलने की अक्ल नहीं।

"एक दोस्त को सुनाना है, उसने कभी रेडियो नहीं सुना।"

यह बात सच भी थी और झूठ भी। सच इसलिए कि एक दोस्त था, मुनिया, पर मुनिया दोस्त नहीं थी, मुनिया कुछ और थी, और वह कुछ और जो थी उसका नाम लोटन को नहीं पता था, पर दोस्त कहना आसान था, और आसान बात कहने में कोई बुराई नहीं। और "कभी रेडियो नहीं सुना" यह शायद सच था, शायद नहीं, लोटन को पता नहीं था कि मुनिया ने कभी रेडियो सुना है या नहीं, पर यह बहाने का हिस्सा था, और बहानों में सच की ज़रूरत नहीं होती, बहानों में बस

यकीन की ज़रूरत होती है, और लोटन ने इतने यकीन से कहा कि बात सच लगी।

"दोस्त को घर बुला लो।"

यह जवाब बब्बन भैया का वह जवाब था जो सीधा था, तार्किक था, समझदारी का था, जो कोई भी बड़ा आदमी देता, कि भाई रेडियो लेकर जाने की क्या ज़रूरत, दोस्त को यहीं बुला लो, यहीं सुन ले, पर यह जवाब लोटन के काम का नहीं था, क्योंकि मुनिया को बब्बन भैया के घर कैसे लाए, और लाए भी तो क्या कहे, कि यह दोस्त है, और बब्बन भैया देखेंगे कि दोस्त लड़की है, और फिर सवाल, और फिर बात, और फिर गांव, और फिर बाप, और फिर लाठी, नहीं, दोस्त को यहां लाना मुमकिन नहीं था।

"वो नहीं आ सकता।"

"क्यों?"

"उसका बाप बहुत खड़ूस है, नहीं आने देगा।"

यह झूठ था, पूरा झूठ, और इस झूठ में पूरब की छाप थी, क्योंकि "बाप खड़ूस है" यह बहाना पूरब ने सुझाया था, और पूरब के बहानों में एक ख़ासियत यह थी कि वे सच लगते थे, इसलिए नहीं कि वे सच होते, बल्कि इसलिए कि पूरब उन्हें ऐसे बताता जैसे दुनिया की सबसे सीधी बात हो। बाप खड़ूस है, बस, इतना काफी है, हर गांव में खड़ूस बाप होते हैं, यह बात इतनी आम है कि इस पर कोई सवाल नहीं उठाता, और बब्बन भैया ने भी नहीं उठाया।

बब्बन भैया ने कुछ देर लोटन को देखा, वह देखना जो तराज़ू का होता है, दोनों पलड़ों पर वज़न रखो और फिर देखो कि कौन सा भारी है, एक तरफ रेडियो था, उनकी जान, उनकी सबसे क़ीमती चीज़, और दूसरी तरफ यह लड़का था, यह लोटन, जो रोज़ आता है, रोज़ बैठता है, रोज़ सुनता है, जिसकी आंखों में वह भूख

है जो बब्बन भैया पहचानते हैं, वह भूख जो रोटी की नहीं, किसी और चीज़ की है। बब्बन भैया ने तौला, देर तक तौला, और फिर बोले।

"तीन शर्तें हैं।"

लोटन ने सिर उठाया, वह सिर जो झुका हुआ था, जो मांगने वाले का होता है, हमेशा झुका, और जब शर्तें सुनीं तो थोड़ा और झुका, क्योंकि शर्तें मानना मांगने की कीमत है, और कीमत चुकाने में सिर झुकता है।

"पहली, रेडियो गिरने नहीं देना।"

"जी।"

"दूसरी, कोई और रेडियो को हाथ नहीं लगाएगा।"

"जी।"

"तीसरी, एक घंटे में वापस, एक घंटे से एक मिनट भी ज़्यादा हुआ तो दोबारा रेडियो देखने को भी नहीं मिलेगा।"

"जी।"

तीन शर्तें, तीन बार जी, और हर जी पिछले से भारी, पहला जी वादा था, दूसरा कसम, तीसरा जान की क़सम, और लोटन ने तीनों दिए, बिना एक पल रुके, बिना सोचे, क्योंकि सोचने का वक़्त नहीं था, और सोचता भी तो क्या बदलता, शर्तें मानने के अलावा कोई रास्ता नहीं था। बब्बन भैया ने लोटन की आंखों में देखा, वही आंखें जो रोज़ रेडियो पर टिकी रहती थीं, और उन आंखों में जो था वह बब्बन भैया ने पढ़ लिया, और उन्हें कुछ मिला उस पढ़ने में, शायद अपना बचपन, शायद अपनी कोई भूख, शायद कुछ और, पर कुछ मिला, और उसी कुछ ने उन्हें हां कहने पर मजबूर किया।

"ठीक है, कब चाहिए।"

"कल दोपहर।"

अगले दिन दोपहर आई। माघ का महीना था, और माघ की दोपहर उन दोपहरों में से होती है जो न गरम होतीं न ठंडी, बस ऐसी जो आदमी को कहीं भी खड़ा रहने का मन कराए, न छांव ढूंढो न धूप से भागो, बस रहो, और उस रहने में एक ताज़गी थी, हवा में, धूप में, उस सर्दी में जो जा रही थी पर अभी पूरी गई नहीं, जैसे कोई मेहमान जाने को है पर दरवाज़े पर खड़ा बातें कर रहा है।

लोटन बब्बन भैया के यहां गया। बब्बन भैया ने रेडियो उठाया, एक कपड़े में लपेटा, सावधानी से, जैसे कोई मां अपने बच्चे को कपड़े में लपेटती है, और लोटन को दिया। लोटन ने उसे लिया, दोनों हाथों से, ऐसे जैसे कोई मंदिर में प्रसाद लेता है, सिर झुकाकर, सांस रोककर, और फिर सीने से लगाया, ऐसे जैसे यह रेडियो नहीं, जान हो, और चला, रामनगर की तरफ, हैंडपंप वाली गली की तरफ, उस रास्ते पर जो अब उसके पैरों को याद हो गया था, जिस पर उसके कदमों के निशान बन गए होंगे, और उसके सीने पर रेडियो था, कपड़े में लिपटा, और उस कपड़े के भीतर से किशोर कुमार की आवाज़ आने वाली थी, और उस आवाज़ में वह बात होगी जो लोटन ख़ुद नहीं कह सकता, और शायद कभी नहीं कह पाएगा, पर किशोर कुमार कहेंगे, उसके लिए, उसकी तरफ से, और मुनिया सुनेगी, और सुनकर समझेगी, या नहीं समझेगी, पर सुनेगी, और सुनना ही काफी है, बस सुनना, और इतना काफी है।

पूरब पहले से वहाँ था।

मुनिया अभी नहीं आई थी। एक बूढ़ा मुँह धो रहा था, एक बच्चा नहाने आया था। लोटन ने रेडियो एक पेड़ के पीछे छुपा दिया और दूर एक घर की ओट में खड़ा हो गया।

और फिर मुनिया आई।

अकेली। रूपा उस दिन नहीं थी। कंधे पर बस्ता था। वह पंप की तरफ़ आ रही थी।

पूरब ने तुरंत शुरुआत की।

"बहुती, एक बात पूछनी है।"

मुनिया ने देखा।

"आपको पता है, आज रामनगर में एक जादूगर आ रहा है।"

"जादूगर?"

"वह जो सिक्के को मिट्टी बना देता है।"

मुनिया ने हल्की हँसी दी। "सिक्के को मिट्टी कोई नहीं बना सकता।"

"बना देता है। मैंने ख़ुद सुना है।"

"किससे?"

"एक आदमी से।"

"कौन?"

"एक।"

"कौन सा एक।"

"एक भाई।"

मुनिया फिर हँसी। "अच्छा, ठीक है।"

पूरब ने देखा कि योजना फेल हो रही है। "बहुती, और एक बात। मेरा जूता यहाँ कहीं गिर गया था।"

मुनिया ने पंप के नीचे देखा। "यहाँ तो कोई जूता नहीं।"

"होगा। ढूँढिए तो।"

"तुम्हारा जूता हम क्यों ढूंढें ? अपना जूता ख़ुद ढूँढो।"

पूरब का चेहरा उतरा पर वह हार मानने वाला नहीं था। "बहुती, बहुत प्यास लगी है। पानी पिला दीजिए।"

यह बहाना असली था।

पूरब ने हथेली आगे की। पानी पिया। पर जब पानी ख़त्म हुआ, पंद्रह सेकंड बीत चुके थे और लोटन अभी भी नहीं आया था। वह पेड़ के पीछे रेडियो की गाँठ खोलने में लगा था जो फँस गई थी।

"और थोड़ा।"

मुनिया ने देखा। उसकी नज़र में हल्की-सी झुँझलाहट थी। "इतनी प्यास?"

"बहुत।"

उसने फिर पंप चलाया। पूरब ने फिर पिया। अब तीस सेकंड बीत गए थे।

मुनिया ने बैग उठाया और जाने को हुई। ठीक उसी पल लोटन दौड़ता हुआ आया, साँस उखड़ी हुई, माथे पर पसीने की लकीरें, हाथ में वह रेडियो जिसे वह सीने से ऐसे चिपटाए था जैसे अभी भी गिर जाने का डर मन से गया न हो। उसने उसे हैंडपंप के पास रखी चौकी पर रखा, जल्दी से, बेतरतीब से, और चालू कर दिया। रेडियो से एक खरखराहट आई। फिर ऐसी आवाज़ जैसे कोई बीमार बकरी मिमियाई हो। फिर कुछ नहीं। चुप्पी, ऐसी चुप्पी जैसे किसी ने भीतर से उसकी जान ही निकाल ली हो। लोटन ने उसे थपथपाया, ठीक वैसे जैसे बब्बन भैया थपथपाते थे, फिर डायल घुमाया, इधर, उधर, पर कुछ न हुआ।

मुनिया कुछ देर खड़ी देखती रही। एक लड़का था जो पानी पी-पी कर मानो पूरा तालाब पी गया हो, और एक दूसरा अभी-अभी दौड़ता हुआ आया था, हाँफता, पसीने में डूबा, हाथ में एक डिब्बा लिए जिसमें से कभी खरखराहट निकलती,

कभी बकरी जैसी आवाज़, और फिर कुछ नहीं। एक के चेहरे पर वह घबराहट थी जो पकड़े जाने से डरने वाले की होती है, दूसरे के चेहरे पर वह बेबसी जो अपनी योजना को आँखों के सामने ढहते देखने वाले की होती है। मुनिया को इन दोनों लड़कों का कुछ समझ नहीं आया, और समझ न आने का कोई कारण भी नहीं था, क्योंकि समझाने वाला अभी भी डायल घुमाने में लगा था।

उसने अपना दुपट्टा ठीक किया, वही पुरानी आदत, और बैग उठाकर चल दी। जाते हुए पूरब के पास से गुज़री, और गुज़रते हुए उसके सिर पर एक हल्की-सी चपत जड़ दी। इस चपत को ज़रा ग़ौर से देखिए, क्योंकि इसमें बहुत कुछ था। न इसमें ग़ुस्सा था, न दुलार, यह वह चपत थी जो बड़ी बहनें छोटे भाइयों को तब लगाती हैं जब उनकी हरकतें समझ से बाहर हों, पर नुक़सानदेह न हों, हल्की, बेज़ोर, जिसमें दर्द नहीं होता, बस एक छुअन होती है, और उस छुअन में वह सब कह दिया जाता है जो ज़बान से नहीं कहा जाता, कि तुम लोग यह क्या कर रहे हो, कि जाओ घर जाओ, बच्चे हो, बच्चों जैसा करो। चपत में कोई ताक़त नहीं थी, पर चपत थी, और चपत का होना ही अपने आप में बहुत कुछ था।

मुनिया आगे बढ़ गई, बिना मुड़े, बिना कुछ कहे। पूरब ने अपने सिर पर हाथ रखा, वहाँ जहाँ चपत पड़ी थी, जैसे कोई क़ीमती चीज़ मिल गई हो और उसे सहेज रहा हो। लोटन रेडियो के पास खड़ा रहा, रेडियो जो अब भी चुप था, और उसे उस नज़र से देखता रहा जो उस आदमी की होती है जिसकी उम्मीद उसकी आँखों के सामने बुझ रही हो, जैसे दिया बुझता है, पहले लौ काँपती है, फिर झपकती है, फिर बुझ जाती है, और अंधेरा।

सात मिनट बाद रेडियो बजा।

सात मिनट, यह सात मिनट गिने हुए नहीं, अंदाज़े के हैं, पर इतना पक्का है कि मुनिया जा चुकी थी, मोड़ पार कर चुकी थी, गली में घुस चुकी थी, और अब दिखती नहीं थी, और ठीक तभी रेडियो ने आवाज़ दी, पहले खरखराहट, फिर एक

साफ आवाज़, फिर रफ़ी साहब का एक पुराना गाना, वह गाना जो अभी आना चाहिए था सात मिनट पहले, तब आना चाहिए था जब मुनिया खड़ी थी, तब आना चाहिए था जब योजना ज़िंदा थी, पर आया अब, जब कोई नहीं है, जब मुनिया जा चुकी, जब योजना मर चुकी।

लोटन ने रेडियो को देखा, ऐसे देखा जैसे किसी ने धोखा दिया हो, पर रेडियो ने धोखा नहीं दिया था, रेडियो ने अपना काम किया, बजा, बस देर से बजा, और देर से बजना धोखा नहीं, किस्मत है। लोटन ने रेडियो उठाया, कपड़े में लपेटा, सीने से लगाया।

"देख, अब बजा," पूरब ने कहा, और इस कहने में वह उम्मीद थी जो मरकर भी नहीं मरती, कि देख, बज तो रहा है, अगली बार और जल्दी आएंगे, अगली बार और पहले चलाएंगे, अगली बार ठीक होगा। पूरब उन लोगों में से था जो हार को भी जीत में बदल सकते हैं, बस अगली बार कहकर, और यही उनकी सबसे बड़ी ताक़त है और सबसे बड़ी कमज़ोरी भी।

लोटन ने सिर हिलाया, बस, कुछ नहीं कहा, और धीरे धीरे बब्बन भैया के घर की तरफ चलने लगा। पूरब पीछे पीछे आया, चुपचाप, वह चुप जो हार के बाद होती है, वह चुप जो दो दोस्तों के बीच तब होती है जब दोनों को पता हो कि गड़बड़ हो गई और अब बोलने से कुछ नहीं बनेगा।

"अरे भाई।"

लोटन रुका।

"ग़लती मेरी है," पूरब ने कहा, और उसकी आवाज़ में वह पछतावा था जो सच्चा था, खरा, बिना किसी मिलावट के, "मैंने बहाने बनाए जो काम के नहीं थे, योजना मेरी थी, पानी पीने का बहाना मेरा, सब मेरा, तू तो बस दौड़कर आया, ग़लती तेरी नहीं, ग़लती मेरी है।"

लोटन ने धीमी आवाज़ में कहा, "तुम्हारी कोई ग़लती नहीं, यह पागलपन था, मैं जानता था।"

यह "मैं जानता था" सुनकर पूरब को लगा कि लोटन सच बोल रहा है, कि लोटन को पहले से पता था कि यह काम नहीं करेगा, कि रेडियो वक़्त पर नहीं बजेगा, कि मुनिया नहीं सुनेगी, पर फिर भी आया, फिर भी दौड़ा, फिर भी लाया, क्योंकि कोशिश करना लोटन की फ़ितरत थी, और कोशिश करने वाला जानता है कि नहीं होगा पर करता है, यही उसकी ज़िद है, वही ज़िद जो रामखेलावन के ख़ून में थी।

पूरब ने सिर नीचा किया। कुछ देर दोनों चुपचाप चलते रहे, वह चलना जो दो दोस्तों का होता है हार के बाद, कंधे से कंधा, पैर से पैर, बिना बोले, बिना देखे, बस चलते रहना, क्योंकि चलना ही इस वक़्त का काम है।

फिर लोटन बोला, "पर एक बात।"

"क्या।"

"उसने तुम्हारे सिर पर चपत लगाई।"

"हां।"

"वह चपत अच्छी थी।"

पूरब ने हैरानी से देखा, वह हैरानी जो सच्ची थी, "अच्छी? क्यों?"

"क्योंकि चपत लगाने के लिए उसने रुककर तुम्हें देखा होगा, अगर वह हमें पूरी तरह अनदेखा कर देती तो चपत भी नहीं लगती, अनदेखा करना सबसे बुरा होता है, वह बताता है कि तुम हो ही नहीं, तुम्हारा कोई मतलब नहीं, पर चपत बताती है कि तुम दिखे, तुम्हें देखा गया, तुम पर ध्यान गया, और ध्यान जाना, बस ध्यान जाना, इतना काफी है।"

पूरब ने इस पर सोचा, कुछ देर सोचा, और फिर उसे समझ आया, वह समझ जो लोटन को पहले आई थी और जो अब पूरब को आई, कि हां, चपत अच्छी थी, चपत का मतलब था कि मुनिया ने देखा, कि मुनिया ने ध्यान दिया, कि मुनिया के लिए वे दोनों दिखे, और दिखना ही शुरुआत है, हर बात की, हर कहानी की, हर प्रेम की, पहले दिखो, फिर बाकी सब होता है, और आज वे दिखे, रेडियो नहीं बजा पर वे दिखे, और यह काफी था, आज के लिए काफी।

"भाई लोटन," पूरब ने कहा, और उसकी आवाज़ में वह सम्मान था जो दोस्त को तब मिलता है जब दोस्त कोई ऐसी बात कहे जो ख़ुद उसे नहीं सूझी, "यह बात मुझे क्यों नहीं सूझी।"

लोटन ने कुछ नहीं कहा, बस मुस्कुराया, वही मुस्कुराहट जो सुबह छिपकली को देखकर आई थी, और दोनों चलते रहे, बब्बन भैया के घर की तरफ, रेडियो सीने से लगाए, और पूरब के सिर पर वह चपत गरम थी, अभी भी गरम, उस गरमी से जो मुनिया के हाथ की थी, और उस गरमी में वह सब कुछ था जो आज की योजना में नहीं मिला पर जो मिला वह योजना से बड़ा था, एक चपत, एक छुअन, एक ध्यान, और यह काफी था, कल के लिए, परसों के लिए, और उसके आगे के लिए भी।

लोटन ने बब्बन भैया का रेडियो सही-सलामत लौटा दिया। बब्बन भैया ने देखा कि लोटन थोड़ा उदास है। उन्होंने कुछ नहीं पूछा। रेडियो को उन्होंने अपनी जगह पर रखा, धीरे से, जैसे बच्चे को सुला रहे हों।

अगले कुछ दिन लोटन के भीतर एक भारीपन था। वह काम करता था, रेडियो के पास बैठता था, स्कूल जाता था, पर भीतर कहीं एक चोट थी। फूलमती ने देखा। उन्होंने कुछ नहीं पूछा। रात को रोटी पर फिर से घी लगाकर दिया। पतली परत, बहुत पतली। लोटन ने खाई। माँ की बात कितनी चुप होती है, यह लोटन हर बार नया-नया सीखता था।

एक दिन स्कूल से लौटते हुए उसने तय किया था।

तय किया था कि अब नहीं। बहुत हो गया। बहुत बार उस गली से गुज़रा, बहुत बार कुछ नहीं हुआ। तय किया था कि आज वह सीधा घर जाएगा। लोटन की चाल धीमी थी, कंधे पर किताबें थीं, और मन उससे भी भारी था।

रास्ते में एक पेड़ के नीचे कोमल बजरंगी बैठे थे।

"ऐ लड़के, यह गीत-संगीत तुम्हारा ब्रह्मचर्य पी जाएगा।"

लोटन ने सिर हिलाया। बस। सिर हिलाना एक ऐसा जवाब है जो हर सवाल का जवाब है और किसी का नहीं। वह आगे बढ़ा।

और फिर बब्बन भैया के घर के सामने से गुज़रा। गुज़रने का इरादा था, रुकने का नहीं। पर ठीक उसी वक़्त रेडियो की आवाज़ आई।

किशोर कुमार की आवाज़ थी।

वह गाना जिसमें तन्हाई और उस तन्हाई में भी कुछ थामे रहने की बात थी। लोटन रुक गया। ऐसे रुका जैसे ज़मीन ने पैर पकड़ लिए हों। गाना दूर से आ रहा था, शब्द पूरे साफ़ नहीं थे, हवा में घुलकर थोड़े धुंधले हो गए थे, पर इतना काफ़ी था। किशोर कुमार की आवाज़ पहचानने के लिए पूरा गाना नहीं चाहिए, एक सुर काफ़ी है।

उसका "अब और नहीं" पाँच मिनट भी नहीं टिका।

वह दौड़कर भीतर घुसा। सावित्री खाना खा रही थीं। रेडियो सामने बज रहा था। बब्बन भैया शाम की आख़िरी बस से लौटते थे, अभी नहीं आए थे। सावित्री ने लोटन को देखा, लोटन ने सावित्री को देखा, और लोटन ने इशारों में वह बात कही जो शब्दों में कहने की हिम्मत नहीं थी। हाथ जोड़े, आँखों से विनती की, रेडियो की तरफ़ देखा, फिर बाहर की तरफ़, फिर सावित्री की तरफ़।

सावित्री ने कुछ नहीं कहा। बस हाथ हिला दिया।

जाओ। ले जाओ।

लोटन ने रेडियो उठाया जैसे कोई अपना बच्चा उठाता है, सावधानी से, जल्दी से, और बाहर निकला। उसके पैर अब भारी नहीं थे। पैर नहीं थे, पंख थे। वह रामनगर जाने वाली पगडण्डी पर दौड़ा। उसके हाथ में रेडियो था और रेडियो दाएँ-बाएँ झूल रहा था और उस झूल के साथ आवाज़ भी झूल रही थी, जैसे किशोर कुमार भी उसके साथ भाग रहे हों।

और फिर वही हुआ।

मुनिया रास्ते में मिल गई। अकेली। रूपा उसके साथ नहीं थी। कंधे पर बस्ता था।

लोटन ने मुनिया को देखा। मुनिया ने लोटन को देखा।

और इस बार आँखें नहीं हटीं।

पहले जितनी बार आँखें मिली थीं, हर बार कोई न कोई पहले हटा था। कभी मुनिया ने नज़र फेरी, कभी लोटन ने ज़मीन देखी। पर उस दिन कोई नहीं हटा। दोनों ने एक-दूसरे को देखा और देखना ख़त्म नहीं हुआ। चार सेकंड? छह? पर सेकंड गिनना बेमानी है। कुछ चीज़ें घड़ी के बाहर होती हैं।

लोटन के मुँह में शब्द आए। ज़बान तक आए। होंठों तक पहुँचे। और वहीं रुक गए। पर इस न बोल पाने में कोई दुख नहीं था, क्योंकि जो कहना था वह आँखें कह चुकी थीं।

रेडियो बज रहा था।

मुनिया ने अपना दुपट्टा संभाला। वही पुरानी आदत, दिन में सौ बार, बिना सोचे। पर उस दिन, उस वक़्त, उस मोड़ पर, वह संभालना वह नहीं था जो रोज़ था। क्या था, यह बताना उतना ही मुश्किल है जितना यह बताना कि फूल में खुशबू कहाँ होती है। पंखुड़ी में? डंठल में? हवा में? लोटन ने देखा और भीतर दर्ज कर लिया, जैसे कोई हाफ़िज़ आयत दर्ज करता है, गहरे, पक्के, ऐसी जगह जहाँ से मिटना

मुश्किल हो। वह दुपट्टा खींचना उसके लिए किसी गीत की पहली पंक्ति थी, ऐसी पंक्ति जो एक बार सुन लो तो भूलने से भी नहीं भूलती।

और तब मुनिया ने आँख नीची की। पर आँख नीची करने से ठीक एक पल पहले, उसके होंठों पर एक मुस्कुराहट आई। बहुत हल्की। इतनी हल्की कि अगर लोटन इस दुनिया में कोई और चीज़ देख रहा होता, कोई पत्ता, कोई पत्थर, कोई गुज़रता हुआ आदमी, तो यह मुस्कुराहट दिखती ही नहीं। पर लोटन बस मुनिया को देख रहा था। उसने वह मुस्कुराहट देखी, जो होंठों पर आई और चली गई, जैसे कोई चिड़िया डाल पर बैठी और उड़ गई, पर डाल हिलती रही। लोटन के भीतर वह डाल बहुत देर तक हिलती रही।

मुनिया धीरे-धीरे आगे बढ़ी। लोटन के पास से गुज़री।

जब वह गुज़र रही थी, उसकी साँस की एक हल्की-सी खुशबू लोटन तक आई। वह खुशबू क्या थी, लोटन नहीं पहचान पाया। शायद चावल की, जो रसोई से आती है और बालों में बस जाती है। शायद घी की, जो माँ के पास बैठने से कपड़ों में रच जाती है। या शायद बस उसकी अपनी खुशबू थी, वह जो हर इंसान की होती है और जिसका कोई नाम नहीं होता। पर वह खुशबू भीतर दर्ज हो गई, वहीं, उसी जगह जहाँ दुपट्टा संभालना दर्ज था।

मुनिया गुज़र गई। जाते हुए एक बार भी पीछे नहीं मुड़ी।

जो मुड़कर देखे वह अभी सोच रहा है। जो न मुड़े, उसने तय कर लिया है। मुनिया ने तय कर लिया था। क्या तय किया था, वही जानती थी।

लोटन कुछ देर वहीं खड़ा रहा। रेडियो अभी भी बज रहा था। गाना ख़त्म होने को था। किशोर कुमार की आवाज़ धीमी हो रही थी। लोटन ने आख़िरी सुर तक सुना। फिर वह चलने लगा।

उसके पैर हल्के थे। कंधे पर किताबें थीं, पर भारी नहीं लग रही थीं। हाथ में रेडियो था, पर बोझ नहीं था। वही पेड़ थे, वही धूल, वही मोड़, कोमल बजरंगी उसी जगह बैठे थे। पर लोटन को अब कुछ नहीं दिख रहा था। उसे बस एक आवाज़ सुनाई दे रही थी।

घर पहुँचकर वह खटिया पर लेटा। छत पर छिपकली आज नहीं थी। लोटन ने आँखें बंद कीं और उस पल को याद किया। मुनिया का खड़ा होना, दुपट्टा खींचना, वह हल्की-सी मुस्कुराहट, और उसका धीरे-धीरे गुज़र जाना।

उसने यह भी सोचा कि अगर उस दिन हैंडपंप पर रेडियो बज गया होता, अगर पूरब के बहाने काम के होते, अगर वह एक मिनट पहले पहुँच जाता, तो शायद यह सब कुछ न होता जो अब हुआ। कभी-कभी ज़िंदगी इंसान की योजना के पीछे से आकर कहती है, तू बैठ, मैं सँभाल लूँगी।

उस रात उसने आसमान की तरफ़ देखा। तारे थे। लोटन मुस्कुराया। उसे नहीं पता था कि आगे क्या होगा। वह नहीं जानता था कि हरिप्रसाद ओझा के घर और रामखेलावन के घर के बीच कितनी दीवारें हैं और वे दीवारें किस चीज़ से बनी हैं। उसे बस इतना पता था कि आज उसने मुनिया को देखा, और मुनिया ने उसे देखा, और दोनों ने एक ही गाना सुना, और उसके बाद मुनिया ने दुपट्टा खींचा, और फिर मुस्कुराई।

और इतना काफ़ी था।

वह सो गया। सपने में वही दोपहर थी। एक मोड़, एक लड़की, एक दुपट्टा, एक गीत, और उस गीत में कहीं बहुत हल्की-सी एक मुस्कुराहट। वह पूरी रात सपना उसके भीतर बजता रहा, जैसे किसी पुराने रेडियो में कोई पुराना गीत बजे जिसे बंद नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह रेडियो अब बाहर नहीं है, भीतर है, और भीतर के रेडियो का एक ही स्विच होता है, और वह स्विच सिर्फ़ वक़्त के पास होता है।

बहानों का मौसम

हैंडपंप वाली उस दोपहर के बाद लोटन के पास बहाने हो गए।

बहाने। दुनिया की सबसे पुरानी कला। कुछ लोग कहते हैं कि आदम ने सेब खाने के बाद पहला बहाना बनाया था, और हव्वा ने दूसरा, और तब से लेकर आज तक यह कला फलती फूलती आ रही है, बिना किसी सरकारी मदद के, बिना किसी पाठशाला के, बिना किसी गुरु दक्षिणा के। बहाना बनाना वह हुनर है जो किसी को सिखाना नहीं पड़ता। यह अपने आप आ जाता है, ठीक उसी तरह जैसे पानी में गिरते ही हाथ पैर मारने लगते हैं, चाहे तैरना किसी ने सिखाया हो या न सिखाया हो। प्रेम में पड़ते ही बहाना बनाने की यह क़ाबिलियत एक रात में आ जाती है, जैसे कोई ईश्वरीय वरदान हो, जैसे किसी ने सोते हुए आदमी के कान में फूँक मार दी हो कि उठ, अब तुझे किस्से गढ़ने है।

पहला बहाना खेत की मेड़ का था। एक सुबह उठकर लोटन ने कहा कि बब्बन भैया की मेड़ पर कुछ खपरैल रखवानी हैं, कोई मदद नहीं मिल रहा। रामखेलावन ने एक पल के लिए उसे देखा, वह पुरानी धुँधली नज़र, फिर सिर हिलाया। जा। लोटन गया। पर खेत की मेड़ पर नहीं, रामनगर की तरफ़।

किताबों का बहाना थोड़ा उलझा हुआ था। लोटन ने कहा कि मोथर की किताबें बिकवानी हैं, पुरानी देगा और बदले में अगली कक्षा की लेगा। ग़रीब घर का

लड़का है, इसमें बुराई क्या। इतना तर्क था उस बात में कि सुनते ही मान लिया जाए।

फूलमती ने पूछा, "किसकी किताबें?"

दो शब्द। माँओं के दो शब्द बाप के बीस सवालों से भारी होते हैं।

"मोथर की। जो रामनगर में रहता है।"

यह "रामनगर" जोड़ना वैसा ही था जैसे कोई सच्चा आदमी कसम खाए। सच्चे आदमी को कसम खाने की ज़रूरत नहीं होती। लोटन ने मोथर का पूरा पता दे दिया, जैसे फूलमती को यह नहीं पता कि मोथर कहाँ रहता है, जैसे पूरा गाँव नहीं जानता।

फूलमती ने कुछ नहीं कहा।

उन्होंने बस अपनी आँख को थोड़ा सिकोड़ा। इतना कि कोई देखे तो समझे कि धूप पड़ी होगी या कोई मच्छर भिनभिनाया होगा। पर न धूप थी उस वक़्त, न मच्छर। वह सिकोड़ना उस काँटे का था जो लोटन के झूठ ने उनकी आँख में चुभोया था। छोटा-सा काँटा। इतना छोटा कि निकालने के लिए हाथ उठाना बेकार था, पर था, और फूलमती को पता था। और यह भी पता था कि यह काँटा आज का नहीं है, आगे भी चुभेगा, और हर बार इतना ही छोटा होगा, पर एक दिन इतने छोटे-छोटे काँटे इकट्ठे हो जाएँगे कि आँख भर आएगी।

मोथर। बेचारा मोथर। जिसका नाम लिया गया, जिसकी किताबों का ज़िक्र हुआ, जिसके घर का पता दिया गया, उसे ख़बर भी नहीं थी। मोथर स्कूल जाता ही नहीं था। उसकी किताबें कहाँ थीं, किस कोने में दबी थीं, या थीं भी या नहीं, यह मोथर को भी याद नहीं था। वह तो परचून की दुकान पर बैठा रहता था, मूँगफली तौलता था, गुड़ तोड़ता था। फूलमती को यह पता था। पूरे गाँव को पता था।

और यही वह बात थी जो फूलमती की आँख में चुभी थी। लोटन ने उस आदमी का नाम लिया था जिसकी किताबें होने का सवाल ही नहीं था। फूलमती ने यह हिसाब एक पल में लगा लिया, बिना गिनती के, बिना तर्क के, बस उस समझ से जो माँओं को बच्चे के पैदा होते ही मिल जाती है।

पर फूलमती ने फिर भी कुछ नहीं कहा। जाने दिया। रोकने से क्या होता। रुकता नहीं, बहाना बदल लेता। माँएँ जानती हैं कि कुछ लहरें ऐसी होती हैं जिन्हें रोको तो और तेज़ बहती हैं।

वह चूल्हे की तरफ़ मुड़ गईं। जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

तीसरा बहाना बब्बन भैया की दवाई का था। पेट में दर्द है, बाज़ार से डॉक्टरी दवा लानी है। शिवकुमार ने एक लंबी नज़र डाली, वह नज़र जो बड़े भाई छोटे भाइयों पर डालते हैं जब शक हो पर सबूत न हो। लोटन ने उस नज़र को बिना पलक झपकाए झेला और चला गया।

हर बहाने के पीछे एक झूठ था, और हर झूठ के पीछे एक सच्ची बेचैनी जिसका न कोई नाम था, न कोई पता, बस एक दिशा थी, रामनगर की तरफ़।

रामनगर बालमपुर से बहुत अलग नहीं था। वही खेत, वही पगडंडियाँ, वही नीम के पेड़, वही कच्चे-पक्के मकान जिनकी दीवारों पर गोबर के उपले सूखते थे। पर रामनगर में एक चीज़ थी जो बालमपुर में नहीं थी, और वह चीज़ मुनिया थी।

पर रामनगर में हरिप्रसाद ओझा भी थे।

हरिप्रसाद ओझा की बीस बीघा ज़मीन दोनों गाँवों के बीच फैली थी। उस ज़मीन पर गन्ना उगता था, गेहूँ उगता था, और हरिप्रसाद ओझा की धाक उगती थी। लंबे थे, चौड़े थे, मूँछें घनी और ऊपर को मुड़ी हुईं, धोती-कुर्ता हमेशा साफ़। उनके पास एक लाठी थी जिसे वह चलते वक़्त ज़मीन पर ठोकते थे और उस ठोक की

आवाज़ से ही लोग समझ जाते थे कि ओझा बाबू आ रहे हैं। यह ठीक एक ख़बर थी, एक चेतावनी थी, और कभी-कभी एक धमकी भी।

हरिप्रसाद ओझा की बेटी के लिए कोई साधारण लड़का बहाने बनाकर आए, यह बात अगर उन तक पहुँचती तो क्या होता, इसकी कल्पना करना ख़तरनाक था। पर लोटन को जब मुनिया की बात होती थी तो उसके भीतर का डर ऐसे ग़ायब हो जाता जैसे कभी था ही नहीं।

वह जाता तो सावधानी से जाता। पगडंडी पर, खेतों के बीच से, गन्ने की आड़ से, नहर के किनारे-किनारे। वह जानता था कि किसी ने देख लिया तो बात बनेगी, और बनी बात हरिप्रसाद ओझा तक पहुँचेगी, और ओझा जी तक पहुँची बात वापस नहीं आती, बस उसका अंजाम आता है।

पर सावधानी की भी एक हद होती है। जब आदमी रोज़ एक ही रास्ते पर चले, रोज़ एक ही वक़्त पर, रोज़ एक ही दिशा में जाए, तो कितना भी छिपे, कोई न कोई देख लेता है।

पंडित रामअवतार मिसिर ने लोटन को तीन बार रामनगर की तरफ़ जाते देखा।

पहली बार कुछ नहीं सोचा। दूसरी बार थोड़ा सोचा। तीसरी बार बहुत सोचा।

पंडित रामअवतार मिसिर के पास न खेत था, न नौकरी, न कोई काम-धंधा जिसे काम-धंधा कहा जा सके।

वे बालमपुर के मंदिर के स्वघोषित पुजारी थे, हालाँकि उनका घर रामनगर में पड़ता था। स्वघोषित, यह एक शब्द उनकी पूरी कहानी है। किसी ने उन्हें नहीं बनाया, न गाँव ने, न पंचायत ने, न किसी देवता ने सपने में आकर कहा कि जाओ मेरी सेवा करो। उन्होंने ख़ुद को बना लिया, उस तरह जैसे कुछ लोग बना लेते हैं, एक सुबह बालमपुर के मंदिर में जाकर बैठ गए, घंटी बजाई, धूप जलाई, आरती शुरू कर दी, और कोई नहीं बोला, क्योंकि मंदिर में बैठकर भगवान की

पूजा करने वाले से कौन कहे कि उठो, कहीं और बैठो। भगवान और पंडित रामअवतार मिसिर के बीच यही समझौता था, एक चुप था, दूसरे ने उसी चुप्पी का फ़ायदा उठाया।

पर उनके पास एक चीज़ थी जो दुनिया के किसी सेठ के पास उतनी नहीं थी, और वह थी ज़बान।

ज़बान से कमाते थे, ज़बान से खाते थे, ज़बान से जीते थे। उनकी ज़बान एक ऐसी दुकान थी जो हमेशा खुली रहती थी, सुबह भी, रात भी, बरसात में भी, जाड़े में भी, और जिसका किराया यह था कि सुनने वाला गंभीरता से सिर हिलाए और कहे कि हाँ पंडित जी, बिल्कुल सही कहा। यह गंभीरता उनके लिए रोटी से ज़्यादा ज़रूरी थी। रोटी तो मिल जाती है, किसी न किसी के घर से, किसी न किसी तरह, पर वह सिर हिलाना, वह हाँ पंडित जी, वह बिल्कुल सही, यह हर घर में नहीं मिलता, इसके लिए मेहनत लगती है, और पंडित रामअवतार मिसिर यह मेहनत करते थे।

किसी को किसी की ख़बर चाहिए, पंडित जी के पास जाओ। किसी को किसी के घर का राज़ चाहिए, पंडित जी ज़रूर जानते होंगे। और अगर नहीं जानते तो बता देंगे किसी तरह, क्योंकि ज़बान को ख़ाली छोड़ना उनकी फ़ितरत में नहीं था। ख़ाली ज़बान उन्हें वैसी लगती थी जैसे ख़ाली पेट लगता है किसी और को।

तीसरी बार देखने के बाद उन्होंने वही किया जो वह हमेशा करते थे।

बात फैलाई।

बात कैसे फैलती है यह एक विज्ञान है जिसे कोई विश्वविद्यालय नहीं पढ़ाता पर जो हर गाँव में चलता है। पंडित रामअवतार मिसिर ने पहले रमेसर को बताया। रमेसर ने बलदेव को। बलदेव ने अपनी पत्नी को। बलदेव की पत्नी ने चमेली चाची को। चमेली चाची ने फग्गू की बहू को। फग्गू की बहू ने अपनी ननद को। ननद ने अपनी सास को। और सास ने एक शाम सत्यनारायण की कथा में गांव की उन

सारी औरतों को बताई जो उस शाम वहाँ कथा सुनने आयी थी और गाँव भर की ख़बरें छानती थीं जैसे कोई आटा छानता है, महीन-महीन, ताकि कोई कंकड़ न रह जाए।

इस पूरी ज़ंजीर में एक ख़ास बात यह थी कि जो बात पंडित रामअवतार मिसिर ने शुरू की थी वह जब चौपाल तक पहुँची तो बिल्कुल बदल चुकी थी। पंडित रामअवतार मिसिर ने बस इतना कहा था कि लोटन रामनगर की तरफ़ जाता दिखा। इस बात में सच कितना था और जो जुड़ा वह कहाँ से आया, यह अब कोई नहीं जान सकता था। गाँव की बातें एक बार बन जाएँ तो उनमें से सच और झूठ को अलग करना वैसा ही है जैसे दूध में से पानी को अलग करना, हो तो सकता है पर करे कौन।

पर एक बात सच थी।

लोटन जाता था।

वह जाता था और कभी कभी मुनिया को देख पाता था, और कभी कभी नहीं। जिन दिनों देख पाता उन दिनों वह लौटकर एक अलग इंसान होता, उसकी चाल में एक रवानी होती, उसकी आँखों में एक चमक होती जो पूरब तक को दिख जाती। और जिन दिनों नहीं देख पाता उन दिनों वह उदास लौटता, चुप रहता, खाना कम खाता, और रात को खटिया पर लेटकर छत की उस छिपकली को देखता रहता जो हर दिन उसे दीवार के किसी न किसी कोने पर दिख ही जाती थी।

देखने का मतलब बस देखना था।

यह बात बहुत ज़रूरी है और इसे समझे बिना इस कहानी को समझना मुश्किल है। लोटन और मुनिया के बीच कोई बात नहीं हुई थी। कोई ख़त नहीं गया था। कोई संदेश नहीं भेजा गया था। कोई इशारा नहीं किया गया था, सिवाय उस हैंडपंप वाली दोपहर के, जब किशोर कुमार की आवाज़ बीच में थी और दोनों ने

एक दूसरे को देखा था। उसके बाद से लोटन रामनगर जाता, मुनिया के घर की गली से गुज़रता, कभी कभी मुनिया खिड़की पर दिख जाती, कभी दरवाज़े पर, कभी पीपल के पास, और दोनों देखते और गुज़र जाते। बस। इतना। और इतने में लोटन को लगता कि उसे दुनिया भर की दौलत मिल गई।

मुनिया क्या सोचती थी, यह लोटन को नहीं पता था।

यह सबसे बड़ी तकलीफ़ थी और सबसे बड़ी ख़ूबसूरती भी। तकलीफ़ इसलिए कि न जानना अपने आप में एक दर्द है। ख़ूबसूरती इसलिए कि न जानने में एक उम्मीद छिपी रहती है, और जब तक उम्मीद है तब तक सब कुछ मुमकिन है। अगर लोटन को पता चल जाता कि मुनिया क्या सोचती है, अगर उसे साफ़ पता चल जाता कि हाँ या ना, तो शायद यह कहानी यहीं ख़त्म हो जाती। पर न जानना उसे ज़िंदा रखता था, वैसे ही जैसे हवा पतंग को ज़िंदा रखती है, खींचती भी है और उड़ाती भी है।

साल बीत गए।

रबी आई, खरीफ़ आई, रबी फिर आई। एक होली से दूसरी होली तक। फलाने की लड़की की शादी हुई, ढिमके के लड़के की, और इन दोनों के बीच कितना वक़्त गुज़रा, यह कोई गिनता नहीं। गाँव में साल कैलेंडर से नहीं बीतते। बस बीत जाते हैं।

लोटन के बहानों के बीच कितने साल गुज़रे, यह गिनना मुश्किल है। पर गुज़रे। चुपचाप, जैसे नदी बहती है, बिना किसी से पूछे। बाहर से देखने वालों को लगता कि लोटन वही है, वही स्कूल जाता है, वही बब्बन भैया के आँगन में झाड़ू लगाता है, वही रेडियो के पास बैठता है। पर भीतर से बदल रहा था, जैसे नदी का पानी पत्थर को घिसता है, दिखता कुछ नहीं पर सालों बाद पत्थर गोल हो जाता है।

मुनिया ग्यारहवीं में पहुँच गई।

यह बात कहने में जितनी आसान है, होने में उतनी मुश्किल थी। रामनगर में लड़की का ग्यारहवीं तक पढ़ना हरिप्रसाद ओझा जैसे घर में ही हो सकता था, क्योंकि बाक़ी घरों में लड़कियाँ आठवीं के बाद घर बैठा दी जाती थीं। पर ओझा जी ने मुनिया को पढ़ने दिया। इसलिए नहीं कि वे लड़कियों की पढ़ाई के हामी थे, ओझा जी उन बातों के हामी नहीं थे जो नई हों, वे पुरानी बातों के हामी थे, पुराने रिवाज के, पुराने नियम के, पुरानी मर्यादा के। उन्होंने इसलिए पढ़ाया कि पढ़ी-लिखी लड़की की शादी अच्छे घर में होती है, और अच्छे घर का मतलब था ज़्यादा ज़मीन, ज़्यादा रसूख़। मुनिया की पढ़ाई एक निवेश था जिसका लाभ शादी में मिलता। यह बात ओझा जी ने कभी ज़बान पर नहीं लाई, पर उनकी पत्नी जानती थी, उनके भाई जानते थे, और शायद मुनिया भी, हालाँकि वह कभी इस बारे में नहीं बोली।

लोटन दसवीं में था।

कॉपी में निबंध की जगह अब भी गाने लिखता था, पर वे गाने बदल गए थे। पहले दूसरों के गाने होते थे, मुकेश के, रफ़ी के, तलत के। अब अपने होते थे। टूटी-फूटी पंक्तियाँ, जिनमें न छंद था न लय, पर एक सच्चाई थी। उसने एक पंक्ति लिखी जो पूरब को बहुत पसंद आई। "तुम्हारा दुपट्टा गिरता है तो मेरा दिल गिरता है।" पूरब ने कहा था, यह तो फ़िल्म में चलेगा। लोटन ने हँसकर कहा था, फ़िल्म तो दूर, यह गली में भी नहीं चलेगा।

पूरब नवमीं में था। बड़ा हो गया था पर आदतें वही थीं। हर बात पर राय, हर समस्या का हल जो अक्सर समस्या से बड़ा होता था। पर वह कभी हार नहीं मानता था। एक योजना फेल होती तो दूसरी बनाता।

उन दिनों गाँव में फ़िल्में देखी नहीं जाती थीं, सुनी जाती थीं। यह बात अजीब लगेगी पर थी। फ़िल्म का ऑडियो ग्रामोफ़ोन के एक भारी, काले रिकॉर्ड पर क़ैद होते, जो किसी एक रसूख़दार के घर किसी बड़े समारोह के दिन किराये पर

मंगाया जाता, और उसकी मेहरबानी से पूरा गाँव सुनता। सुनकर सोचता कि नायक ऐसा होगा, हीरोइन ऐसी होगी, और हर सुनने वाला अपने मन में अपनी तस्वीर बनाता।

एक सुबह लोटन और पूरब खेत की तरफ़ जा रहे थे। सुबह वह जो आती है जब अँधेरा अभी पूरा नहीं गया और उजाला अभी पूरा नहीं आया। दोनों चल रहे थे, चुप, वह चुप जो सुबह की होती है जब शब्द अभी नींद में होते हैं। पर पूरब वह आदमी था जिसे चुप रहना नहीं आता था, और उस सुबह उसने बातों-बातों में वह सवाल पूछ लिया जो बच्चे पूछते हैं और बड़े टालते हैं।

"भइया, बड़ा होकर क्या बनना है?"

लोटन ने बिना एक पल सोचे कहा, "नायक।"

पूरब ने कुछ नहीं कहा। वह चलता रहा। पर उसके चेहरे पर कुछ था, वह जानने की तसल्ली जो उसे पहले से थी।

रूपा का गवना हो चुका था। शादी की तारीख़ का इंतज़ार था। रूपा ने स्कूल नहीं छोड़ा था। वह अब भी वही थी, हँसमुख, बेफ़िक्र। एक बार उसने मुनिया से पूछा था, "अरी, वह लड़का जो पीपल के पास से गुज़रता है, वह तेरे लिए आता है क्या।" मुनिया ने कहा था, "चुप कर।" रूपा हँसी थी। दोनों के बीच एक ऐसी समझ थी जो शब्दों के बिना काम करती थी। रूपा जानती थी कि मुनिया जानती है। मुनिया जानती थी कि रूपा जानती है। पर दोनों ने यह बात कभी खुलकर नहीं कही, क्योंकि कुछ बातें कहने से बिगड़ जाती हैं और न कहने से बनी रहती हैं।

रूपा मुनिया के लिए एक ढाल थी। जब मुनिया अकेली चलती तो लोग देखते, जब रूपा साथ होती तो नज़र बँट जाती। रूपा की शोरगुल में मुनिया की चुप्पी छिप जाती। दोस्त ऐसे ही होते हैं, पुल की तरह, जिनसे लोग गुज़रते हैं, पुल को कोई शुक्रिया नहीं कहता, पर बिना पुल के नदी पार नहीं होती।

और इन्हीं दिनों एक और बात हुई, बहुत धीरे।

लोटन अब लोटन नहीं रहा था।

वह नाम जो उसने उस पहली रात अपने भीतर रखा था, उस रात जब रेडियो आया था और भीतर खिड़की खुली थी, वह नाम अब बाहर भी आने लगा था। पूरब पहले उसे "भूत" पुकारता था, वह संबोधन जो उसके अजीब सपनों की वजह से पड़ा था। पर एक दिन उसने ज़ोर से बुलाया, "प्रेम भइया।" लोटन ने मुड़कर देखा और मुस्कुराया। फिर स्कूल के लड़कों ने शुरू किया। फिर बब्बन भैया ने एक दिन हँसकर कहा, "क्या बात है प्रेम कुमार, आज बड़े ख़ुश दिख रहे हो।"

जो अभी भी लोटन कहते, उन्हें वह अनसुना कर देता। जैसे वह आवाज़ किसी और के लिए आई हो। रामखेलावन जब लोटन कहते तो वह मुड़ता ज़रूर, क्योंकि बाप की आवाज़ अनसुनी करना उसके बस का नहीं था, पर उसके चेहरे पर एक हल्की-सी बेचैनी आ जाती।

यह एक विद्रोह था। छोटा, चुपचाप। नाम बदलना किसी क़ानून में जुर्म नहीं, पर गाँव में जो क़ानून में जुर्म नहीं वह समाज में जुर्म है।

पूरा गाँव जानता था। पंडित रामअवतार मिसिर ने बात फैला दी थी, और बात हर चौपाल पर थी, हर कुएँ पर, हर खेत की मेड़ पर। बस एक जगह नहीं पहुँची थी, रामखेलावन के कानों तक, क्योंकि बाप हमेशा सबसे आख़िर में जानता है, और जब जानता है तो दुनिया भर के ताने एक साथ सुनता है।

रामखेलावन को पता चला एक शाम।

खेत की मेड़ में बैठे थे, अकेले, बीड़ी पी रहे थे। पंडित रामअवतार मिसिर उधर से गुज़रे, रुके।

"राम राम, रामखेलावन भाई।"

"राम राम।"

"अरे अपने लड़के का कारनामा सुना क्या?"

"कौन से लड़के की?"

"तुम्हारे मझले की। लोटन की।"

रामखेलावन का चेहरा बदला। बीड़ी का धुआँ रुक गया।

"क्या बात है?"

पंडित रामअवतार मिसिर ने वह भाव बनाया जो वह तब बनाते थे जब बड़ी ख़बर सुनाने वाले होते। थोड़ी चिंता, थोड़ी गंभीरता, और उसके पीछे वह ख़ुशी जो किसी को कोई ख़बर पहले बताने में आती है।

"रामखेलावन भाई, तुम्हारा लड़का रामनगर जाता है। रोज़ जाता है। किसी लड़की के चक्कर में।"

रामखेलावन की बीड़ी हाथ से गिर गई।

एक पल वे चुप रहे। फिर उन्होंने पंडित रामअवतार मिसिर की तरफ़ देखा। उनकी आँख में कुछ था जो पंडित रामअवतार मिसिर ने पहले कभी नहीं देखा था। वह चीज़ थी शर्म। पर वह शर्म बेटे के काम से नहीं आती थी। वह शर्म इस बात से आती थी कि पंडित रामअवतार मिसिर जैसे आदमी ने बताया। वह आदमी जिसके पास न खेत है, न काम, जिसकी ज़बान दुनिया की सबसे लंबी ज़बान है, उसने बताया कि मेरा बेटा कहाँ जाता है। यह अपमान बेटे के किसी भी काम से बड़ा था।

रामखेलावन ने कुछ नहीं कहा। उठे। बीड़ी के टुकड़े को पैर से मसला। और घर की तरफ़ चल दिए।

पंडित रामअवतार मिसिर खड़े रह गए। उन्हें उम्मीद थी कि रामखेलावन कुछ और पूछेंगे, कुछ और जानना चाहेंगे, पर रामखेलावन ने कुछ नहीं पूछा। पंडित रामअवतार मिसिर को थोड़ी निराशा हुई, क्योंकि ख़बर सुनाने का पूरा मज़ा तभी

आता है जब सुनने वाला और सवाल पूछे, क्योंकि बिना सवालों के ख़बर अधूरी रह जाती है, जैसे बिना नमक का खाना।

रामखेलावन घर पहुँचे। आँगन में फूलमती चूल्हा जला रही थी। रानी, लोटन की छोटी बहन, आँगन के एक कोने में बैठी कुछ उधेड़बुन कर रही थी, शायद कोई कपड़ा सिल रही थी। सूरज, सबसे छोटा, कहीं बाहर खेल रहा था। शिवकुमार खेत से अभी नहीं लौटा था। और लोटन। लोटन अभी नहीं आया था।

रामखेलावन ने फूलमती की तरफ़ देखा। फूलमती ने उनकी तरफ़ देखा। उनकी आँखों के बीच कुछ गुज़रा जो शब्दों से परे था। फूलमती ने चूल्हे की लौ से अपनी नज़र नहीं हटाई, पर उसकी आँख में वह चीज़ आई जो हमेशा आती थी जब उसे पता चलता कि कुछ होने वाला है। वह चीज़ क्या थी, कहना मुश्किल है, पर वह थी, और फूलमती उसे पहचानती थी जैसे कोई अपने पुराने दर्द को पहचानता है।

रामखेलावन ने कहा, लोटन कहाँ है।

फूलमती ने कहा, बाहर गया है।

कहाँ।

फूलमती चुप रही।

रामखेलावन ने फिर पूछा, कहाँ गया है।

फूलमती ने चूल्हे की आग को थोड़ा बड़ा किया, एक लकड़ी और डाली, और कहा, कहाँ जाता है, वहीं गया होगा। यह जवाब रामखेलावन के लिए एक थप्पड़ जैसा था। इसमें कोई ताक़त नहीं थी, कोई आवाज़ नहीं थी, पर इसमें वह सच था जो रामखेलावन सुनना नहीं चाहते थे। फूलमती जानती थी। फूलमती को पता था। और फूलमती ने कभी बताया नहीं। यह बात रामखेलावन को और भी भीतर

तक काट गई। वे चुपचाप बैठ गए। आँगन में। दीवार से टेक लगाकर। उनके हाथ में कुछ नहीं था, पर उनकी मुट्ठी बंद थी। वह इंतज़ार कर रहे थे।

लोटन शाम को लौटा।

अँधेरा उतर चुका था। आसमान में तारे आ गए थे, वही तारे जिन्हें लोटन चैत की उस रात देखकर मुस्कुराया था। पर आज वह तारों को नहीं देख रहा था। वह बस चल रहा था, तेज़ी से, क्योंकि आज उसने मुनिया को देखा था, दूर से, पीपल के पास, और मुनिया ने भी उसे देखा था, और दोनों के बीच फिर वही हुआ जो हमेशा होता था, कुछ सेकंड की वह देखा देखी जो दुनिया के किसी शब्दकोश में नहीं है।

वह आँगन में दाख़िल हुआ। अँधेरे में उसे रामखेलावन नहीं दिखे। फूलमती ने रसोई से कहा, "खाना रखा है, खा ले।" लोटन ने कहा, "हाँ, बस आता हूँ।" वह अपने कमरे की तरफ़ बढ़ा, और तभी रामखेलावन उठे। अँधेरे में उनकी आकृति बड़ी दिखी, ज़रूरत से ज़्यादा बड़ी, जैसे अँधेरे ने उन्हें और बड़ा बना दिया हो। उनके हाथ में वही लाठी थी, आम की लकड़ी की, जो आँगन के कोने में हमेशा रखी रहती थी।

"लोटन।"

लोटन रुका। उसने पलटकर देखा। अँधेरे में रामखेलावन का चेहरा नहीं दिख रहा था, बस उनकी आवाज़ थी, पर वह आवाज़ काफ़ी थी। उस आवाज़ में वह सब कुछ था जो लोटन को समझने की ज़रूरत थी।

"कहाँ से आ रहा है।"

लोटन चुप रहा।

"मैंने पूछा, कहाँ से आ रहा है।"

"बाहर से," लोटन ने कहा।

"बाहर कहाँ।"

लोटन फिर चुप रहा।

और पहली बार लाठी उठी। रामखेलावन ने उसे सिर के ऊपर उठाया, और लोटन ने अँधेरे में उस लाठी की छाया देखी, जो दीवार पर गिर रही थी। पर मारने से पहले रामखेलावन एक पल रुके। बस एक पल। आँगन में कोई आवाज़ नहीं थी, जैसे घर की हर साँस उसी एक पल में अटक गई हो। उस पल में रामखेलावन के भीतर क्या हुआ, यह उन्होंने कभी किसी को नहीं बताया, शायद ख़ुद को भी नहीं। बस इतना हुआ कि ऊपर उठा हाथ एक पल को ठहर गया, जैसे किसी गहरे कुएँ की तह से कोई परछाईं एक पल के लिए ऊपर झलकी हो और फिर अँधेरे में डूब गई हो।

पर रुकना एक पल का था। लाठी उठी थी तो गिरी भी।

लाठी पड़ी। पीठ पर पड़ी। कंधे पर पड़ी। लोटन ने मार खाई, चुपचाप, बिना रोए, बिना चीखे, एक आवाज़ नहीं निकाली। यह चुप रहना वही था जो लोटन ने पंडित प्राणनाथ शुक्ला की बेंत खाते हुए सीखा था, वह चुप रहना जो मार से ज़्यादा तकलीफ़देह होता है मारने वाले के लिए, क्योंकि जब बच्चा रोता है तो बाप को लगता है कि मार काम कर रही है, कि लाठी ने अपना काम किया, पर जब बच्चा चुप रहता है तो लगता है मार किसी दीवार पर पड़ रही है, और दीवार पर पड़ी मार का कोई मतलब नहीं होता। रामखेलावन ने तीन बार मारा। तीन बार। फिर रुके। उनकी साँस तेज़ हो गई थी। उनके हाथ में लाठी अभी भी थी पर अब उसमें वह ताक़त नहीं थी जो पहले थी। लोटन खड़ा रहा। उसकी पीठ पर तीन लकीरें थीं जो कल तक नील होंगी।

"किस लड़की से मिलने जाता है," रामखेलावन ने कहा।

लोटन चुप रहा।

"देख लोटन, अगर तूने जवाब नहीं दिया तो ठीक नहीं होगा।"

लोटन ने सिर उठाया। अँधेरे में भी उसकी आँखें चमक रही थीं।

"लोटन नहीं प्रेम कुमार। प्रेम कुमार नाम है हमारा।"

यह नाम सुनते ही रामखेलावन ने एक और लाठी मारी। यह चौथी लाठी थी और यह सबसे भारी थी, क्योंकि इसमें सिर्फ़ ग़ुस्सा नहीं था, इसमें वह तिलमिलाहट थी जो बाप को तब होती है जब बेटा उसकी बात न माने, और बात न मानने के ऊपर से अपना नया नाम सुनाए, जो नाम बाप ने नहीं रखा, जो नाम बाप के बिना रखा गया। लोटन गिरा। ज़मीन पर गिरा। पर गिरकर भी चुप रहा। फूलमती रसोई के दरवाज़े पर खड़ी थी। उसने कुछ नहीं कहा। उसके हाथ में करछुल था और करछुल से दाल टपक रही थी, ज़मीन पर, बूँद बूँद, पर फूलमती को ध्यान नहीं था। उसकी आँख लोटन पर थी।

और फिर एक अजीब बात हुई।

फूलमती ने करछुल रखा। चूल्हे पर से एक रोटी उठाई, गरम, अभी अभी सिंकी हुई, और उसे एक थाली में रखकर लोटन के पास लाई। लोटन ज़मीन पर बैठा था, पीठ दीवार से टिकी हुई, और फूलमती ने बिना कुछ कहे थाली उसके सामने रख दी। रोटी पर थोड़ा अचार था, नींबू का, और थोड़ा नमक। रामखेलावन ने देखा। उन्होंने देखा कि मार खाए लड़के को उसकी माँ ने खाना दिया, बिना कुछ कहे, बिना कुछ पूछे, जैसे यह एक पुराना क्रम है जो बरसों से चल रहा है। रामखेलावन ने लाठी एक कोने में रखी, और चले गए, अंदर। फूलमती ने लोटन की तरफ़ देखा। लोटन ने फूलमती की तरफ़ देखा। दोनों के बीच कोई शब्द नहीं था, बस एक रोटी थी, गरम, जिसमें घी नहीं था, अचार था, और अचार में एक खटास थी जो ज़िंदगी की खटास जैसी थी।

लोटन ने रोटी खाई। एक एक कौर। धीरे धीरे।

उस रात लोटन ने सोने की कोशिश की पर नींद नहीं आई। पीठ दुख रही थी। कंधा दुख रहा था। पर दर्द सिर्फ़ शरीर में नहीं था, कहीं और भी था, कहीं गहरे, जहाँ लाठी नहीं पहुँचती, जहाँ बस एक सवाल पहुँचता है, कि क्या मैं ग़लत हूँ। यह सवाल लोटन ने अपने आप से पूछा। क्या मैं ग़लत हूँ। क्या रामनगर जाना ग़लत है। क्या मुनिया को देखना ग़लत है। क्या किसी से प्रेम करना ग़लत है जो तुम्हारी हैसियत से ऊपर है, जिसके बाप के पास बीस बीघा अपनी ज़मीन है, और तुम्हारे बाप के पास अपनी कहने को एक मुट्ठी मिट्टी भी नहीं।

उसने सोचा। बहुत सोचा। और सोचने के बाद उसने जो फ़ैसला किया वह वही था जो उसने हमेशा से किया था। कल फिर जाऊँगा।

रात भर पीठ की चोट के साथ वह कराहता भी रहा और गुनगुनाता भी रहा, दोनों एक साथ, एक ही साँस में, जैसे दर्द और गाना उसके भीतर एक ही जगह से निकलते हों। याद नहीं कौन सा गाना था, याद बस इतना था कि बब्बन भैया के रेडियो से कोई धुन कभी कान में बस गई थी, ऐसी धुन जो कहती थी कि प्रेम न सुख देखता है न दुख, न जात देखता है न औक़ात, बस होता है, बेपरवाह, बेहिसाब। लोटन को ख़ुद पता नहीं चला कि रात के किस पहर कराहना धुन बन गया और धुन कराहना।

अगले दिन लोटन फिर चला गया।

ऐसे चला गया जैसे कल कुछ हुआ ही नहीं। जैसे पीठ पर लाठी के निशान ही नहीं। कोई बहाना नहीं बनाया। बहाने बनाने का वक़्त गुज़र गया था, क्योंकि रामखेलावन को सब पता था, तो बहाना किसके लिए। रामखेलावन ने देखा। शायद खिड़की से, शायद दरवाज़े की दरार से। देखा कि लड़का जा रहा है, उसी तरफ़, फिर। कल की मार के बावजूद। उन्होंने कुछ नहीं कहा। दो दिन बाद फिर मारा। इस बार चप्पल। चप्पल कम चोट करती है पर ज़्यादा अपमान करती है। लोटन ने चप्पल भी खाई, चुपचाप, वही पुरानी चुप्पी। तीन दिन बाद एक थप्पड़।

बाएँ गाल पर। आवाज़ आँगन में गूँजी। लोटन ने वह थप्पड़ ऐसे लिया जैसे पानी का छींटा मारा हो।

और फिर एक शाम वह मार आई जो बिना हाथ उठाए पड़ती है।

रामखेलावन आँगन में बैठे थे। लोटन लौटकर आया। दोनों ने एक-दूसरे को देखा। रामखेलावन ने न लाठी उठाई, न चप्पल, न हाथ। बस देखा। और उस देखने में वह सब कुछ था जो कहता था कि मैं हार गया, तू जीत गया, पर यह जीत और यह हार दोनों के बीच जो रिश्ता है वह टूट रहा है। लोटन अपने कमरे में गया। दरवाज़ा बंद किया। और पहली बार रोया। आवाज़ नहीं निकाली, पर रोया। आँसू बहे चुपचाप, जैसे उस शाम बहे थे जब बब्बन भैया के रेडियो पर वह गाना बजा था। पर इस बार गाना बाहर से नहीं आ रहा था, भीतर से था।

फूलमती ने दरवाज़े के बाहर से सुना। उन्होंने दरवाज़ा नहीं खोला। बस दरवाज़े के बाहर एक थाली रख दी। थाली में रोटी थी। रोटी पर घी था। बहुत पतली परत। सुबह जब लोटन ने दरवाज़ा खोला, थाली वहाँ थी। रोटी ठंडी हो गई थी। घी जम गया था। पर लोटन ने वह रोटी खाई। ठंडी, जमे हुए घी वाली। और उस रोटी का स्वाद उसे पूरी ज़िंदगी याद रहा। शिवकुमार उन दिनों जब लाठी पड़ती, बाहर खड़ा रहता था। बचाने नहीं आता। बस दीवार से टिका हुआ, बीड़ी पीता हुआ। पर बिल्कुल बेरुख़ नहीं था। कभी-कभी, जब लोटन मार खाकर अपने कमरे में जाता, शिवकुमार दरवाज़े के पास से गुज़रते हुए एक पल के लिए रुक जाता। बस एक पल। दरवाज़े की तरफ़ देखता, जैसे कुछ कहना चाहता हो। पर कहता नहीं। आगे बढ़ जाता। यह एक पल शिवकुमार की परवाह थी, इतनी छोटी कि दिखती नहीं थी, पर थी।

सूरज सब जानता था।

एक दिन सूरज ने लोटन का पीछा किया था। चुपचाप। खेतों के बीच से, गन्ने के बीच से। लोटन को पता नहीं चला, सूरज छोटा था और आसानी से छिप जाता

था। उसने देखा कि लोटन रामनगर गया, पाठक वाली गली में गया, पीपल के पास खड़ा हुआ। और उसने देखा कि एक लड़की खिड़की पर आई, बहुत थोड़ी देर के लिए, और लोटन ने उसे देखा, लड़की ने लोटन को देखा। बस। सूरज वापस लौट आया। उसने किसी को नहीं बताया। न बाप को, न माँ को, न शिवकुमार को। यह उसकी वफ़ादारी थी, वह वफ़ादारी जो बिना किसी कसम के होती है, बिना किसी वादे के, जो बस होती है।

रानी ने एक बार एक सवाल पूछा था।

"भैया, वो लड़की कौन है जिसके लिए रेडियो ले गए थे।"

लोटन चुप रहा। रानी ने भाई की तरफ़ देखा, हल्की-सी मुस्कुराई, और अपने काम में लग गई। उसने दोबारा कभी यह सवाल नहीं पूछा। मार पड़ती रही। रोक लगती रही। पर धीरे-धीरे लाठी कम होती गई। सप्ताह में दो बार से पंद्रह दिन में एक बार। फिर महीने में। फिर दो महीने में। और फिर एक दिन रामखेलावन ने लाठी उठाने के बारे में सोचा और उनके हाथ ने मना कर दिया। जब बाप का हाथ उठने से मना कर दे तो कुछ टूटता है। वह टूटना दिखता नहीं, सुनाई नहीं देता, पर होता है। रामखेलावन ने मारना बंद किया। पर बोलना भी बंद कर दिया। लोटन से सीधे बात नहीं करते थे। अगर कुछ कहना होता तो फूलमती से कहते, शिवकुमार से, रानी से। यह चुप्पी एक नई मार थी। लोटन इसे रोज़ झेलता था। सुबह उठता, रामखेलावन को देखता, रामखेलावन उसकी तरफ़ नहीं देखते। शाम को लौटता, रामखेलावन बीड़ी पीते रहते जैसे लोटन वहाँ है ही नहीं।

पर एक सुबह कुछ हुआ।

रामखेलावन खेत पर जा रहे थे। आँगन से गुज़रते हुए उनकी नज़र लोटन के कमरे के अधखुले दरवाज़े पर पड़ी। दरार से उन्होंने देखा कि लोटन खटिया पर बैठा है, हाथ में एक कॉपी है, और वह कुछ लिख रहा है। उसका चेहरा बहुत शांत था। उसके होंठ हिल रहे थे, जैसे कुछ गा रहा हो, बहुत धीमे, बिना आवाज़ के। और

उसकी आँखों में वह चीज़ थी जो रामखेलावन ने पहले भी देखी थी, बहुत बरस पहले, शायद अपनी आँखों में, शायद किसी और की, पर देखी थी। रामखेलावन एक पल रुके। फिर आगे बढ़ गए। पर उस एक पल में कुछ बदला।

उस रात फूलमती ने रोटी देते हुए कहा, "बस एक बात।"

रामखेलावन ने देखा।

"लड़का बुरा नहीं है।"

तीन शब्द। माँ के तीन शब्द। रामखेलावन ने कुछ नहीं कहा। रोटी खाते रहे। उस रात उन्होंने बहुत देर तक बीड़ी पी। एक के बाद एक। धुआँ छत की तरफ़ उठता रहा। और रामखेलावन सोचते रहे। शायद वह यह सोच रहे थे कि उनका बेटा डेढ़ कोस रोज़ चलता है, लाठी खाकर भी, चप्पल खाकर भी, थप्पड़ खाकर भी, उस मार के बाद भी जो आँखों से पड़ती है। और शायद उन्हें याद आया कि बहुत बरस पहले वह भी किसी के लिए दो कोस पैदल चले थे। और उनके ऊपर भी शायद कोई लाठी उठी थी, या शायद नहीं उठी, पर उठती तो भी वह जाते। उसी रात, नीम के अँधेरे में, एक विचार आया जो एक पल के लिए रोशन हुआ और चला गया। मैं भी कभी नहीं माना था। रामखेलावन ने उस विचार को पकड़ने की कोशिश नहीं की। उसे जाने दिया। वह उठे। घर की तरफ़ चले। उसी रात लोटन बब्बन भैया के घर से लौटा। उसके क़दम हल्के थे, तेज़ थे। रामखेलावन जाग रहे थे पर सोने का दिखावा कर रहे थे। उन्होंने क़दमों की आवाज़ सुनी। वह क़दम हल्के थे और उनमें एक ख़ुशी छिपी थी। घर में छह लोग थे। एक छत, दो कमरे, एक आँगन, और एक राज़ जो सबको पता था पर जिसे कोई ज़बान पर नहीं लाता था। घर में छह लोग थे, एक छत, दो कमरे, एक आँगन, और इन सबके बीच एक राज़ जो सबको पता था और जिसे कोई ज़बान पर नहीं लाता था। बाप जानता था, माँ जानती थी, बड़े भाई को भी पता था और छोटे को भी, बहन तक जानती थी, और लोटन यह जानता था कि घर का हर कोना यह जानता है। पर

कोई कुछ नहीं बोलता था। यह चुप्पी किसी समझौते की नहीं थी, किसी ने बैठकर तय नहीं किया था। यह वह चुप्पी थी जो घर की दीवारों में रच जाती है, जो हवा में घुल जाती है। गाँव के घर ईंट और गारे से नहीं, ऐसी चुप्पियों से बनते हैं।

एक बात थी जो पूरब को समझ नहीं आती थी, और यह न समझ आना पूरब की कमज़ोरी नहीं थी, यह उस फ़र्क की बात थी जो प्रेम करने वाले और न करने वाले के बीच होता है, वह फ़र्क जो समंदर और किनारे के बीच का है, किनारे पर खड़ा आदमी समंदर को देखता है पर समंदर को समझता नहीं, समझने के लिए डूबना पड़ता है, और पूरब डूबा नहीं था, वह किनारे पर खड़ा था, लोटन का दोस्त, लोटन का मंत्री, पर किनारे पर।

"भइया, मुनिया तो उसी स्कूल में पढ़ती है। तुम रोज़ उसे देखते हो। तो फिर हर दिन डेढ़ कोस पैदल क्यों।"

लोटन ने सोचा। सोचा कि कैसे समझाए पूरब को, कैसे बताए कि स्कूल में मुनिया को देखना वह देखना नहीं जो वह चाहता है, स्कूल में भीड़ होती है, शोर, मास्टर साहब की आवाज़, बच्चों का हल्ला, घंटी, किताबें, कॉपियां, और इन सबके बीच मुनिया दिखती ज़रूर है पर ऐसे दिखती है जैसे कोई गाना बाज़ार में सुनो, बोल सुनाई दें पर धुन बिखर जाए, शब्द आएं पर संगीत न आए, और बिना संगीत के शब्द क्या हैं, बस शब्द, खाली, सूखे, बेजान। स्कूल में मुनिया शब्द थी, बाहर वह गाना थी, पूरा गाना, शब्दों और संगीत के साथ, और वह संगीत कहां से आता था, रेडियो से, किशोर कुमार से, और किशोर कुमार की आवाज़ और मुनिया को देखना लोटन के लिए दो अलग चीज़ें नहीं थीं, वे एक ही चीज़ के दो हिस्से थे, जैसे रोटी और नमक, अलग अलग खाओ तो कुछ नहीं, साथ खाओ तो सब कुछ, और लोटन को दोनों साथ चाहिए थे, मुनिया और किशोर कुमार, देखना और सुनना, और यह "साथ" सिर्फ स्कूल के बाहर मिलता था, उस पगडंडी

पर, उस मोड़ पर, उस वक़्त जब मुनिया स्कूल से लौटती और लोटन रेडियो लिए खड़ा होता।

यह बात लोटन ने पूरब को बताई नहीं, बता नहीं सकता था, क्योंकि कुछ बातें ऐसी होती हैं जो महसूस होती हैं पर शब्दों में नहीं आतीं, जैसे किसी गाने की धुन मुंह पर आए पर शब्द न आएं, और लोटन ने चुप रहकर जवाब दिया, वह जवाब जो चुप्पी का होता है और जो शब्दों से ज़्यादा बोलता है।

पूरब ने एक और सवाल पूछा, वह सवाल जो पूरब ही पूछ सकता था क्योंकि पूरब सीधा आदमी था और सीधे आदमी सीधे सवाल पूछते हैं।

"तुम रोज़ रामनगर जाते हो, कुछ बोलते क्यों नहीं।"

"क्या बोलूं।"

यह "क्या बोलूं" सवाल नहीं था, यह जवाब था, पूरा जवाब, मुकम्मल, आख़िरी, जिसके बाद कुछ और कहने की जगह नहीं, पर पूरब को समझ नहीं आया, क्योंकि पूरब की दुनिया शब्दों की दुनिया थी, उसे लगता था कि जब तक बोलो नहीं तब तक बात नहीं होती, और यह सोचना उसकी कमज़ोरी नहीं, उसकी सीमा थी, वह सीमा जो हर उस आदमी की होती है जो प्रेम में नहीं पड़ा।

"कुछ भी। नमस्ते कह दो। कैसी हो कह दो।"

लोटन को हँसी आई। वह हँसा। और उस हँसी में, उसी पल, एक बात हुई जो बाहर से किसी ने नहीं देखी। लोटन को एक पल के लिए लगा कि सब ठीक है। बाप की लाठी ठीक है। वह लाठी जिसकी चोट तीन दिन रहती है। भाई की बेरुख़ी ठीक है। माँ की चुप्पी ठीक है। पगडंडी ठीक है। मुनिया का दिखना ठीक है। न दिखना भी ठीक है। क्योंकि जो उसके भीतर है, वह अभी भी है। न लाठी से गई, न चप्पल से, न उस मार से गई जो आँखों से पड़ती है। वह उसकी थी। सिर्फ़

उसकी। दुनिया में और कुछ उसका नहीं था, न ज़मीन थी, न पैसा, पर यह एक चीज़ उसकी थी। और इतना काफ़ी था।

बालमपुर में एक लड़का रहता था जिसका नाम लोटन था पर जो अपने आप को प्रेम कुमार कहता था। उसके बाप ने उसे मारा और वह नहीं रुका। उसकी माँ ने उसे रोटी दी और उसने खाई, ठंडी भी, घी जमे हुए वाली भी। उसके बड़े भाई ने बेरुख़ी दिखाई और वह समझ गया कि बड़ा भाई अपने तरीक़े से बचा रहा है। उसके छोटे भाई ने वफ़ादारी निभाई, बिना कसम के, बिना वादे के। उसकी बहन ने एक सवाल पूछा और चुप हो गई। और यह लड़का हर दिन डेढ़ कोस चलता रहा। उस लड़की के लिए जिसके गेहुँए चेहरे पर बाईं तरफ़ एक तिल था। जिसकी आँखें भूरी थीं, पुरानी किताब की जिल्द जैसी। और जो अपना दुपट्टा दिन में सौ बार खींचती थी, कंधे पर, बार-बार। और लोटन उस दुपट्टे को हर बार देखता था और हर बार लगता था कि यह पहली बार देख रहा है।

प्रेम में यही होता है। हर बार पहली बार होती है। और यह पहली बार कभी ख़त्म नहीं होती।

लोटन इन्हीं सब ख़यालों में डूबा हुआ था, उस गहराई में जहां दुनिया की आवाज़ें धुंधली हो जाती हैं, जहां सामने खड़ा आदमी दिखता है पर सुनाई नहीं देता, जहां पैर ज़मीन पर हैं पर आदमी ज़मीन पर नहीं, कहीं और है, कहीं उस जगह जो भीतर है और जहां बाहर की कोई बात नहीं पहुंचती। पूरब कुछ कह रहा था, उसकी आवाज़ आ रही थी, दूर से, धुंधली, जैसे किसी ने रेडियो का वॉल्यूम बहुत कम कर दिया हो, शब्द आ रहे थे पर साफ नहीं, कुछ टुकड़े, "बात कर," "शुरू कर," "कुछ तो बोल," पूरब उसे सलाह दे रहा था, वही सलाह जो पूरब हमेशा देता, कि भइया मुनिया से बात करो, शुरुआत करो, कुछ तो कहो, नमस्ते कह दो, कैसी हो कह दो, और लोटन सुन रहा था पर सुन नहीं रहा था, उसके कान खुले थे पर दिमाग़ बंद, या दिमाग़ खुला था पर कहीं और, उस जगह जहां मुनिया का चेहरा था, और दुपट्टा, और तिल, और वह सब कुछ जो शब्दों में नहीं।

और तभी स्कूल का गेट आया।

और गेट के सामने मुनिया थी। ठीक सामने। इतने पास कि सांस सुनाई दे, इतने पास कि दुपट्टे की सलवटें गिनी जा सकें, इतने पास कि वह तिल दिखे, बाईं तरफ, गेहुंए चेहरे पर, और वह भूरी आंखें जो पुरानी किताब की जिल्द जैसी थीं। मुनिया सामने थी, ठीक सामने, और लोटन का शरीर सुन्न पड़ गया।

सुन्न। पूरा सुन्न। ऐसा सुन्न जैसे किसी ने शरीर में से जान निकाल ली हो और सिर्फ खोल रह गया हो। पैर ज़मीन पर थे पर लगता था कि ज़मीन नहीं, हवा पर खड़ा है। हाथ शरीर के दोनों तरफ लटके हुए थे पर हिल नहीं रहे थे, जैसे लकड़ी के बने हों। मुंह खुला था पर शब्द नहीं आ रहे, वही शब्द जो कभी होंठों तक आकर रुक जाते थे, आज तो होंठों तक भी नहीं आए, वे कहीं बहुत गहरे अटक गए, वहां जहां से निकलना मुमकिन नहीं, और लोटन खड़ा रहा, ऐसे जैसे किसी ने तस्वीर खींच ली हो और वह उस तस्वीर में जम गया हो।

पूरब पीछे खड़ा था, उसकी आवाज़ अभी भी आ रही थी, धुंधली, दूर, "बोल, बोल, कुछ बोल," पर लोटन ने नहीं सुना, लोटन सुन ही नहीं सकता था, क्योंकि जो आदमी सुन्न हो उसके कान भी सुन्न होते हैं, और जिसके कान सुन्न हों उसके लिए दुनिया चुप है।

मुनिया ने एक पल देखा, शायद देखा, शायद नहीं, शायद उसकी नज़र लोटन पर पड़ी और शायद नहीं, यह कहना मुश्किल है क्योंकि लोटन की आंखें खुली थीं पर देख नहीं रही थीं, वे बस सामने थीं, जहां मुनिया थी, और मुनिया गुज़र गई, जैसे हवा गुज़रती है, और लोटन खड़ा रहा, वहीं, उसी जगह, पत्थर बना, सुन्न, और पूरब ने आकर उसके कंधे पर हाथ रखा, वही हाथ जो दोस्तों का होता है, जो जगाता है, जो कहता है कि लौट आ, दुनिया यहां है, तू कहां चला गया, और लोटन लौटा, धीरे धीरे, जैसे कोई गहरे पानी से ऊपर आता है, पहले सिर, फिर

कंधे, फिर सांस, और जब सांस आई तब पता चला कि बहुत देर से सांस नहीं ली थी।

"क्या हुआ भइया?" पूरब ने पूछा।

लोटन ने कुछ नहीं कहा। कुछ कहने को था नहीं। जो हुआ वह शब्दों में नहीं, वह उस जगह का था जहां शब्द नहीं पहुंचते, वह उस सुन्न का था जो प्रेम देता है, वह सुन्न जो दर्द का नहीं, ख़ुशी का नहीं, किसी और चीज़ का है जिसका कोई नाम नहीं, बस है, और जब होता है तो पूरा शरीर जम जाता है, पूरी दुनिया रुक जाती है, और आदमी खड़ा रहता है, एक तस्वीर, एक पत्थर, एक वह चीज़ जो न ज़िंदा है न मुर्दा, बस है।

पूरब ने सिर हिलाया, उसे समझ आया कि कुछ हुआ है जो उसकी समझ के बाहर है, और जो समझ के बाहर हो उसे पूछना बेकार है, बस चुप रहो, साथ खड़े रहो, कंधे पर हाथ रखो, और इंतज़ार करो कि दोस्त लौटे, और दोस्त लौटेगा, ज़रूर लौटेगा, क्योंकि दोस्त के कंधे पर हाथ वह रस्सी है जो गहरे पानी में डूबते आदमी को ऊपर खींचती है, और पूरब ने वह रस्सी पकड़ रखी थी, मज़बूती से, और लोटन लौटा, धीरे धीरे, और दोनों चल पड़े, स्कूल के अंदर, और मुनिया कहीं पीछे छूट गई, उसी गेट पर, या शायद अब क्लास में, और लोटन के शरीर में खून दौड़ने लगा, सुन्न गया, जैसे बर्फ पिघलती है, धीरे धीरे, और ज़िंदगी लौटती है, धीरे धीरे, और लोटन ने एक गहरी सांस ली, बहुत गहरी, और पूरब ने सुनी, और मुस्कुराया, वह मुस्कुराहट जो दोस्तों की होती है जब उन्हें पता हो कि उनका दोस्त पागल है, पूरी तरह पागल, और इस पागलपन में ही उसकी सारी ख़ूबसूरती है।

चौपाल का फ़ैसला

वह दिन फाल्गुन का था।

फाल्गुन बालमपुर में एक पूरी दुनिया है। सरसों कट चुकी थी, वह सरसों जो जनवरी में इतनी पीली थी कि खेत आसमान की तरफ़ मुस्कुराते लगते थे, अब कट चुकी थी और उसकी जगह ठूंठ रह गए थे, छोटे, सूखे। गेहूँ की बालियाँ भर रही थीं, दाने पक रहे थे, और उस पकने में वह उम्मीद थी जो किसानों की ज़िंदगी है। हवा में वह हल्की-सी गरमी आ गई थी जो जाड़े और गरमी के बीच की होती है, न ठंडी, न गरम, वह जो कहती है कि जाड़ा अब जा रहा है। बीच के इस वक़्त में आदमी को एक पल के लिए लगता है कि दुनिया ठीक है, बस ठीक।

उस दिन स्कूल की छुट्टी दोपहर में ही हो गई। तीसरी कक्षा के मास्टर बृजमोहन जी का कोई रिश्तेदार त्रिलोक सिधार गया था। गाँव के स्कूल में यह नियम था कि किसी मास्टर के रिश्तेदार की मृत्यु हो तो स्कूल आधे दिन में बंद। यह नियम कहीं लिखा नहीं था पर था, और इसका सबसे बड़ा फ़ायदा बच्चों को था जो मौत पर उतने दुखी नहीं होते जितने छुट्टी पर ख़ुश।

मास्टर शिवशरण मिसिरा ने परीक्षा से पहले अपना बेंत नया करवा लिया था। पुराने में दो-तीन महीने की ज़िंदगी बची थी, पर शिवशरण जी का कहना था कि परीक्षा के वक़्त नया बेंत शुभ होता है। इस तर्क का जवाब किसी के पास नहीं था।

लोटन स्कूल से निकला। फाल्गुन की धूप थी, कंधों पर बैठती थी पर जलाती नहीं। कंधे पर बस्ता था।

उस बस्ते के बारे में बात ज़रूरी है।

लोटन का बस्ता एक कपड़े का थैला था जो फूलमती ने अपने हाथों से सिला था, पुरानी धोती के कपड़े से। गाँव में कुछ नहीं फेंका जाता, पुरानी धोती से बस्ता बनता है, पुरानी साड़ी से पोटली, पुराना कुर्ता छोटे भाई को। यह "कुछ नहीं फेंकना" गाँव की अर्थव्यवस्था है जो किसी किताब में नहीं पढ़ाई जाती। उस बस्ते में रोज़ हिंदी की किताब होती, गणित की, दो कॉपियाँ जिनमें से एक की जिल्द पर लोटन ने "किशोर कुमार" लिखा था, और एक पेन जिसका अपना मूड था।

पर आज उस बस्ते में इनमें से कुछ नहीं था।

आज उस बस्ते में बब्बन भैया का रेडियो था।

यह कैसे हुआ, इसकी कहानी तीन दिन पुरानी है।

तीन दिन पहले पूरब ने लोटन से कहा था, वही सीधी बात जो उसकी ख़ासियत थी।

"भइया, अब बहुत हो गया।"

यह "बहुत हो गया" वह वाक्य था जो पूरब ने बहुत सोचकर कहा, या शायद बिना सोचे, पूरब के साथ यह फ़र्क करना मुश्किल था, वह सोचकर बोलता था या बिना सोचे, दोनों एक जैसे लगते, पर बात सही लगती, और सही लगना ही काफी है।

"दो साल हो गए, चार साल हो गए, तुम जाते हो, देखते हो, लौट आते हो। बस देखना ही करोगे या कुछ बोलोगे भी।"

"क्या बोलूं।"

वही जवाब, वही "क्या बोलूं" जो हमेशा आता, वही दीवार, वही बंद दरवाज़ा। पर इस बार पूरब ने उस दीवार को तोड़ने का फ़ैसला किया, वह फ़ैसला जो दोस्त करता है जब उसे लगे कि दोस्त अपने आप से नहीं निकलेगा, बाहर से धक्का चाहिए।

"यही बात है," पूरब ने कहा, और उसकी आवाज़ में वह अधिकार था जो मंत्री का होता है जब वह राजा को बताता है कि महाराज, अब कुछ करना होगा, "तुम्हें पता नहीं क्या बोलना है, इसीलिए तो मैं हूं।"

लोटन ने पूरब की तरफ देखा, और पूरब की आंखों में वह चमक थी जो हमेशा आती थी जब उसके दिमाग़ में कोई नई योजना पक रही होती, वह चमक जो शिकारी की आंखों में होती है जब शिकार दिखता है, वह चमक जो कोमल बजरंगी की आंखों में थी जब उन्होंने मालवाहक बताया, पर पूरब की चमक कोमल बजरंगी की चमक से अलग थी, कोमल बजरंगी की चमक झूठ की थी, पूरब की सच्ची। लोटन को पता था कि पूरब की योजनाओं में कमियां होती हैं, बहुत कमियां, पिछली बार हैंडपंप पर रेडियो नहीं बजा, उससे पहले मुर्ग़ा बनना पड़ा, हर बार कुछ न कुछ गड़बड़ हुई, पर लोटन को यह भी पता था कि पूरब के बिना वह कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि लोटन के पास दिल था, भरपूर, उफनता हुआ, पर दिमाग़ की बारी पूरब की थी, और बिना दिमाग़ के दिल अकेला रास्ता नहीं ढूंढ सकता, जैसे बिना आंखों के पैर चल नहीं सकते। पूरब की योजना इस बार पुरानी वाली से अलग थी, और इस अलग होने में वह सीख थी जो पिछली ग़लतियों से मिली, क्योंकि पूरब उन लोगों में से था जो ग़लती से सीखते हैं, हर ग़लती एक सबक, हर हार एक तालीम, और यही उसकी सबसे बड़ी ताक़त थी।

"सुनो भइया," पूरब ने कहा, और उसकी आवाज़ में वह गंभीरता थी जो सेनापति की होती है जब वह अपनी फ़ौज को नक़्शा समझाता है, "पिछली बार हम हैंडपंप पर गए और रेडियो नहीं बजा, यह ग़लती थी, पर ग़लती रेडियो की नहीं, ग़लती जगह की, हैंडपंप पर लोग आते जाते रहते हैं, कोई भी देख सकता है, और जहां

कोई भी देख सकता है वहां कुछ नहीं हो सकता, इस बार ऐसी जगह चुननी है जहां कोई न हो।"

"ऐसी जगह कहाँ है?"

"जहाँ हम अक्सर जाते हैं। इमली का पेड़।"

इमली का पेड़।

यह नाम सुनते ही लोटन के भीतर कुछ हिला। वह पेड़ बहुत पुराना था, इतना कि गाँव के सबसे बूढ़े कन्हैया चाचा भी नहीं बता सकते कि कब लगा। उनका कहना था कि जब वे छोटे थे तब भी यह पेड़ ऐसा ही था, जैसे बूढ़ा ही पैदा हुआ हो। उसकी जड़ें ज़मीन से बाहर निकली थीं, मोटी, गाँठदार, और उन जड़ों पर बैठने की जगह बन गई थी, प्रकृति ने अपनी कुर्सियाँ बना दी थीं। पेड़ के नीचे एक छाँव थी जो गरमियों में भी ठंडी रहती थी, वह ठंडक जो पुराने पेड़ों में होती है, पक्की छत में नहीं।

"वह जगह सही है," पूरब ने कहा, "न बालमपुर का कोई आता है, न रामनगर का। बस एक-दो चरवाहे सुबह आते हैं, दोपहर को नहीं।"

"पर मुनिया वहाँ कैसे आएगी?"

पूरब मुस्कुराया।

"यहीं तो असली बात है। मुनिया के लिए रूपा है।"

"रूपा?"

"हां, रूपा को बोलना पड़ेगा।"

लोटन का चेहरा बदला। बदलना एक छोटा शब्द है पर उसमें बहुत कुछ था, उसमें वह डर था जो हर प्रेमी को होता है जब उसके राज़ में कोई और शामिल हो, हर नया इंसान एक नया ख़तरा, हर नई ज़बान एक नई संभावना कि बात फैले, और

बात फैले तो बाप तक पहुंचे, और बाप तक पहुंचे तो लाठी, और लाठी तो वह जानता था, खा चुका था, पर लाठी से भी बड़ा डर यह था कि मुनिया तक पहुंचे, मुनिया के बाप तक, और फिर वह सब हो जो गांवों में होता है जब किसी लड़के का किसी लड़की से नाम जुड़ जाता है।

रूपा को बोलना मतलब रूपा को सब पता होना, और रूपा को पता होने का मतलब एक और इंसान को राज़ पता होना, और हर राज़ जितने ज़्यादा लोगों को पता हो उतना कम राज़ रहता है।

पूरब ने लोटन का चेहरा पढ़ लिया।

वही पढ़ना जो दोस्तों का होता है, बिना शब्दों के, बिना पूछे, बस देखकर, उस तरह जैसे कोई पुरानी किताब के पन्ने पलटता है, जिसे पढ़ने की ज़रूरत नहीं क्योंकि सब पहले से याद है।

"अरे प्रेम भइया, रूपा को पहले से पता है।"

लोटन रुका। "कैसे पता है।"

"मुनिया की सबसे अच्छी सहेली है, सहेलियों को सब पता होता है।" पूरब ने सिर खुजाया, उस अंदाज़ में जो तब आता है जब बात थोड़ी और आगे जानी हो। "मेरी एक दोस्त है, शांति, जो रूपा की ममेरी बहन है। शांति ने रूपा को बताया होगा।"

लोटन ने एक पल रुककर पूरब को देखा। "और शांति को किसने बताया।"

यह सवाल सुनते ही पूरब ऐसे हड़बड़ाया जैसे किसी ने उसकी जेब में हाथ डालते हुए पकड़ लिया हो। इधर-उधर देखने लगा, फिर आसमान की तरफ़, फिर अपने पाँवों की तरफ़, उस तरफ़ जिस तरफ़ देखने से सवाल टल जाते हैं पर जवाब नहीं आते।

लोटन देखता रहा।

थोड़ी देर बाद उसने कहा, "हमारी ज़िंदगी के नारद मुनि तुम ही हो। बहुत ऊपर तक पहुँच है तुम्हारी।"

यह तारीफ़ लोटन ने ज़िंदगी में शायद पहली बार की थी, और जिस तरह से की थी वह भी अलग थी, न ज़ोर से, न बड़े-बड़े शब्दों में, बस एक छोटी सी बात, सीधी, जिसमें एक मुस्कान थी जो होंठों तक नहीं आई पर आँखों में थी। पूरब के चेहरे पर जो ख़ुशी आई वह किसी और ख़ुशी से बड़ी थी, उस ख़ुशी से भी बड़ी जो तारीफ़ से मिलती है, क्योंकि यह तारीफ़ उस दोस्त ने की थी जो तारीफ़ करता नहीं था, और जो नहीं करता उसकी एक तारीफ़ सौ तारीफ़ों के बराबर होती है।

तीन दिन में सब तय हो गया। पहले दिन शांति से बात हुई, दूसरे दिन रूपा का जवाब आया, तीसरे दिन लोटन ने बब्बन भैया से रेडियो माँगा, वही तीन शर्तें, वही तीन बार "जी।"

पूरब ने जगह तय की, इमली का पेड़। वक़्त तय किया, दोपहर, छुट्टी के बाद। रास्ता तय किया, लोटन पटरी की तरफ़ से आएगा, मुनिया स्कूल की तरफ़ से, रूपा के साथ, और पूरब बीच में रहेगा, दूर से देखता हुआ कि कोई आ तो नहीं रहा।

और आज वह दिन था।

लोटन स्कूल से निकला था, बस्ते में रेडियो, कंधे पर बस्ता, और पैर इमली के पेड़ की तरफ़। वह पेड़ जो बालमपुर और रामनगर के बीच था, जहाँ बस छाँव थी और चुप्पी थी। रेडियो बस्ते में था, कपड़े में लिपटा, सुरक्षित। किशोर कुमार अभी चुप थे। पर जल्द गाएँगे। या शायद नहीं गाएँगे। शायद फिर कुछ गड़बड़ होगी। शायद रेडियो फिर नहीं बजेगा। पर "शायद" में वह उम्मीद होती है जो ज़िंदा रखती है। और लोटन ज़िंदा था, बहुत ज़िंदा, उस दिन, उस दोपहर, उस फाल्गुन में जब दुनिया ठीक थी।

रूपा ने मुनिया से बात की। क्या बात हुई, यह रूपा ने शांति को बताया, शांति ने पूरब को, पूरब ने लोटन को। यह ज़ंजीर इतनी लंबी थी कि एक कड़ी टूटती तो सब बिखर जाता। पर कोई कड़ी नहीं टूटी।

रूपा ने मुनिया से सीधे नहीं कहा। एक शाम, जब दोनों स्कूल से लौट रही थीं और हैंडपंप पर रुकी थीं, रूपा ने हल्के से कहा, "अरी, वह लड़का दिखता नहीं आजकल।"

"कौन सा लड़का।"

"वही, जो पीपल वाली गली से गुज़रता था।"

मुनिया ने दुपट्टा खींचा। उसके चेहरे पर बाहर से कुछ नहीं बदला, पर उसकी उँगलियों ने दुपट्टे को ज़रा ज़्यादा ज़ोर से खींचा।

"मुझे क्या पता किधर गया।"

रूपा हँसी। "अच्छा, तुझे क्या पता। ठीक है। पर अगर पता हो कि वह इमली के पेड़ के नीचे मिलना चाहता है, परसों दोपहर को, तो जाएगी क्या?"

हैंडपंप से पानी टपक रहा था, बूँद-बूँद। उस टपकने की आवाज़ उस चुप्पी में बहुत बड़ी लग रही थी।

फिर मुनिया ने कहा, बहुत धीमे, इतने धीमे कि अगर रूपा का कान तेज़ न होता तो सुन नहीं पाती।

"कब।"

और इस एक शब्द में सब कुछ था।

इमली के पेड़ तक पहुँचने के लिए लोटन ने एक रास्ता चुना जो सीधा नहीं था। सीधा रास्ता बालमपुर से निकलकर रामनगर की तरफ़ जाता था, पगडंडी पर, खेतों के बीच से, और उस रास्ते पर कोई भी देख सकता था। लोटन ने वह रास्ता

नहीं लिया। उसने पहले बब्बन भैया के घर से रेडियो लिया, बस्ते में रखा, और फिर स्कूल की तरफ़ गया, जैसे रोज़ जाता है। स्कूल से छुट्टी होने के बाद वह सीधे घर नहीं गया, बल्कि स्कूल के पीछे वाले रास्ते से निकला जो नहर के किनारे जाता था, और नहर के किनारे किनारे चलता हुआ वह उस मोड़ पर आया जहाँ से इमली का पेड़ दिखता था।

पूरब पहले से वहाँ था।

पूरब ने अपनी जगह ले ली थी, बॉर्डर के बालमपुर वाली तरफ़, एक बबूल की झाड़ी के पीछे, जहाँ से वह दोनों तरफ़ देख सकता था। उसका काम था पहरा देना। अगर कोई बालमपुर की तरफ़ से आए तो वह एक सीटी बजाएगा, ऐसी सीटी जो चिड़िया की आवाज़ जैसी लगे, और अगर कोई रामनगर की तरफ़ से आए तो वह दो बार सीटी बजाएगा। यह कोड पूरब ने ख़ुद बनाया था और इस पर उसे बहुत गर्व था। बॉर्डर के रामनगर वाली तरफ़ रूपा थी। रूपा ने अपनी जगह एक टूटी हुई दीवार के पीछे ली थी जो किसी पुराने बाड़े की दीवार थी और जो अब आधी गिर चुकी थी। रूपा का काम भी पहरा देना था। अगर कोई रामनगर की तरफ़ से आए तो वह खाँसेगी, ज़ोर से, जैसे गला ख़राब हो।

लोटन इमली के पेड़ के नीचे पहुँचा। उसने बस्ता नीचे रखा। रेडियो निकाला। रेडियो को पेड़ की एक जड़ पर रखा जो ज़मीन से ऊपर उठी हुई थी और जो एक छोटी सी मेज़ का काम कर रही थी। उसने रेडियो चालू किया। रेडियो ने इस बार कोई नखरा नहीं किया। शायद इसलिए कि बैटरी नई थी, जो लोटन ने पिछले हफ़्ते मैनपुरी से लाई थी। रेडियो चालू हुआ और उसमें से पहले ख़बरें आईं, कुछ दिल्ली की, कुछ इलाहाबाद की, और लोटन ने जल्दी से नॉब घुमाया विविध भारती की तरफ़।

और तब वह गाना आया, वही पुराना रोमांटिक नग़मा जिसमें कोई आशिक़ अपनी महबूबा के चेहरे से नज़र हटा ही नहीं पाता, नज़र हटे तो जाए कहाँ। लोटन ने

सुना और उसका दिल ज़ोर से धड़का। यह गाना ऐसे आया जैसे किसी ने पहले से तय कर रखा हो कि ठीक इसी वक़्त, ठीक इसी जगह, ठीक यही धुन बजेगी। वह बैठा रहा। इमली की छाँव में। रेडियो बज रहा था। हवा में इमली के पत्तों की खटास थी और खेतों से गेहूँ की महक आ रही थी और कहीं दूर से एक बुलबुल की आवाज़ आ रही थी जो शायद इमली के ऊपर ही कहीं बैठी थी।

और फिर मुनिया आई।

वह स्कूल की तरफ़ से आई, रूपा के साथ। रूपा उसे इमली के पेड़ तक लेकर आई और फिर रूपा ने मुनिया का हाथ छोड़ दिया, हल्के से, जैसे कोई किसी चिड़िया को उड़ा रहा हो, और वह अपनी जगह पर चली गई, टूटी दीवार के पीछे। मुनिया इमली के पेड़ के पास आई। लोटन खड़ा हो गया। उसके पैर काँप रहे थे पर वह खड़ा हो गया। मुनिया रुकी। दोनों के बीच शायद दस क़दम का फ़ासला था। इमली के पेड़ की छाँव दोनों पर पड़ रही थी। रेडियो अभी भी बज रहा था, गाना ख़त्म हो गया था, अब कोई और गाना आ रहा था, कोई पुराना सा गाना जो लोटन ने सुना था पर याद नहीं आ रहा था।

लोटन ने मुनिया को देखा।

मुनिया ने लोटन को देखा।

लोटन ने देखा कि मुनिया का रंग गेहुँआ है, जैसा उसने दूर से देखा था, पर क़रीब से वह रंग और भी गहरा था, जैसे मिट्टी में सोना मिला दिया हो। बाईं तरफ़ का तिल वहीं था, गाल पर, जहाँ पहले था, और वह तिल अब और साफ़ दिख रहा था। उसकी आँखें भूरी थीं, वही पुरानी किताब की जिल्द वाली भूरी, पर आज उन आँखों में कुछ और था, एक हल्की सी घबराहट, एक हल्की सी उत्सुकता, और एक हल्का सा कुछ जो लोटन को समझ नहीं आया। मुनिया ने दुपट्टा खींचा। कंधे पर। वही आदत। वही हरकत। पर आज वह हरकत थोड़ी और तेज़ थी, जैसे दुपट्टा आज ज़्यादा खिसक रहा हो, या शायद मुनिया आज ज़्यादा बेचैन हो।

कुछ क्षण बीते। कोई नहीं बोला।

रेडियो बोलता रहा। अब रेडियो पर कोई उद्घोषक कुछ कह रहा था, अगला गीत है कटी पतंग फ़िल्म का, प्यार दीवाना होता है। जैसे रेडियो आज अपनी सारी ताकत झोंक देना चाहता था। फिर लोटन ने बोलने की कोशिश की। उसने मुँह खोला। एक शब्द आने वाला था। पर वह शब्द कहीं गले में अटक गया, जैसे कोई मछली का काँटा गले में फँस जाए। लोटन ने खाँसा। मुनिया ने देखा कि वह खाँस रहा है। मुनिया को लगा कि शायद गला ख़राब है। उसने कुछ नहीं कहा। लोटन ने फिर कोशिश की।

नमस्ते।

यह शब्द निकला। बस यही। नमस्ते। एक शब्द। साढ़े तीन अक्षर। पर इन साढ़े तीन अक्षरों को बोलने में लोटन को जितनी ताक़त लगी, उतनी ताक़त उसने कभी किसी काम में नहीं लगाई थी, न झाड़ू लगाने में, न साइकिल पोंछने में, न बाज़ार जाने में, न पंडित जी की बेंत खाने में।

मुनिया ने सुना।

उसने एक पल रुककर कहा, नमस्ते।

बस।

दो नमस्ते। एक इधर से, एक उधर से। और इन दो नमस्तों के बीच बरसों की दूरी सिमट गई।

लोटन ने सोचा कि अब कुछ और बोलना चाहिए। पर क्या बोले। उसने पूरब से पूछा था कि क्या बोलूँ, और पूरब ने कहा था कि जो मन में आए बोल दो, दिल से बोलो, दिमाग़ से मत बोलो, क्योंकि दिमाग़ सोचता है और सोचने में वक़्त लगता है और वक़्त लगने में बात बिगड़ती है। पर लोटन का दिल इस वक़्त इतनी तेज़ी से धड़क रहा था कि उसमें से कोई बात निकल ही नहीं रही थी। दिल कह रहा था

धड़क धड़क धड़क, और लोटन सोच रहा था कि यह धड़कन तो मुनिया को भी सुनाई दे रही होगी।

फिर उसने रेडियो की तरफ़ देखा।

रेडियो। उसका सबसे पुराना दोस्त। उसका सबसे वफ़ादार साथी। रेडियो ने कभी उसे धोखा नहीं दिया, सिवाय उस एक बार के जब वह हैंडपंप पर बीमार बकरी जैसी आवाज़ निकालकर चुप हो गया था। पर वह बात पुरानी हो गई थी। रेडियो अब ठीक था। रेडियो अब गा रहा था।

लोटन ने रेडियो की आवाज़ थोड़ी बढ़ाई।

और ठीक उसी वक़्त रेडियो पर एक नया गाना शुरू हुआ, किशोर कुमार की वह मशहूर आवाज़ जो अपनी महबूबा से कहती थी कि उसकी सुंदरता एक दिन क़यामत बनकर टूटेगी, और उस दिन दुनिया भर की अदालतें उसी हुस्न का इंसाफ़ करेंगी। लोटन के लिए किशोर कुमार के गाने सिर्फ़ गाने नहीं थे, बल्कि एक भाषा थी, ऐसी भाषा जो लोटन बोल नहीं सकता था पर जिसे वह सुना सकता था।

लोटन ने मुनिया की तरफ़ देखा।

कुछ कहूँ?

मुनिया ने सिर हिलाया, बहुत हल्का सा, इतना हल्का कि अगर लोटन ध्यान से न देख रहा होता तो नहीं देख पाता।

लोटन ने गाना शुरू किया। उसने किशोर कुमार के साथ गाना शुरू किया, रेडियो की आवाज़ के साथ, उसी धुन पर, उसी लय पर। मेरे महबूब क़यामत होगी। उसकी आवाज़ रेडियो की आवाज़ से मिल गई, जैसे दो नदियाँ मिलती हैं, एक बड़ी, एक छोटी, पर दोनों एक हो जाती हैं।

मुनिया ने सुना।

वह खड़ी रही, चुपचाप, और सुनती रही। उसके चेहरे पर कुछ बदला। वह घबराहट जो पहले थी, वह धीरे धीरे कम होती गई, और उसकी जगह एक और चीज़ आई, जो शायद ख़ुशी थी, या शायद हैरानी, या शायद वह चीज़ जो तब होती है जब आप बरसों से किसी आवाज़ को दूर से सुनते आए हों और अचानक वह आवाज़ आपके सामने हो, बिल्कुल पास, इतनी पास कि आप उसकी साँस सुन सकें। लोटन गाता रहा। एक अंतरा। दूसरा। मुखड़ा। फिर अंतरा। रेडियो उसके साथ था, किशोर कुमार उसके साथ थे, और इमली का पेड़ उन दोनों के ऊपर था, जैसे एक छतरी, जैसे एक हाथ जो कह रहा हो, मैं तुम्हें ढक रहा हूँ, कोई नहीं देखेगा। गाना ख़त्म हुआ। लोटन चुप हो गया। रेडियो पर दूसरा गाना शुरू हो गया, कोई और गाना, जो इस वक़्त के लिए ग़ैरज़रूरी था।

मुनिया ने कहा, बहुत धीमे।

अच्छा गाते हो।

यह तीन शब्द थे। अच्छा गाते हो। इन तीन शब्दों ने लोटन के भीतर जो किया वह बताना मुश्किल है। उसे लगा कि पूरी दुनिया ने उसकी तारीफ़ कर दी है। शुक्ला जी की बेंत, रामखेलावन की लाठी, शिवकुमार की बेरुख़ी, सब कुछ एक पल में बेकार हो गया। इन तीन शब्दों ने वह सब मिटा दिया। अच्छा गाते हो। बस।

लोटन ने कहा, गाते तो बस किशोर कुमार है, हम तो बस उनकी नक़ल करते हैं।

मुनिया ने हल्की सी मुस्कुराहट दी। नक़ल भी अच्छी होती है अगर दिल से हो। प्रेम भी तो नक़ल है।

यह पहली बार था कि मुनिया ने लोटन से एक पूरा वाक्य कहा, और उस वाक्य में दिल शब्द था प्रेम शब्द था, और लोटन के कानों ने उन शब्दों को पकड़ लिया और उसे अपने भीतर के उस कमरे में रख दिया जहाँ वह अपनी सबसे क़ीमती चीज़ें रखता था।

फिर बात होने लगी।

धीरे धीरे। टूटी टूटी। जैसे कोई नदी शुरू में पतली सी धार होती है और फिर बढ़ती जाती है। पहले एक शब्द, फिर एक वाक्य, फिर एक बात, फिर दूसरी बात, और इस तरह दोनों बात करने लगे।

लोटन ने पूछा, तुम किशोर कुमार के गाने सुनती हो।

मुनिया ने कहा, कभी कभी। रेडियो तो हमारे यहाँ नहीं है। पर कभी कभी कहीं से आवाज़ आ जाती है।

लोटन ने कहा, हमारे पास रेडियो है। मतलब बब्बन भैया का है, पर सुनने को मिलता है।

मुनिया ने पूछा, बब्बन भैया कौन हैं।

और इस तरह लोटन ने मुनिया को अपनी ज़िंदगी के बारे में बताना शुरू किया। बब्बन भैया के बारे में, उनके आँगन के बारे में, रेडियो के बारे में, उस पुराने रेडियो के बारे में जिसमें एक आत्मा बसी है, और उस आत्मा के बारे में जो सिर्फ़ बब्बन भैया की सुनती है, और शायद अब लोटन की भी। मुनिया सुनती रही। उसकी आँखों में एक उत्सुकता थी जो लोटन ने पहले नहीं देखी थी। वह ऐसे सुन रही थी जैसे कोई बच्चा किसी बड़े की कहानी सुनता है, पूरे ध्यान से, बिना टोके, बिना सवाल पूछे, बस सुनते सुनते। लोटन ने बताया कि वह रोज़ रेडियो के पास बैठता है और गाने सुनता है। उसने बताया कि उसकी कॉपी में निबंध की जगह गाने लिखे हुए हैं और इसीलिए वो मार भी खाता है। उसने बताया कि फूलमती, उसकी माँ, चुपचाप रोटी दे देती है जब मार पड़ती है। उसने बताया कि रामखेलावन, उसके बाप, अब उससे बात नहीं करते। उसने यह सब बताया, एक के बाद एक, जैसे कोई बाँध टूट गया हो और पानी बह रहा हो, और रोकना मुमकिन नहीं।

मुनिया ने सब सुना।

जब लोटन ने अपनी बात ख़त्म की, तो मुनिया ने कुछ देर चुप रहकर कहा, तुम्हारी माँ अच्छी हैं।

लोटन ने सिर हिलाया। हाँ।

मुनिया ने फिर कहा, मेरी अम्मा भी ऐसी ही हैं। वह भी कुछ नहीं कहतीं, बस देखती रहती हैं। और इस एक वाक्य में लोटन को लगा कि मुनिया ने उसे अपनी ज़िंदगी का एक छोटा सा टुकड़ा दिया है, वह टुकड़ा जो वह किसी को नहीं देती, जो उसका अपना है, और जो उसने आज पहली बार किसी को दिया। वह दोपहर इमली के पेड़ के नीचे कितनी देर बीती, यह दोनों को पता नहीं चला। शायद आधा घंटा बीता, शायद एक घंटा, शायद पूरी ज़िंदगी। वक़्त का कोई हिसाब नहीं था। रेडियो बजता रहा, गाने आते रहे, और दोनों बात करते रहे, या चुप रहे, और दोनों में कोई फ़र्क़ नहीं था, क्योंकि बात करना और चुप रहना दोनों एक ही चीज़ के दो रूप थे। पूरब ने तीन बार चिड़िया की सीटी बजाई, पर तीनों बार झूठी सीटी थी, कोई नहीं आया था, पूरब बोर हो रहा था और सीटी बजाकर समय काट रहा था। रूपा ने एक बार खाँसा, पर वह भी झूठी खाँसी थी, उसका गला ख़राब नहीं था, बस वह जानना चाहती थी कि अंदर क्या हो रहा है।

और फिर वक़्त आया जाने का।

मुनिया ने कहा, मुझे जाना होगा। अम्मा पूछेंगी।

लोटन ने कहा, हाँ।

दोनों खड़े हुए। दोनों के बीच फिर वही दस क़दम का फ़ासला था। मुनिया ने दुपट्टा खींचा, आख़िरी बार, और मुड़ी।

लोटन ने कहा, मुनिया।

मुनिया रुकी। पलटी। उसकी आँखों में एक सवाल था।

लोटन ने कहा, कल भी आओगी।

मुनिया ने कुछ नहीं कहा। वह मुड़ गई और चली गई। पर जाते हुए उसने एक बार पीछे मुड़कर देखा, बहुत जल्दी, बहुत छोटी सी नज़र, और उस नज़र में जवाब था।

हाँ।

उसके बाद वे मिलते रहे। इमली का पेड़ उनका ठिकाना बन गया, वह ठिकाना जो किसी नक़्शे में दर्ज नहीं था पर दोनों के भीतर बहुत साफ़ लिखा था। हर दोपहर, जब स्कूल की छुट्टी होती, लोटन बस्ते में रेडियो दबाए इमली तक पहुँचता, मुनिया रूपा के साथ आती, पूरब और रूपा अपनी अपनी जगह तैनात हो जाते, और दोनों उन जड़ों पर बैठ जाते जो प्रकृति ने अपनी कुर्सियाँ बना रखी थीं। रेडियो बजता रहता, कभी किशोर कुमार, कभी रफ़ी, कभी मुकेश, और हर गाने के साथ लोटन गुनगुनाता, मुनिया सुनती, और कभी कभी बस इतना कहती, यह गाना फिर से सुनाओ, तो लोटन फिर से गाता।

इन मुलाक़ातों में धीरे-धीरे एक क्रम बन गया।

वह क्रम जो किसी ने नहीं बनाया पर जो बन गया, जैसे नदी अपना रास्ता बनाती है, बिना किसी इंजीनियर के, बिना किसी नक़्शे के, बस पानी बहता है और रास्ता होता जाता है, और उस रास्ते में मोड़ आते हैं, पत्थर आते हैं, पर नदी चलती रहती है उन सबके बीच से। लोटन और मुनिया की मुलाक़ातों का रास्ता भी ऐसे ही बना, और इस रास्ते के दो इंजीनियर थे, एक पूरब, एक रूपा, जिन्हें इंजीनियरिंग का एक हर्फ़ नहीं आता था पर जिन्होंने वह नक़्शा बनाया जो किसी सरकारी नक़्शे से ज़्यादा पक्का था, किसी क़ानून से ज़्यादा मज़बूत।

पूरब और रूपा हर दिन नई तरकीबें ढूँढते कि कैसे लोटन और मुनिया को मिलाया जाए बिना किसी को पता चले।

यह "बिना किसी को पता चले" सबसे बड़ी शर्त थी। बालमपुर और रामनगर वे गाँव थे जहाँ हवा भी ख़बरें उड़ाती थी, जहाँ एक चिड़िया बोले तो दूसरी सुने, जहाँ छिपना उतना ही मुश्किल जितना दोपहर में सूरज का छिपना। पर पूरब वह आदमी था जो सूरज को भी छिपा दे अगर ज़रूरत पड़े, और रूपा वह लड़की जो दीवारों में रास्ते निकाल ले। इन दोनों ने मिलकर वह तंत्र बनाया जो किसी जासूसी उपन्यास में होता है, बस यह जासूसी उपन्यास मैनपुरी के क़रीब एक गाँव में लिखा जा रहा था, दो ऐसे किरदारों द्वारा जिन्हें जासूसी उपन्यास का नाम भी नहीं पता था।

कभी इमली का पेड़ ठिकाना होता।

वही पुराना इमली जो बालमपुर और रामनगर के बीच खड़ा था, जिसकी जड़ें ज़मीन से बाहर निकली हुई थीं और जिन पर बैठने की जगह थी। पर इमली का पेड़ हर बार नहीं चलता था, क्योंकि पंडित रामअवतार मिश्र की ज़बान ने वह काम किया था कि अब गाँव में लोग जानते थे कि इस इमली के पेड़ का कोई किस्सा है। सो इमली तभी ठीक थी जब पूरब को यक़ीन हो कि आसपास कोई नहीं, कि चरवाहे अपनी भैंसों के साथ दूसरी तरफ़ गए, कि कोमल बजरंगी अपनी चौपाल पर हैं और कुबेर सिंह अपने दरवाज़े पर, तभी इमली ठीक, वरना नहीं।

कभी नहर का वह मोड़ ठिकाना होता जहाँ ऊँचे सरकंडे उगे थे।

वे सरकंडे जो इतने ऊँचे थे कि आदमी खड़ा हो तो दिखे नहीं, इतने घने कि बीच में बैठो तो बाहर से कुछ पता न चले, बस उनकी सरसराहट सुनाई दे जो हवा में होती थी और जो उस जगह को एक अलग दुनिया बना देती, ऐसी दुनिया जो बालमपुर के भीतर होकर भी बालमपुर की नहीं, जहाँ गाँव के नियम नहीं पहुँचते, जहाँ जाति नहीं, हैसियत नहीं, बस सरकंडे और हवा और दो लोग जो बैठे हैं और जिनके बीच वह सब है जो शब्दों में नहीं। पर नहर वाला मोड़ भी हमेशा नहीं

चलता था, क्योंकि मछली पकड़ने वाला आदमी हर जगह ताक-झाँक करता है, पानी में भी, ज़मीन पर भी, यह मछुआरों का स्वभाव है।

कभी रामनगर के बाहर वाला बंद कुआँ ठिकाना होता।

वह कुआँ जिसका पानी सूख गया था, जिसके चबूतरे पर अब कोई नहीं आता, जहाँ पहले औरतें पानी भरती थीं और अब बस ख़ामोशी भरी थी। बंद कुएँ पर कोई नहीं जाता, बंद कुएँ से किसी को काम नहीं, और जहाँ काम नहीं वहाँ कोई नहीं, यह गाँव का नियम था, और इस नियम का फ़ायदा पूरब ने उठाया।

पूरब की तरकीबें उम्र के साथ बड़ी होती गईं।

पहले जब पूरब छोटा था तो तरकीबें भी छोटी थीं, हैंडपंप पर रेडियो बजाओ, स्कूल की प्रार्थना में योजना बनाओ, मुर्ग़ा बनो, चप्पल खाओ। पर अब पूरब बड़ा हो गया था, और बड़े होने के साथ उसकी तरकीबें भी बड़ी हुई थीं। अब उसके पास एक पूरा नक़्शा होता, सैनिक योजना जैसा, कि कौन कहाँ खड़ा होगा, रूपा किस तरफ़ से आएगी, मुनिया कितने बजे निकलेगी, लोटन किस रास्ते से, और अगर बीच में कोई दिख जाए तो कौन सी कहानी तैयार है, कौन सा बहाना, कौन सा जवाब, सब तय, सब सोचा हुआ।

पूरब ने एक बार कहा था, उस अंदाज़ में जो उसका अपना था, सीधा, शरारती, "भइया, मैं अगर पढ़ाई में इतना दिमाग़ लगाता जितना आपकी मुलाक़ातों में लगाता हूँ, तो आज ज़िला टॉप कर गया होता।"

लोटन हँसा था। वह हँसी जो उन दिनों बहुत कम आती थी, जो भीतर से आती थी, गहरे से।

"तुम टॉप कर भी गए होते तो भी यही करते।"

यह बात सच थी, पूरी तरह सच। पूरब वह आदमी था जो दोस्त के लिए ज़िला टॉप भी छोड़ दे, कुछ भी छोड़ दे। पूरब के लिए लोटन की ख़ुशी किसी नंबर से

बड़ी थी, किसी पुरस्कार से ज़्यादा, और यह बात पूरब को भी पता थी, बिना किसी ने बताए, बस पता थी, और लोटन को भी, और इस पता होने में वह तसल्ली थी जो दुनिया की किसी और तसल्ली से बड़ी होती है।

और फिर एक दिन पूरब ने वह तरकीब निकाली जो सबसे बड़ी थी।

उसने लोटन को एक पतंग दी। पर यह कोई साधारण पतंग नहीं थी। पतंग की पूंछ पूरब ने ख़ुद रंगी थी, लाल और हरे रंग से, वह लाल जो गुड़हल का, वह हरा जो इमली के पत्ते का। इन दो रंगों ने उस पतंग को बाकी सब पतंगों से अलग बना दिया, ऐसा अलग कि आसमान में सौ पतंगें उड़ रही हों तो भी यह एक पहचान में आ जाए, दूर से, बहुत दूर से, रामनगर की किसी छत से भी। पूरब का कमाल यही था, उसने वह सोचा जो कोई नहीं सोचता, कि पतंग तो कोई भी उड़ा सकता है, पर अगर पतंग ऐसी हो कि देखने वाला जान ले कि यह उसी के लिए है, तो पतंग सिर्फ़ पतंग नहीं रहती, चिट्ठी बन जाती है, इशारा बन जाती है, वह इशारा जो बिना शब्दों का, बिना काग़ज़ का, बिना किसी ख़तरे का।

अब लोटन को जब मुनिया को बुलाना होता, वह पतंग उड़ाता।

बस इतना। पतंग उड़ी और संदेश पहुँचा।

और मुनिया हर दोपहर छत की तरफ़ भागती, वह भागना जो लड़कियों का होता है, तेज़ पर बिना आवाज़ का, जैसे हवा चले। छत पर जाकर आसमान देखती, उस आसमान में वह लाल-हरी पूंछ वाली पतंग ढूँढती जो सबसे अलग थी। और जब दिखती तो उसके चेहरे पर वह आता जो किसी और को नहीं दिखता, होंठों का एक ज़रा सा हिलना जो मुस्कुराहट नहीं पर मुस्कुराहट से कम भी नहीं। दुपट्टा खींचती, कंधे पर, वही पुरानी आदत, और उस खींचने में वह इशारा था जो बिना कहे कह देता, कि हाँ, देख लिया, आ रही हूँ।

और पतंग उड़ती रहती।

लाल-हरी पूंछ लहराती, बालमपुर के आसमान में, रामनगर के आसमान में, दोनों के बीच, उस डेढ़ कोस को पार करती जो ज़मीन पर अनंत हो गया था पर आसमान में अभी डेढ़ कोस था। क्योंकि आसमान में जाति नहीं, हैसियत नहीं, कुबेर सिंह नहीं, पंडित रामअवतार मिश्र नहीं। आसमान में बस हवा है और पतंग, और हवा सबकी एक है, ऊँचे की भी वही, नीचे की भी वही। पतंग जब उड़ती तो वह सब गिर जाता जो ज़मीन पर खड़ा था, जाति गिरती, हैसियत गिरती, ग़रीबी गिरती, बस पतंग रहती, ऊपर, लाल-हरी।

एक आँख बालमपुर में, एक आँख रामनगर में। और दोनों को एक ही पतंग दिखती। दोनों जानते कि यह उनकी है, सिर्फ़ उनकी। और इतना काफ़ी था। बस इतना। हमेशा काफ़ी।

बब्बन भैया का रेडियो अब लोटन के पास रहने लगा...

यह बात एक दिन में नहीं हुई। ऐसी बातें एक दिन में नहीं होतीं। ऐसी बातें धीरे धीरे होती हैं, चुपचाप, जैसे दीवार में दरार आती है, पहले एक लकीर, फिर थोड़ी और, फिर थोड़ी और, और एक दिन दीवार बंट जाती है दो हिस्सों में और किसी को पता भी नहीं चलता कि कब हुआ पहले लोटन कभी कभी रेडियो मांगता था। कभी कभी का मतलब हफ़्ते में एक बार, या दो बार, जब मन होता, जब बेचैनी बढ़ जाती, जब किशोर कुमार की आवाज़ सुने बिना सांस लेना भारी लगने लगता। फिर कभी कभी रोज़ में बदल गया। रोज़ मांगने लगा। सुबह ले जाता, शाम को लौटाता। यह बात बिना कहे तय हो गई। किसी ने तय नहीं किया, कोई बैठक नहीं हुई, कोई लिखापढ़ी नहीं हुई। बस हो गया। जैसे कुछ बातें अपने आप तय हो जाती हैं, बिना किसी के तय किए, बिना किसी के कहे।

पर बदले में एक शर्त थी। शर्त यह कि लोटन बैटरी का जुगाड़ करेगा।

अब बैटरी का जुगाड़ करना, यह सुनने में जितना सीधा लगता है उतना सीधा नहीं था। यह अपने आप में एक कहानी थी, ऐसी कहानी जिसमें ग़रीबी थी, जुगाड़

था, हिम्मत थी, और वह ज़िद जो लोटन की रगों में बहती थी। रेडियो पुराना था। कितना पुराना, यह बताना मुश्किल है, पर इतना पुराना कि उसकी आवाज़ कभी कभी ऐसे कांपती थी जैसे बूढ़े आदमी का हाथ कांपता है। और यह पुराना रेडियो बैटरी खाता था जैसे कोई भूखा आदमी रोटी खाता है। जल्दी जल्दी। बिना चबाए। बिना रुके। एक बैटरी दस बारह दिन चलती थी, कभी बारह, कभी दस, कभी आठ, और फिर ख़त्म। ऐसे ख़त्म जैसे दिया बुझता है, पहले लौ कांपती है, फिर झपकती है, फिर बुझ जाती है। नई बैटरी मैनपुरी से आती थी। एक बैटरी की कीमत डेढ़ रुपया थी। डेढ़ रुपया। यह रकम सुनकर आज कोई हंसेगा। पर उस ज़माने में, उस घर में, उस लड़के के लिए डेढ़ रुपया वह रकम थी जो होती नहीं थी। लोटन के पास पैसे आते कहां से। बाप देता नहीं था, देने को था भी नहीं, और होता भी तो उस लड़के को नहीं देता जो रेडियो के पीछे पागल है। मां के पास क्या था। मां के पास रोटी थी, दाल थी, आंचल था, सिर पर हाथ रखने का हुनर था, पर पैसे नहीं थे।

सावित्री कभी कभी चवन्नी दे देतीं, ऐसे देतीं जैसे कोई बच्चे को ईदी देता है, उसमें प्यार ज़्यादा था पैसा कम। बब्बन भैया कभी कभी दो आने दे देते। पर यह सब जोड़ो तो भी डेढ़ रुपया नहीं बनता था। चवन्नी और दो आने मिलकर छह आने होते थे, और छह आने से डेढ़ रुपया उतना ही दूर था जितना बालमपुर से बंबई। तो लोटन ने एक तरीक़ा निकाला। जो बैटरियां ख़त्म हो जाती थीं, लोटन उन्हें फेंकता नहीं था। कोई और होता तो फेंक देता। ख़त्म हुई तो ख़त्म हुई, अब क्या करना है इसका। पर लोटन फेंकता नहीं था। वह उन्हें धूप में रखता था। सीधी धूप में। तेज़ धूप में। वह धूप जो इतनी तेज़ होती थी कि ज़मीन तवे जैसी हो जाती, उसी धूप में बैटरी रख देता, चार पांच घंटे। यह तरीक़ा उसने कहीं सुना था, किसी ने बताया था, या शायद उसने ख़ुद आज़माया था, कौन जाने। पर बात यह थी कि पुरानी बैटरी, जो मर चुकी थी, जिसमें कुछ बचा नहीं था, अगर उसे तेज़ धूप में चार पांच घंटे रख दो तो वह थोड़ी देर के लिए फिर से जी उठती थी। बहुत देर के लिए नहीं।

शायद एक घंटा। शायद दो। कभी कभी आधा घंटा भी नहीं। पर इतना काफी था। इतना काफी था कि लोटन एक दो गाने सुन ले। या मुनिया को सुना दे। एक गाने के लिए ढाई तीन मिनट चाहिए, और ढाई तीन मिनट में जो कहना है वह कह दो, बाकी ज़िंदगी सुनने के लिए है।

लोटन ने इन बैटरियों के साथ वह सब किया जो कोई वैज्ञानिक करता है, बस वैज्ञानिक को पता होता है कि वह क्या कर रहा है और लोटन को नहीं पता था। कभी धूप में सुखाता। कभी गरम पानी में डालता। कभी दोनों हथेलियों के बीच रखकर रगड़ता, ज़ोर ज़ोर से, जैसे ठंड में हाथ रगड़ते हैं। कभी ऊपर नमक लगाता, पतली सी परत, जैसे रोटी पर नमक लगाते हैं। हर प्रयोग अलग था और हर प्रयोग का नतीजा अलग। कभी बैटरी चल पड़ती, और लोटन का चेहरा ऐसे खिल उठता जैसे आसमान में तारा टूटा हो। कभी नहीं चलती, और लोटन चुपचाप फिर कोशिश करता। कभी ऐसी आवाज़ आती रेडियो से जो गाने से ज़्यादा चीख़ जैसी लगती, ऐसी जैसे रेडियो दर्द में कराह रहा हो, और लोटन जल्दी से बंद कर देता, जैसे किसी बीमार को तकलीफ में देखकर आंख फेर लेते हैं। पर हार नहीं मानता था। कभी नहीं मानता था। यही लोटन था।

एक बार लोटन ने बब्बन भैया से पूछा था कि बैटरी काम कैसे करती है। यह सवाल लोटन के उन सवालों में से था जो वह कभी कभी पूछता था और जो सुनने वाले को एक पल के लिए रोक देते थे, क्योंकि सवाल सीधा होता था पर जवाब सीधा नहीं होता था।

बब्बन भैया ने समझाया, जितना वे समझा सकते थे, कि बैटरी में रसायन होता है, वह रसायन बिजली बनाता है, और जब रसायन ख़त्म हो जाता है तो बैटरी ख़त्म हो जाती है।

लोटन ने पूछा, "तो रसायन फिर से कैसे बने?"

बब्बन भैया ने कहा, "नहीं बनता।"

लोटन ने कहा, "पर धूप में रखने से चल पड़ती है।"

बब्बन भैया ने एक पल सोचा। फिर कहा, वह बात जो शायद उन्होंने उसी पल सोची, या शायद कहीं सुनी थी, या शायद बस ऐसे ही कह दी। उन्होंने कहा, "वह धूप नहीं है। वह बैटरी की आख़िरी हिम्मत होती है। जैसे कोई बीमार आदमी मरने से पहले एक बार उठ बैठता है, बोलने लगता है, हंसने लगता है, खाना मांगता है, और लोगों को लगता है कि ठीक हो गया, पर वह ठीक नहीं होता, वह बस अपनी आख़िरी हिम्मत इकट्ठा कर रहा होता है। बैटरी भी ऐसा करती है।"

लोटन को यह बात समझ आई और नहीं भी आई।

समझ इसलिए आई कि बात सीधी थी। नहीं आई इसलिए कि लोटन इस बात को मानने को तैयार नहीं था कि कोई चीज़ सचमुच ख़त्म हो जाती है। उसके भीतर एक यक़ीन था, एक अजीब सा तर्क, कि अगर उम्मीद ख़त्म नहीं हो सकती तो रसायन कैसे ख़त्म हो सकता है। वह अक्सर सोचता कि काश इस रसायन में उम्मीद जितनी ताक़त होती।

सो लोटन ने बैटरी को मरने से पहले उठ बैठने का मौक़ा देना जारी रखा।

हर बार। हर ख़त्म होती बैटरी को। जैसे कोई वैद्य हर मरीज़ का इलाज करता है, चाहे उसे पता हो कि मरीज़ बचेगा नहीं। इलाज करना वैद्य का काम है, बचना मरीज़ का। धूप में रखना लोटन का काम था, चलना बैटरी का। और इस काम में कोई थकान नहीं थी, कोई शिकायत नहीं, बस एक रोज़ की आदत, जैसे माँ सुबह तुलसी में पानी डालती है, यह जाने बिना कि आज पत्ते हरे रहेंगे या नहीं।

और फिर एक शाम वह बात हुई।

जो दो आदमियों के बीच बिना काग़ज़ के, बिना गवाह के, बस बोलकर तय हो जाती है। वह बात जिसे लिखा नहीं जाता, साइन नहीं किया जाता, पर जो रहती

है, टिकी रहती है, उन काग़ज़ों से ज़्यादा जिन पर दस्तख़त होते हैं और मोहरें लगती हैं।

बब्बन भैया ने कहा, "लोटन, एक बात तय कर लेते हैं।"

"जी।"

"रेडियो मेरा, बैटरी तुम्हारी।"

"जी।"

"मतलब जब तक सुनना है, बैटरी का जुगाड़ तुम करोगे। जिस दिन बैटरी नहीं आई, उस दिन रेडियो नहीं।"

"जी।"

तीन बार जी। तीनों बार एक ही जी। पर हर जी अलग था। पहला जी सुनने का था, दूसरा मानने का, तीसरा कसम का। लोटन ने तीन बार जी कहकर वह वादा कर लिया जो किसी कचहरी में नहीं टिकता पर दो आदमियों के बीच उम्र भर टिकता है।

बब्बन भैया ने लोटन की तरफ देखा। उनकी आंखों में वही पुरानी समझ थी जो बब्बन भैया की ख़ासियत थी। वह समझ जो बिना पूछे जान लेती है, बिना कहे कह देती है। बब्बन भैया जानते थे कि लोटन रेडियो का क्या करता है। जानते थे कि रेडियो कहां जाता है। जानते थे कि किसके लिए बजता है। सब जानते थे। पर कभी कुछ नहीं बोले।

बब्बन भैया ने फिर कहा, "और हां, रेडियो गिराना नहीं।"

"कभी नहीं गिराऊंगा।"

यह "कभी नहीं" ऐसे कहा गया जैसे कोई अपनी जान की कसम खाता है। और सच भी यही था। लोटन के लिए रेडियो गिराना अपनी जान गिराने जैसा था। वह

रेडियो को ऐसे उठाता था जैसे कोई नवजात बच्चे को उठाता है, दोनों हाथों से, सावधानी से, सांस रोककर। रेडियो उसके हाथ में होता तो उसके पैर ज़मीन से ऐसे चलते जैसे ज़मीन कांच की हो और ज़ोर से पैर रखने से टूट जाएगी।

और ऐसे सब कुछ तय हो गया।

रेडियो बब्बन भैया का। बैटरी लोटन की। यह दुनिया की सबसे अजीब साझेदारी थी। एक के पास शरीर था, दूसरे के पास जान। रेडियो शरीर था, बैटरी जान। शरीर के बिना जान कहां रहे, और जान के बिना शरीर क्या करे। दोनों को एक दूसरे की ज़रूरत थी, और इसी ज़रूरत ने बब्बन भैया और लोटन को बांध दिया, उस बंधन से जो ख़ून के बंधन से कम नहीं था।

रेडियो अब लोटन की ज़बान बन गया था। जो बात वह ख़ुद नहीं कह पाता, किशोर कुमार कह देते। वह बस रेडियो उठाकर उस गली तक ले जाता, उस मोड़ तक, ठीक उस वक़्त जब मुनिया स्कूल से लौट रही होती, और गाना गली में गूँज उठता, बिना काग़ज़ का ख़त, बिना स्याही का पैग़ाम, हवा में लिखा जाने वाला और हवा में ही पढ़ा जाने वाला।

मुनिया सुनती थी। दुपट्टा खींचती, आँख नीची करती, पर सुनती रहती, हर बोल, हर धुन, और सुनते सुनते उन गानों को अपना बनाती जाती, जैसे कोई किसी और की कही दुआ को अपनी दुआ बना ले। उन गावों के ज़रिए वह लोटन को जानने लगी थी, उसका वह दिल जो कभी किसी के सामने नहीं खुला, उसकी वह तकलीफ़ जो बाप की लाठी से भी बड़ी थी।

और यही प्रेम था।

शब्दों के बिना। छूने के बिना। वादों के बिना। बस एक पुरानी बैटरी थी जो धूप में रखे जाने पर अपनी आख़िरी हिम्मत जुटाती, और दो लोग थे जो एक ही गली में, अलग-अलग खड़े, वह सब समझ रहे थे जो दुनिया की कोई भाषा नहीं कह सकती।

रेडियो की बैटरी के लिए लोटन ने सारी परिक्रमाएँ की थीं।

एक बार मेले में भी गया, उस मेले में जहाँ वह इसलिए कभी नहीं गया था क्योंकि उसकी जेब में कभी पैसे नहीं होते थे। पर इस बार पूरब ने एक ऐसी ख़बर सुनाई कि लोटन एक बार में तैयार हो गया। मेले में एक दुकान आई थी जिसमें एक छल्ला रखे हुए सामान पर निशाना लगाकर डालना होता था, और जिस चीज़ पर छल्ला पड़े वह निशाना लगाने वाले की हो जाती थी। रास्ते में पूरब ने एक सुझाव दिया।

"मुझे लगता है तुम्हें भाभी को कोई अच्छी चीज़ उपहार में देनी चाहिए। यह सही मौक़ा है।"

"तुम सही कहते हो।"

यह सहमति लोटन ने इतनी जल्दी दी कि पूरब को ख़ुद हैरानी हुई।

दोपहर तक दोनों मैनपुरी पहुँच गए। मेले में घुसते ही उन्होंने सबसे पहले वही दुकान खोजी। दुकान में ढेर सारी चीज़ें सजी थीं, एक शीशा था, एक जूड़ा था, एक चश्मा था, खिलौने थे, अंगूठी थी, टॉर्च थी, और एक रेडियो भी था। रेडियो देखते ही लोटन ऐसे खिल गया जैसे वह सुबह का पहला उजाला देख रहा हो, और उसी पल भूल गया कि वह मुनिया के लिए उपहार लेने आया था। उसकी नज़र सिर्फ़ रेडियो पर थी, एक चवन्नी में एक बार का निशाना मिलता था, और उसकी दो चवन्नियाँ रेडियो के चक्कर में ख़र्च हो गईं। निशाना फिर भी नहीं लगा।

पूरब ने अपनी भी दो चवन्नियाँ लोटन को दे दीं, और कहा, "भइया, रेडियो का चक्कर छोड़ो, रेडियो निशाने से बहुत दूर है। भाभी के लिए कुछ ले लो।"

पर लोटन को न जाने क्या सूझी, उसने अगला निशाना टॉर्च पर लगाया। और इस बार छल्ला सीधा टॉर्च पर जा पड़ा।

पूरब को कुछ समझ नहीं आया। "भइया, टॉर्च कौन देता है उपहार में?"

पूरब यह नहीं समझ सकता था कि लोटन ने टॉर्च को इसलिए नहीं चुना था कि वह उपहार थी, या इसलिए कि उस पर निशाना आसान था। उसने टॉर्च को इसलिए चुना था क्योंकि उसके भीतर बैटरी थी।

सब कुछ ठीक चल रहा था। बहुत ठीक।

इतना ठीक कि लोटन को डर लगने लगा कि कहीं कुछ ग़लत न हो जाए, क्योंकि ज़िंदगी में जब सब कुछ ठीक चल रहा हो तो समझो कि कुछ ग़लत होने वाला है, यह बात लोटन की माँ फूलमती कहती थी, हालाँकि वह यह बात किसी और संदर्भ में कहती थी, शायद रोटी बनाते हुए, कि जब तवा एकदम सही तपा हो तो रोटी जल जाती है, ज़रा ध्यान हटा नहीं कि जली।

और ध्यान हटा।

उस दिन की बात है। कार्तिक का महीना था। खरीफ़ की फ़सल कट चुकी थी और खेतों में ठूँठ ही बचे थे। दोपहर का वक़्त था, धूप थोड़ी तीखी थी पर हवा में ठंडक थी। लोटन और मुनिया इमली के पेड़ के नीचे बैठे थे। रेडियो बज रहा था। आज बैटरी नई थी इसलिए आवाज़ साफ़ थी। मुकेश का गाना आ रहा था, कहीं दूर जब दिन ढल जाए, और लोटन उसके साथ धीमे धीमे गा रहा था। मुनिया पेड़ की जड़ पर बैठी थी, घुटने मोड़े हुए, दुपट्टा कंधे पर, और वह सुन रही थी, आँखें आधी बंद, जैसे नींद आ रही हो, पर नींद नहीं थी, यह वह हालत थी जो संगीत सुनते हुए आती है, जब शरीर यहाँ होता है पर मन कहीं और चला जाता है।

पूरब अपनी जगह पर था, बबूल की झाड़ी के पीछे। रूपा अपनी जगह पर, टूटी दीवार के पीछे।

और पंडित रामअवतार मिसिर अपनी जगह पर नहीं थे। पंडित रामअवतार मिसिर की जगह मंदिर था, चौराहा था, या चौपाल, या उन तीन चार जगहों में से कोई जहाँ वह रोज़ जाते थे। पर उस दिन वह इनमें से किसी जगह नहीं थे। उस दिन वह रामनगर की तरफ़ जा रहे थे, अपनी साइकिल पर, धीरे धीरे, क्योंकि पंडित

जी साइकिल बहुत धीमी चलाते थे, इतनी धीमी कि पैदल चलने वाला आदमी भी उन्हें पार कर जाता।

और उन्होंने देखा।

उन्होंने दूर से देखा, पर देखा। इमली का पेड़ रास्ते से थोड़ा हटकर था, पर इतना नहीं कि दिखे ही नहीं। पहले उन्होंने ध्यान नहीं दिया। कोई भी बैठा हो सकता है, आधी गर्मी की छाँव है, कोई किसान बैठा होगा। पर फिर उनकी एक आँख ने, कुछ और देखा। उसने एक लड़की का दुपट्टा देखा, हल्के रंग का, और एक लड़के को, जो कुछ गा रहा था, और दोनों के बीच एक रेडियो रखा था।

पंडित जी ने साइकिल रोकी।

उन्होंने चश्मा ठीक किया, वह चश्मा जो उनकी नाक पर हमेशा टेढ़ा बैठता था और जिसे वह दिन में बीस बार ठीक करते थे। उन्होंने ग़ौर से देखा।

और पहचान लिया।

लोटन। गंगा प्रसाद, या रामखेलावन, जो भी हो, उसका बेटा लोटन। जो स्कूल में निबंध की जगह गाने लिखता है। जो बेंत खाता है और चुप रहता है। और उसके साथ एक लड़की बैठी है।

लड़की कौन है।

पंडित जी ने ग़ौर से देखा। लड़की पीठ की तरफ़ बैठी थी, उनकी तरफ़ चेहरा नहीं था। पर पंडित जी ने देखा कि लड़की के कंधे पर दुपट्टा है और वह दुपट्टे को बार बार खींच रही है, और यह आदत पंडित जी ने पहले भी देखी है, कहीं देखी है, पर कहाँ, यह अभी याद नहीं आ रहा। पंडित जी ने और क़रीब जाने की कोशिश नहीं की। उन्हें ज़रूरत नहीं थी। उन्होंने देख लिया जो देखना था। बल्कि उन्होंने उससे ज़्यादा देखा जो था, क्योंकि पंडित जी की आदत यह थी कि वह जितना देखते उससे ज़्यादा समझते, और जितना समझते उससे ज़्यादा बताते, और जितना

बताते उससे ज़्यादा फैलता। पंडित जी की जबान महामारी की तरह फैलती थी। दुनिया की सबसे बड़ी महामारी जबान से ही तो फैलती है।

पंडित जी ने साइकिल आगे बढ़ाई। धीरे धीरे।

उनके दिमाग़ में एक मशीन चलने लगी थी।

वह मशीन जो हर गाँव के हर उस आदमी के दिमाग़ में चलती है जो अपने आप को गाँव का ज़िम्मेदार नागरिक मानता है। पंडित जी अपने आप को ज़िम्मेदार नागरिक ही नहीं, गाँव का नैतिक प्रहरी मानते थे। उनका यह विश्वास था कि ईश्वर ने उन्हें इसीलिए बनाया है कि वह गांव के लोगों को सही रास्ते पर रखें, और सही रास्ते पर रखने का मतलब था कि जो ग़लत कर रहा है उसे पकड़ो, और पकड़ने के बाद सबको बताओ, क्योंकि बताना भी एक तरह की सेवा है।

गाँव की नज़र सिर्फ़ नज़र नहीं होती। वह एक पूरी मशीनरी है। उस मशीनरी में बहुत से पुर्ज़े होते हैं और हर पुर्ज़ा अपना काम करता है। पहला पुर्ज़ा देखता है। दूसरा जोड़ता है। तीसरा घटाता है। चौथा गुणा करता है। और जहाँ कुछ कम पड़ जाए, पाँचवाँ पुर्ज़ा अपनी तरफ़ से भर देता है। और यह भरना ही सबसे ख़तरनाक है, क्योंकि जो अपनी तरफ़ से भरा जाता है वह सच नहीं होता पर सच जैसा लगता है, और सच जैसा लगने वाला झूठ सच से ज़्यादा ताक़तवर होता है।

पंडित रामअवतार मिसिर इस मशीनरी के पहले पुर्ज़े थे।

उस शाम वह सीधे घर नहीं गए। पहले बैरागी की चाय की दुकान पर रुके। एक छोटी-सी दुकान जिसमें तीन बेंच थीं, एक काउंटर था, और काउंटर पर एक स्टोव जलता रहता था जिस पर चाय उबलती रहती थी। बैरागी की चाय अच्छी नहीं थी, दूध कम, चीनी ज़्यादा, पर यह दुकान बालमपुर और रामनगर का वह अड्डा था जहाँ शाम को लोग इकट्ठा होते थे और ख़बरें बँटती थीं।

उस शाम दुकान पर रमेसर था और बलदेव था।

पंडित जी बैठे। चाय मँगवाई। एक घूँट पिया। और फिर अपनी आदत के मुताबिक़ धीमी आवाज़ में बात करना शुरू किया।

यह उनका तरीक़ा था। बहुत पुराना, बहुत कारगर। वह इतने धीमे बोलते थे कि सुनने वाले को पास आना पड़ता। और जब कोई पास आता तो बाक़ी दुनिया से कट जाता, उसकी पूरी दुनिया पंडित जी की वह धीमी आवाज़ बन जाती।

चाय का दूसरा घूँट पिया और कहा, सिर हिलाते हुए, जैसे बड़ी तकलीफ़ में हों।

"क्या करें, देखना पड़ता है सब। आँखें हैं, बंद तो नहीं कर सकते।"

रमेसर ने पूछा, "क्या देखा पंडित जी?"

पंडित जी ने सिर हिलाया, जैसे बताना नहीं चाहते। और भी धीमे बोले।

"कुछ नहीं, बस आज रामनगर जा रहा था। इमली के पेड़ के पास से गुज़रा।"

"फिर?"

एक गहरी साँस। "लोटन था वहाँ। और उसके साथ एक लड़की।"

बलदेव की आँख चमकी। "कौन?"

पंडित जी ने चाय का कप नीचे रखा। बहुत धीमे, इतने धीमे कि सिर्फ़ पास बैठे दोनों को सुनाई दे।

"हरिप्रसाद की बिटिया। मुनिया।"

बलदेव का हाथ काँपा। चाय का कप थोड़ा हिला। चाय गिरी नहीं, पर हिली।

पंडित जी ने आगे कहा, "इमली के पेड़ के नीचे दोनों बैठे थे। रेडियो बजा रहे थे, गाना सुन रहे थे। मैंने अपनी आँखों से देखा।"

पंडित जी ने कभी झूठ नहीं बोला। यह सच भी था, उन्होंने सचमुच देखा था। पर जो सच था उसे उन्होंने इस तरह पेश किया कि वह अधूरा सच बन गया। दो लोग

पेड़ के नीचे बैठे थे, यह सच था। रेडियो बज रहा था, यह सच था। पर इतने से एक पूरी कहानी बना देना, इतने से यह नतीजा निकालना कि कुछ ग़लत हो रहा है, यह वह हुनर था जो पंडित जी के पास था। अधूरा सच पूरे झूठ से ज़्यादा ख़तरनाक होता है, क्योंकि पूरे झूठ को कोई पकड़ सकता है। पर जिसमें थोड़ा सच हो, उसे कोई नहीं पकड़ सकता।

बलदेव ने चाय ख़त्म की। पैसे रखे।

"पंडित जी, यह बात ओझा बाबू को पता होनी चाहिए।"

पंडित जी ने सिर हिलाया, जैसे बड़ी तकलीफ़ में हों। "हाँ भाई, पर ओझा बाबू सख़्त हैं, कहीं कुछ उल्टा सीधा फैसला न ले ले।"

"उल्टा सीधा फैसला क्या लेंगे, जो सच है वह सच है।"

उस शाम चौपाल पर कुबेर सिंह अपनी मचिया पर बैठे थे। उनके बगल में कोमल बजरंगी थे। चौपाल पर गाँव के कुछ बूढ़े थे जो हर शाम आते थे, उनके पास कोई और जगह नहीं थी जहाँ जाएँ।

उन बूढ़ों में से एक ने कोमल बजरंगी से पूछा था, "आप जहाज़ से बहुत ऊपर गए होंगे, तो कभी इंद्र भगवान का सिंहासन दिखा?"

कोमल बजरंगी ने जो जवाब दिया उसके बाद से वह चौपाल पर अमर हो गए।

"जहाज़ उतना ऊपर नहीं उड़ता जितना पुष्पक विमान उड़ सकता था। अंग्रेज़ पुष्पक जैसा कुछ बना ही नहीं सकते।"

चौपाल पर हलचल मच गई। बूढ़ों ने तुरंत कोमल बजरंगी के पैर छुए।

तभी पंडित रामअवतार मिसिर वहाँ प्रकट हुए। उनके चेहरे पर वह भाव था जो ख़बर लाने वालों के चेहरे पर होता है। उन्होंने बात रखी। इमली का पेड़, रेडियो, गाना, लोटन, और एक लड़की। लड़की का नाम नहीं लिया, पर इशारे इतने थे कि नाम की ज़रूरत नहीं रही।

कुबेर सिंह ने सुना। पूरी बात सुनी, बिना टोके। उनके चेहरे पर कोई भाव नहीं बदला। मूँछें वैसी ही रहीं, ऊपर को मुड़ी हुई। हाथ में लाठी थी जो ज़मीन पर टिकी थी। लाठी हिली नहीं।

जब पंडित जी ने बात ख़त्म की तो चौपाल पर सन्नाटा रहा। सब कुबेर सिंह की तरफ़ देख रहे थे। कुबेर सिंह ने एक पल रुककर, बिना किसी को सीधे देखे, जैसे आकाश से बात कर रहे हों, कहा।

"जब नाली का पानी बाग़ीचे में घुसने लगे तो माली को जागना चाहिए।"

किसी ने नहीं पूछा कि नाली कौन है और बाग़ीचा कौन। सब समझ गए। कुबेर सिंह ने किसी का नाम नहीं लिया, किसी पर सीधे आरोप नहीं लगाया, बस एक कहावत कही। और कहावत ऐसी चीज़ होती है जिसमें कोई आरोप नहीं होता, बस एक सामान्य बात होती है। पर इस कहावत के पीछे एक फ़ैसला था जो सबको समझ आ गया।

उस रात कुबेर सिंह ने हरिप्रसाद ओझा को संदेश भिजवाया।

यहां यह भी जान लेना ज़रूरी है कि कुबेर सिंह और लोटन के बीच एक पुरानी बात थी, वह बात जो छोटी थी पर जो छोटी बातें होती हैं वे बड़ी बातों से ज़्यादा देर तक रहती हैं, बड़ी बातें आती हैं और जाती हैं, लोग भूल जाते हैं, पर छोटी बातें, वे जो चुभती हैं, वे जो अहं पर लगती हैं, वे नहीं जातीं, वे बैठ जाती हैं, भीतर, गहरे, और सालों बाद भी जब कोई उन्हें छेड़ता है तो वे उसी तेज़ी से उठती हैं जिस तेज़ी से पहले दिन उठी थीं, जैसे सांप सालों सो सकता है पर जब जागे तो काटता वैसे ही है।

बात यह थी कि लोटन गाता था। यह पूरा गांव जानता था, यह बात किसी से छिपी नहीं, लोटन की आवाज़ गांव की पहचान थी, जैसे कोमल बजरंगी की चालीसा, जैसे नीम का पेड़, जैसे कुएं का पानी। एक बार, कोई दो बरस पहले, कुबेर सिंह ने किसी समारोह के लिए नचनियों को बुलाया था। नाचनियां बाहर से

आई थीं, तीन थीं, और उनके साथ दो बाजे वाले, एक हारमोनियम एक ढोलक, और वे वही नाच करती थीं जो ज़मींदारों के यहां होता आया है सदियों से, वही ठुमके, वही मटक, वही अदा, और कुबेर सिंह चाहते थे कि लोटन भी उस कार्यक्रम में गाए, क्योंकि लोटन की आवाज़ अच्छी थी और अच्छी आवाज़ मेहमानों पर रौब डालती है, और कुबेर सिंह को रौब डालना बहुत पसंद था।

पर लोटन ने मना कर दिया।

मना कर दिया, सीधे, बिना किसी लाग लपेट के, बिना उस डर के जो छोटे आदमी को बड़े आदमी के सामने होता है। और मना करने में भी एक बात कह दी जो कहनी नहीं चाहिए थी, या शायद कहनी चाहिए थी, यह फ़र्क अब तय नहीं हो सकता, पर कही, और कही बात वापस नहीं आती।

लोटन ने कहा कि नचनियों की कला को जो नाम दिया जा रहा है वह उनकी तौहीन है। यह बात सुनने में छोटी लगती है पर बड़ी थी, बहुत बड़ी, क्योंकि गांव में नचनियों के नाच को वह नाम दिया जाता था जो इज़्ज़तदार लोग ज़बान पर नहीं लाते, रंडी नाच, और यह नाम सदियों से चला आ रहा था, किसी ने कभी सवाल नहीं उठाया, क्योंकि सवाल उठाने का मतलब था उस व्यवस्था पर सवाल उठाना जो ज़मींदारों ने बनाई है, और ज़मींदारों की बनाई व्यवस्था पर सवाल उठाना वैसा ही है जैसे भगवान के बनाए नियम पर सवाल उठाना।

पर लोटन ने किया।

लोटन ने कहा कि नाचना एक कला है और कला को रंडी नाच कहना कला की तौहीन है, और इन शब्दों में वह साहस था जो लोटन की उम्र का नहीं, किसी बड़े आदमी का था, और यह साहस कहां से आया, यह लोटन को भी नहीं पता, शायद किशोर कुमार से आया, शायद रेडियो से, शायद उस भीतर की खिड़की से जो खुली थी और जिसने दुनिया को एक नए कोण से दिखाया, शायद उस गरीबी

से जिसने लोटन को सिखाया कि जब कुछ खोने को नहीं तो डरने से क्या फ़ायदा।

और इस बात पर नचनियों में हलचल मची। यह हलचल वह थी जो तब मचती है जब कोई वह बात कह दे जो सब जानते हैं पर कोई नहीं कहता। नचनियों ने तब तक नाचने से मना कर दिया जब तक उनकी कला को एक सम्मानजनक नाम नहीं मिला, और यह मना करना उनकी ज़िंदगी का पहला विद्रोह था, वह विद्रोह जो एक लड़के की एक बात से शुरू हुआ, उस लड़के की जो ख़ुद एक विद्रोही था, जिसने अपना नाम बदला, जो बाप की लाठी खाकर भी नहीं रुका, और अब उसने नचनियों को भी वह ताक़त दी जो उनके पास पहले नहीं थी, वह ताक़त जो ना कहने में होती है।

कुबेर सिंह उस दिन से लोटन से नाराज़ थे। यह नाराज़गी साधारण नहीं थी, यह वह नाराज़गी नहीं थी जो दो बराबर लोगों में होती है, यह वह नाराज़गी थी जो रसूख़दार आदमी को तब होती है जब कोई छोटा आदमी उसकी किसी बात पर टोक दे, और "छोटा" यहां उम्र का नहीं, हैसियत का है, जाति का है, ज़मीन का है, और लोटन इन तीनों में छोटा था, उम्र में भी, हैसियत में भी, जाति में भी, और ऐसे छोटे आदमी का बड़े आदमी को टोकना, यह अपमान था, वह अपमान जो ज़मींदार कभी नहीं भूलते, क्योंकि ज़मींदार का अहं उसकी ज़मीन से बड़ा होता है, और ज़मीन बड़ी होती है, बीघों में, एकड़ों में, पर अहं उससे भी बड़ा, उसे नापने का कोई पैमाना नहीं।

कुबेर सिंह ने उस दिन कुछ नहीं कहा, कुछ नहीं किया, बस जमा कर लिया।

और आज वह दिन आया।

हरिप्रसाद ओझा कुबेर सिंह के घर पहुँचे तो दरवाज़े पर बजरू खड़ा था, वही बजरू जो हर पंचायत में मचिया उठाकर चलता था और जिसे देखकर गाँव वाले समझ जाते थे कि ठाकुर साहब का दरबार लगने वाला है। बजरू ने ओझा जी को

देखा, एक पल को रुका, जैसे कोई हिसाब लगा रहा हो कि आने की वजह क्या होगी, फिर अंदर चला गया। थोड़ी देर बाद आवाज़ आई, "आने दो।"

कुबेर सिंह बैठक में थे, चारपाई पर, तकिया पीठ के पीछे, पान मुँह में, उस तरह बैठे जिस तरह वे हमेशा बैठते थे जब कोई काम माँगने आता था। उनकी आँखों में एक ख़ास किस्म का भाव था, वह भाव जो करुणा नहीं होता, जो सहानुभूति नहीं होता, जो सिर्फ़ और सिर्फ़ यह जानना होता है कि सामने वाला कितना झुकेगा।

कुबेर सिंह ने बात बताई।

बताना शुरू हुआ तो हरिप्रसाद के पैर वहीं जम गए, उस चौखट के पास जहाँ वे खड़े थे। जब कोई आदमी किसी बाप को बताता है कि उसकी बेटी किसी लड़के के साथ इमली के पेड़ के नीचे बैठी थी, तो वह एक बात नहीं बताता, वह उसकी इज़्ज़त उतारता है, एक-एक करके, धीरे-धीरे, जैसे कोई पुराना ज़ंग लगा ताला खोलता हो जिसे खुलने में वक़्त लगता है पर खुलता ज़रूर है।

पान की पीक थूककर कुबेर सिंह ने कहा, "ओझा जी, आप पंडित हैं, ब्राह्मण हैं, और आपकी लड़की एक नीची जाति के लड़के के साथ पेड़ के नीचे बैठती है।"

हरिप्रसाद ने सिर झुकाया।

वह सिर जो पूरी ज़िंदगी में सिर्फ़ भगवान के सामने झुका था, आज एक ज़मींदार के सामने झुक रहा था और हरिप्रसाद के पास कोई रास्ता नहीं था क्योंकि उस झुकने में उनकी पंडिताई का बोझ नहीं था, उनकी बेटी की इज़्ज़त का बोझ था, और वह बोझ किसी ब्राह्मणत्व से भारी होता है, हमेशा से।

कुबेर सिंह रुके नहीं। उन्होंने और कहा, वह सब जो कहने की कोई ज़रूरत नहीं थी, पर जो वे इसलिए कह रहे थे क्योंकि कहने में एक अलग किस्म का सुख था, वह सुख जो पुरानी रंजिश के निकलने का होता है। लोटन का नाम लिया, नचनियों वाली बात उठाई, वह सब जो उन्होंने महीनों से सँभालकर रखा था इसी

दिन के लिए। हरिप्रसाद खड़े रहे, सुनते रहे, सिर झुकाए, और उनके भीतर वह सब धीरे-धीरे टूट रहा था जो एक ब्राह्मण के पास होता है, इज़्ज़त, रुतबा, वह पंडिताई जो पीढ़ियों से चली आ रही थी। और कुबेर सिंह तोड़ते रहे, बड़े इत्मीनान से, पान चबाते हुए।

जब हरिप्रसाद लौटे तो उन्हें रास्ते में इमली का पेड़ नहीं दिखा।

पेड़ वहीं था, उसी जगह, उसी मैदान में, वही जड़ें ज़मीन से बाहर निकली हुई, वही घना साया, कुछ भी नहीं बदला था। पर हरिप्रसाद की आँखें बदल गई थीं। उनमें अब वह धुंध थी जो शर्म से आती है और जो हर चीज़ को इस तरह धुंधला कर देती है कि आदमी देखते हुए भी नहीं देखता, चलते हुए भी नहीं चलता। इमली का पेड़ अब पेड़ नहीं था, वह वह जगह थी जहाँ उनकी बेटी बैठी थी उस लड़के के साथ, और वह जगह, वह पेड़, वह सब इतना उलझ गया उनके भीतर कि पाँव उठते रहे पर रास्ता नहीं दिखा, बस घर की दिशा पता थी और वे उसी तरफ़ चलते रहे, अंधे, सुन्न, बहरे।

घर पहुँचकर उन्होंने सुरजी देवी को सब बताया।

यह बताना उनके लिए दूसरी बार था। पहली बार कुबेर सिंह के सामने हुआ था, दूसरी बार अपनी पत्नी के सामने हो रहा था, और दोनों बार में जो था वह एक जैसा था, वह उघड़ना जो आदमी को नंगा कर देता है, पर जिसके बिना चारा नहीं। उन्होंने एक-एक बात बताई, कुबेर सिंह ने क्या कहा, कैसे कहा, किस तरह पान थूककर बोले, किस तरह लोटन का नाम लिया, किस तरह नचनियों की बात उठाई, किस तरह एक ब्राह्मण को एक ठाकुर के सामने सिर झुकाना पड़ा।

सुरजी देवी सुनती रहीं। चुप। बिना बोले। बिना किसी भाव के। वह चेहरा जिस पर न गुस्सा दिखता था, न दुख, न शर्म, वह पत्थर जिसे देखकर हरिप्रसाद को समझ नहीं आया कि वे जो कह रहे हैं वह पहुँच भी रहा है या नहीं।

पर भीतर बहुत कुछ चल रहा था।

जब हरिप्रसाद ने बात बताई, सुरजी देवी का दिमाग़ सबसे पहले यह गिनने लगा कि इससे कितना नुक़सान होगा, और नुक़सान का मतलब सिर्फ पैसों का नहीं, नुक़सान का मतलब इज़्ज़त का, रिश्तों का, समाज में हैसियत का, और ये तीनों पैसे से बड़े हैं, क्योंकि पैसा आता जाता है पर इज़्ज़त एक बार जाए तो लौटती नहीं।

सुरजी देवी ने हिसाब लगाया, चुपचाप, बिना किसी को बताए, उसी तरह जैसे वे हमेशा लगाती थीं, भीतर, गहरे, वहां जहां कोई नहीं देख सकता।

कितनी बदनामी होगी? बहुत। ओझा जी की बेटी, पंडित की बेटी, ब्राह्मण की बेटी, किसी मामूली लड़के के साथ, नीची जाति के लड़के के साथ, इमली के पेड़ के नीचे बैठी थी, यह बात अगर और फैली, और फैलेगी ज़रूर, क्योंकि पंडित रामअवतार मिसिर की ज़बान है और कुबेर सिंह की नाराज़गी, इन दोनों के मिलने से जो तूफ़ान आएगा वह बीस बीघा ज़मीन के मालिक को भी छोटा कर देगा, इस बात पर सुरजी देवी को कोई शक नहीं था। ज़मीन कट सकती है, बिक सकती है, बंट सकती है, ज़मीन चली जाए तो वापस आ सकती है, कमाओ, जोड़ो, ख़रीदो, पर इज़्ज़त, इज़्ज़त एक बार गई तो वापस नहीं आती, कभी नहीं, और यह "कभी नहीं" सुरजी देवी के हिसाब में सबसे बड़ी संख्या थी, अनंत, जिसे कोई भी जमा ख़र्च पूरा नहीं कर सकता।

कितने रिश्ते टूटेंगे? सुरजी देवी ने गिने, एक एक करके, जैसे कोई मालिन फूल गिनती है। इटावा वाले, जो मुनिया के लिए लड़का देख रहे थे, वह रिश्ता जो अभी कच्चा था पर बन रहा था, वह टूटेगा, क्योंकि इटावा वाले सुनेंगे तो मुंह फेर लेंगे, और मुंह फेरने में एक दिन नहीं लगता, एक पल लगता है, बस सुनना काफी है और मुंह फिर जाता है। आगरा वाले, जिनकी रिश्तेदारी पुरानी है, वे भी सोचेंगे, और सोचने वाला रिश्तेदार ख़तरनाक होता है, क्योंकि सोचने वाला दूर हो जाता है, धीरे धीरे, बिना बताए, बस दूर, और एक दिन पता चलता है कि वह रिश्तेदार अब रिश्तेदार नहीं, बस एक नाम है जो शादी ब्याह में नहीं आता।

अगली फ़सल पर कौन मुंह फेरेगा? सुरजी देवी ने इसका भी हिसाब लगाया, क्योंकि सुरजी देवी वह औरत थीं जो इज़्ज़त को फ़सल से जोड़कर देखती थीं, और यह जोड़ना ग़लत नहीं, बिल्कुल सही, क्योंकि खेती में मज़दूर चाहिए, मज़दूर गांव से आते हैं, और गांव के मज़दूर वही आते हैं जो ओझा जी की इज़्ज़त करते हैं, अगर इज़्ज़त में दाग़ लगा तो मज़दूर भी सोचेंगे, और सोचने वाला मज़दूर खेत पर देर से आता है, या नहीं आता, या आता है पर मन से नहीं, और बिना मन के किया गया काम काम नहीं, बोझ है, और बोझ से फ़सल नहीं उगती।

सुरजी देवी ने यह सब गिना, जोड़ा, घटाया, और नतीजा निकाला, वह नतीजा जो हमेशा एक संख्या होता, और वह संख्या इस बार बहुत बड़ी थी, इतनी बड़ी कि सुरजी देवी को एक पल के लिए सांस रुकी, पर वे वह औरत थीं जो सांस रुकने पर भी हिसाब नहीं छोड़तीं, और उन्होंने अगला हिसाब लगाया, वह हिसाब जो हल का था, समस्या का नहीं, हल का, क्योंकि सुरजी देवी समस्या में नहीं रहतीं, वे हल में रहती थीं, और हल हमेशा उनके पास होता, भले ही कड़वा हो, भले ही तकलीफदेह, पर होता।

रात को, जब दोनों अकेले थे, जब मुनिया सो गयी थी, जब वही अंधेरा था जो हमेशा था, जब छत पर वही सफ़ेदी थी जो उखड़ रही थी, सुरजी देवी ने ओझा जी से एक बात कही। बस एक बात। छोटी। सीधी। पर उस बात में वह सब कुछ था जो सुरजी देवी ने दिन भर सोचा, गिना, जोड़ा, घटाया, और जो नतीजा निकाला।

"लड़की की शादी जल्दी करनी होगी।"

बस। इतना। छै शब्द। और उन छै शब्दों में मुनिया की पूरी ज़िंदगी का फ़ैसला था, वह फ़ैसला जो बिना मुनिया से पूछे हो गया, बिना मुनिया को बताए, बिना मुनिया की मर्ज़ी, बिना उसकी राय, बस दो लोग, एक पलंग पर, अंधेरे में, और छै शब्द, और बात ख़त्म।

ओझा जी ने कुछ नहीं कहा। बस सिर हिलाया। वही सिर जो कुबेर सिंह के सामने झुका था, वही सिर जो अब पत्नी के सामने हिला, और इस हिलाने में वह सब था जो एक बाप के हार मानने में होता है, वह हार जो बाहर से नहीं दिखती, जो अंधेरे में होती है, जो चुपचाप, बिना किसी गवाह के, और जिसका कोई रिकॉर्ड नहीं, कोई सबूत नहीं, बस एक सिर हिला और बात ख़त्म, और उस ख़त्म में एक लड़की की ज़िंदगी का रास्ता बदल गया, वह रास्ता जो बालमपुर की तरफ जाता था, जो इमली के पेड़ की तरफ, जो लोटन की तरफ, वह रास्ता बंद हो गया, और एक नया रास्ता खुला, इटावा की तरफ, एक अनजान लड़के की तरफ, एक अनजान ज़िंदगी की तरफ, और यह सब सात शब्दों में, एक सिर हिलाने में, एक अंधेरी रात में।

बाहर रात थी, चांद नहीं, तारे थे, बहुत सारे, और उनमें से एक तारा वह था जो लोटन ने कभी देखा था और सोचा था कि तारे और सितारे में क्या फ़र्क है, और उस तारे को नहीं पता था कि नीचे, इस गांव में, इस घर में, इस पलंग पर, दो लोग एक लड़की की ज़िंदगी तय कर रहे हैं, बिना उससे पूछे, और तारे को पता होता भी तो क्या करता, तारे कुछ नहीं करते, बस चमकते हैं।

हरिप्रसाद ने उसी रात फ़ैसला कर लिया।

इटावा में एक लड़का था। उसका नाम था नरेश। नरेश सरकारी नौकरी में था, क्लर्क था, ब्लॉक दफ़्तर में, और उसकी तनख़्वाह एक सौ पैंतीस रुपए महीना थी। और सबसे बड़ी बात, नरेश का परिवार सवाल नहीं पूछता था। उन्हें लड़की चाहिए थी, पढ़ी लिखी, अच्छे घर की, और बस। लड़की ने क्या किया है, कहाँ गई है, किससे बात की है, यह सवाल वह नहीं पूछते थे क्योंकि उन्हें ज़रूरत नहीं थी, उन्हें लड़की चाहिए थी, बहू चाहिए थी, और इतना काफ़ी था। तीन दिन लगे। तीन दिन में, चार बातों में, दो कप चाय में रिश्ता तय हो गया। पहले दिन हरिप्रसाद इटावा गया। नरेश के पिता से मिला। बातचीत हुई। चाय पी। लड़की

के बारे में बताया, पढ़ीलिखी, सुंदर, सुशील। नरेश के पिता ने कहा, ठीक है, हमें कोई ऐतराज़ नहीं। एक कप चाय।

दूसरे दिन हरिप्रसाद रामनगर लौटा। तीसरे दिन फ़ैसला हो गया। शादी तय हो गई।

मुनिया को बताया गया। सुरजी देवी ने एक शाम मुनिया को बुलाया। मुनिया अपने कमरे में थी, पिछवाड़े वाले कमरे में, जहाँ अमरूद का पेड़ खिड़की पर झाँकता था और जहाँ तोता अभी भी आता था। मुनिया किताब पढ़ रही थी, कोई किताब, शायद इतिहास की, शायद हिंदी की, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। सुरजी देवी ने दरवाज़े पर खड़े होकर कहा, मुनिया।

मुनिया ने किताब बंद की। जी अम्मा।

नीचे आ।

मुनिया नीचे गई। आँगन में सुरजी देवी बैठी थीं, एक पीढ़े पर।

सुरजी देवी ने कहा, बैठ।

मुनिया बैठ गई।

सुरजी देवी ने कहा, तेरी शादी तय हो गई है।

बस।

इतना।

कोई लंबी बात नहीं। कोई समझाना नहीं। कोई पूछना नहीं कि तुझे क्या लगता है, तू क्या चाहती है, तेरी कोई राय है। बस एक वाक्य। तुम्हारी शादी तय हो गई है। जैसे कोई कह रहा हो कि कल बारिश होगी, या अगले हफ़्ते गेहूँ की कटाई होगी, या अगले महीने दीवाली है। एक तथ्य। बस।

मुनिया ने सुना।

उसने कुछ नहीं कहा। उसने पूछा नहीं कि कौन है, कहाँ का है, क्या करता है, कैसा दिखता है। उसने यह भी नहीं पूछा कि क्यों, इतनी जल्दी क्यों, अभी तो पढ़ाई भी पूरी नहीं हुई। उसने कोई सवाल नहीं पूछा। कोई ऐतराज़ नहीं किया। कोई आँसू नहीं बहाया। कोई आवाज़ नहीं निकाली। उसने बस एक काम किया। दुपट्टा कंधे पर सीधा किया। वही आदत। वही हरकत। वही खींचना जो दिन में सौ बार होता था। पर आज उस खींचने में कुछ और था। आज उस खींचने में एक भारीपन था, जैसे दुपट्टा अचानक बहुत भारी हो गया हो, जैसे कंधे पर कपड़ा नहीं, पूरी दुनिया रख दी गई हो। सुरजी देवी ने मुनिया का चेहरा पढ़ने की कोशिश की। पर मुनिया का चेहरा आज पढ़ने नहीं दे रहा था। वह चेहरा एक बंद दरवाज़ा था, एक ऐसा दरवाज़ा जिसकी चाबी अंदर से बंद है और बाहर से कोई खोल नहीं सकता।

सुरजी देवी ने कहा, लड़का इटावा का है। नौकरी करता है। घर है। ज़मीन है।

मुनिया ने सिर हिलाया। बहुत हल्का सा। हाँ या ना, यह साफ़ नहीं था। बस सिर हिला।

सुरजी देवी ने आगे कुछ और कहा, तेरे बाबूजी ने तय किया है। उन्होंने सोचा है तेरे लिए।

मुनिया ने फिर सिर हिलाया। बस।

और फिर वह उठी।

जैसे कोई उठता नहीं, बस उठ जाता है। जैसे देह को पता हो कि अब यहाँ बैठे रहने का कोई अर्थ नहीं। उसके पाँव सीढ़ियों की तरफ़ मुड़े, और सीढ़ियाँ उसे ऊपर ले गईं, जैसे नदी किनारे को ले जाती है, बिना पूछे, बिना रुके। कमरे का दरवाज़ा बंद हुआ, पर इतनी धीरे, इतनी खामोशी से, जैसे हवा ने उसे अपने हाथों से सहारा देकर बंद किया हो। न चटकनी की आवाज़। न दरवाज़े की। बस एक सन्नाटा, जो दरवाज़े के इस तरफ़ भी था और उस तरफ़ भी।

मुनिया ने खिड़की की तरफ़ देखा।

अमरूद का पेड़ वहीं था, अपनी जगह, अपनी खामोशी में। पर तोता नहीं था। शायद उड़ गया था, या शायद इतनी शाम को तोते नहीं आते, या शायद वह भी जानता था कि आज मुनिया के कमरे में किसी और की ज़रूरत नहीं। आसमान दिख रहा था खिड़की से, वही आसमान जिसे बालमपुर में लोटन देखता होगा अभी इसी वक़्त, वही तारे जो अभी आए नहीं थे पर आने वाले थे, जैसे कुछ बातें होती हैं जो कही नहीं जातीं पर होती ज़रूर हैं।

मुनिया खटिया पर बैठ गई।

उसने अपने हाथ देखे, हथेलियाँ, उँगलियाँ, वह रेखाएँ जो किस्मत की लकीरें कहलाती हैं। वही हाथ जिनसे उसने कितनी दोपहरें इमली के पेड़ के नीचे अपना दुपट्टा खींचा था, उन आँखों से बचने को जो देखती थीं और देखते हुए कुछ कह देती थीं। वही हाथ जिनसे उसने लोटन के गाने सुनते हुए उँगलियाँ मिट्टी में चलाई थीं।

उसने आँखें बंद कर लीं।

और भीतर जो उठा, वह समुद्र था। पर समुद्र का कोई किनारा नहीं था जहाँ लहरें टूटती हैं, कोई आवाज़ नहीं थी जिसे कोई सुन लेता। वह सब भीतर था, और भीतर ही रहा। एक आँसू नहीं गिरा। एक सिसकी नहीं निकली। एक आह नहीं, एक काँपती साँस नहीं। कुछ नहीं। बस एक चुप्पी, जो दुनिया के किसी भी शोर से बड़ी थी, पर जिसे सुन सकती थी सिर्फ़ मुनिया, सिर्फ़ वह, सिर्फ़ अपने भीतर।

उसने सोचा, लोटन को कैसे बताऊँगी। फिर सोचा, क्या बताऊँगी। फिर सोचा, क्या यह बदल सकता है।

और फिर वह जवाब आया, धीरे, बिना किसी शोर के, जैसे कोई पुरानी बात याद आती है जो हमेशा से पता थी।

नहीं।

नहीं बदलेगा। क्योंकि वह मुनिया है। हरिप्रसाद ओझा की बेटी। और हरिप्रसाद ओझा की बेटी का यही काम है, जो तय हो वह माने, जो कहा जाए वह करे, और अपना दुपट्टा सीधा रखे। चाहे भीतर कुछ भी हो। चाहे भीतर कोई भी हो।

खिड़की के उस पार आसमान था। तारे आने वाले थे।

मुनिया बैठी रही।

उस रात मुनिया ने खाना नहीं खाया।

थाली आई, रखी गई, और वापस चली गई। सुरजी देवी ने नहीं पूछा क्यों। बस देखा, और फिर नज़र फेर ली। जैसे कोई पुरानी किताब के उस पन्ने को पहचान ले जो उसने खुद भी कभी पढ़ा था, जिसके शब्द उसे याद हैं, जिसका दर्द उसे याद है, पर जिसे वह दोबारा पढ़ना नहीं चाहती।

शायद उन्हें पता था।

शायद इसलिए कि यह रात उनके लिए भी एक बार आई थी, बहुत बरस पहले, जब वह भी इसी उम्र की थीं, जब उनकी शादी तय हुई थी और किसी ने उनसे नहीं पूछा था, और उन्होंने भी थाली से मुँह फेर लिया था, और उनकी माँ ने भी चुप रहकर थाली उठा ली थी। उस रात और इस रात के बीच बरसों की दूरी थी, पर दर्द की कोई दूरी नहीं थी। वह वैसा ही था। ठीक वैसा ही।

यह कोई इत्तेफ़ाक़ नहीं था।

यह एक धागा था जो पीढ़ियों से चला आ रहा था, माँ से बेटी, बेटी से उसकी बेटी, अनकहा, अनलिखा, पर कभी टूटा नहीं। हर बेटी ने वही किया जो उसकी माँ ने किया था। चुप रही। खाना नहीं खाया। और फिर सुबह उठकर वह सब मान लिया जो रात भर मानने से इनकार करती रही। यह चुप्पी कोई कमज़ोरी नहीं थी,

पर यह ताक़त भी नहीं थी। यह बस एक रिवाज़ था, जिसे किसी ने सिखाया नहीं था, पर जो सबको आता था।

और लोटन।

लोटन को कुछ नहीं पता था। उसे नहीं पता था कि उसी वक़्त, उसी रात, उसी आसमान के नीचे, मुनिया एक थाली के सामने बैठी थी और कहीं नहीं थी। उसे नहीं पता था कि औरतों के कुछ दर्द ऐसे होते हैं जो मर्दों की भाषा में लिखे ही नहीं गए, जो किसी गाने में नहीं आते, किसी रेडियो पर नहीं बजते। उसे नहीं पता था। उसे कुछ नहीं पता था।

और यही सबसे भारी बात थी।

वह उस रात अपनी खटिया पर लेटा हुआ था, मुस्कुरा रहा था, क्योंकि कल दोपहर मुनिया ने उसे एक बात कही थी जो उसके कानों में गूँज रही थी। मुनिया ने कहा था, तुम्हारी आवाज़ में ज़िंदगी है, ठीक किशोर कुमार जैसी। लोटन ने उस वक़्त कुछ नहीं कहा था। क्या कहता। जिस पल कोई तुम्हें वह सुना दे जो तुम ख़ुद से भी नहीं कह पाए थे, उस पल में शब्द नहीं होते। उस पल में बस एक चुप्पी होती है जो बहुत भरी हुई होती है।

प्रेम में जो सुनाई देता है वह वही होता है जो सुनना चाहते हो।

और जो सुनना चाहते हो, वही सच होता है। बाकी सब अफ़वाह है, बाकी सब दुनिया की राय है, बाकी सब वह शोर है जो हमेशा से था और हमेशा रहेगा। पर मुनिया की वह एक बात, वह किशोर कुमार वाली बात, वह लोटन के लिए उस रात की सबसे बड़ी सच्चाई थी।

वह मुस्कुरा रहा था। बाहर रात थी। बालमपुर सो रहा था। और लोटन था कि जागता रहा, उस एक बात को बार-बार सुनता रहा जो मुनिया ने कही थी, और जो उसने हज़ार बार सुन ली थी।

और रामनगर में, उसी वक़्त, मुनिया अपने कमरे में बैठी हुई खिड़की से बाहर देख रही थी, और उसकी आँखों में कोई आँसू नहीं था, पर उसके भीतर एक बहुत पुरानी नदी बह रही थी जो किसी को दिखती नहीं थी।

रूपा को अगले दिन पता चला।

पता चलना कैसे हुआ, यह समझ लीजिए, क्योंकि गांव में ख़बरें पता नहीं चलतीं, ख़बरें आती हैं, ख़ुद चलकर, बिना बुलाए, बिना किसी ने कहा कि आओ, बस आ जाती हैं, जैसे बारिश आती है, जैसे धूप आती है, जैसे सुबह आती है, ख़बरें भी आती हैं, और जब आती हैं तो सबको एक साथ नहीं मिलतीं, पहले किसी को मिलती हैं, फिर किसी को, फिर किसी को, और इस क्रम में एक नियम होता है, वह नियम जो गांवों का अपना है, कि जिसे सबसे ज़्यादा फ़र्क पड़ता है उसे सबसे आख़िर में पता चलता है, जैसे बाप को सबसे आख़िर में पता चलता है, वैसे ही सबसे करीबी दोस्त को भी, क्योंकि करीब वाले को बताने में लोगों को डर लगता है, या शर्म, या वह झिझक जो कहती है कि यह बात मैं कैसे कहूं, कोई और कह दे, और कोई और भी यही सोचता है, और इस तरह ख़बर घूमती रहती है, दूर वालों से, और करीब वाला इंतज़ार करता रहता है, बिना जाने कि इंतज़ार कर रहा है।

रूपा को पता चला जब मुनिया एक हफ्ते तक स्कूल नहीं आई।

मुनिया का स्कूल न आना अपने आप में एक ख़बर थी, क्योंकि मुनिया कभी नहीं नागती, बारिश हो, धूप हो, ठंड हो, त्योहार हो, मुनिया आती, रोज़, बिना नागा, यह उसकी आदत थी, वह आदत जो हरिप्रसाद ओझा ने डाली थी, या शायद सुरजी देवी ने, या शायद मुनिया की अपनी थी, कौन जाने, पर थी, और जो चीज़ रोज़ हो और एक हफ्ते न हो तो लोगों को पता चल जाता है कि कुछ हुआ, जैसे कोमल बजरंगी की चालीसा एक दिन न सुनाई दे तो पूरा गांव जान जाता है कि कुछ गड़बड़ है।

स्कूल की लड़कियों में खुसफुसाहट थी। वह खुसफुसाहट जो लड़कियों में होती है, धीमी, तेज़, कान से कान, एक ने दूसरी को बताया, दूसरी ने तीसरी को, तीसरी ने चौथी को, और इस बताने में हर बार बात थोड़ी बदली, थोड़ी बढ़ी, थोड़ा नमक मिर्च, जैसा हमेशा होता है, पर बात का मूल वही रहा, कि मुनिया की शादी तय हो गई।

रूपा ने सुना।

उसने वह ख़बर सुनी जैसे कोई अचानक ठोकर खाए, चलता हो और पत्थर आ जाए, और पैर रुक जाए, और शरीर आगे जाना चाहे पर पैर न हिलें, और उस रुकने में वह सब हो जो गिरने से पहले होता है, वह एक पल जब दुनिया ठहरती है।

रूपा का पैर ज़मीन पर जम गया। ऐसे जम गया जैसे किसी ने कील ठोक दी, जैसे ज़मीन ने पकड़ लिया, जैसे गुरुत्वाकर्षण दस गुना हो गया हो। वह चल रही थी, स्कूल के बरामदे में, किताबें हाथ में, और अचानक रुक गई, बीच बरामदे में, जहां लड़कियां इधर उधर जा रही थीं, और रूपा रुकी खड़ी, ऐसे जैसे पत्थर की मूर्ति बन गई हो।

"क्या?"

यह "क्या" उसके मुंह से ऐसे निकला जैसे किसी ने भीतर से धक्का दिया, वह "क्या" जो सवाल नहीं, चीख़ है, वह चीख़ जो गले में अटकी रह जाती है और बाहर आती है तो एक शब्द बनकर, छोटा, कड़ा, तीखा।

"शादी। तय हो गई। इटावा में।"

तीन वाक्य। तीन छोटे वाक्य। और उन तीन वाक्यों में मुनिया की पूरी ज़िंदगी बदल गई, बिना मुनिया के, बिना रूपा के, बिना लोटन के, बस तीन वाक्य, और बात ख़त्म। शादी, यह शब्द सुनकर रूपा को वह सब याद आया जो वह जानती

थी, इमली का पेड़, लोटन, रेडियो, किशोर कुमार, वह सब जो उसने चुपचाप देखा, चुपचाप जाना, चुपचाप सहेजा, वह सब एक पल में उमड़ आया, जैसे बांध टूटे। तय हो गई, यह दो शब्द और भारी, क्योंकि "तय" का मतलब है कि बात ख़त्म, बहस ख़त्म, सोचना ख़त्म, अब जो होना है वह होगा, और जो "तय" कहता है वह वही है जिसने किया, और जिसके बारे में किया उसे पूछा नहीं, यही "तय" का ज़ुल्म है। और इटावा, यह नाम सुनकर रूपा को कुछ नहीं हुआ, इटावा एक जगह थी, दूर, अनजानी, जहां रूपा कभी नहीं गई, जहां मुनिया कभी नहीं गई, और जहां अब मुनिया को जाना होगा, हमेशा के लिए, और "हमेशा के लिए" वह बात है जो लड़कियों की शादी में सबसे भारी है, कि जाओ, और लौटकर मत आओ, और अगर लौटो तो मेहमान बनकर, अपने घर में मेहमान, यह शादी का सबसे बड़ा ज़ुल्म है जो कोई नहीं कहता पर सब जानते हैं।

"पर कैसे," रूपा ने कहा, और उसकी आवाज़ में वह बेबसी थी जो तब आती है जब कुछ समझ न आए, "अभी तो..."

यह "अभी तो" वह वाक्य था जो अधूरा रहा, और अधूरे वाक्य में जो था वह पूरे वाक्य से ज़्यादा था, अभी तो कल ही मुनिया स्कूल में थी, अभी तो कल ही हम साथ चली थीं, अभी तो कल ही सब ठीक था, अभी तो अभी है, और अभी में शादी कैसे, अभी में इटावा कैसे, अभी में "हमेशा के लिए" कैसे, यह सब उस अधूरे "अभी तो" में था, और रूपा ने उसे पूरा नहीं किया, क्योंकि पूरा करने की ज़रूरत नहीं, जो सुन रही थीं वे समझ गईं, और जो समझ गईं उन्होंने वह जवाब दिया जो गांवों में हमेशा दिया जाता है, वह जवाब जो सब कुछ कहता है और कुछ नहीं कहता।

"बस, हो गई।"

बस हो गई। तीन शब्द। और उन तीन शब्दों में दुनिया का सबसे पुराना जवाब था, वह जवाब जो हर सवाल का दिया जाता है जब सवाल का कोई जवाब नहीं,

बस हो गई, क्यों हुई, कैसे हुई, कब हुई, किसने की, यह सब बेमानी, बस हो गई, और इस "बस हो गई" में वह सारी व्यवस्था है जो सदियों से चली आ रही है, कि लड़कियों की शादी बाप तय करता है, मां तय करती है, समाज तय करता है, लड़की नहीं, और जब तय हो जाए तो बस हो गई, अब और सवाल नहीं, और कुछ नहीं, बस।

रूपा ने एक पल कुछ नहीं कहा। फिर पूछा, धीमे, बहुत धीमे, ऐसे जैसे कोई शब्द कहने से डर रहा हो, कि कहीं शब्द कहने से बात और सच न हो जाए।

"और लोटन?"

यह नाम रूपा के मुंह से ऐसे निकला जैसे कोई छिपी हुई चीज़ बाहर आ गई हो, वह चीज़ जो दबी थी, छिपी थी, जिसे कोई नहीं जानता था, या सब जानते थे पर कोई नहीं कहता, और रूपा ने कह दिया, और कहते ही उसे पता चला कि कह दिया, और पता चलने पर कुछ नहीं किया, वापस नहीं लिया, क्योंकि अब वापस लेने का वक़्त नहीं, अब वह वक़्त आ गया जब छिपी बातें बाहर आती हैं, चाहें या न चाहें।

जिस लड़की ने ख़बर दी थी, उसने "लोटन" नाम सुना और उसका चेहरा बदला, बस एक पल के लिए, वह बदलना जो आंखों में होता है, माथे पर नहीं, गालों पर नहीं, बस आंखों में, एक झपकी, एक सिकुड़न, और फिर चेहरा वैसा ही, जैसा पहले, पर वह एक पल काफी था, उस एक पल में वह सब था जो गांव जानता था और जो कोई ज़बान पर नहीं लाता।

"लोटन को क्या," उस लड़की ने कहा, और उसकी आवाज़ में वह सपाटपन था जो तब आता है जब कोई बात कहे जो सच है पर सच से ज़्यादा क्रूर, "उसकी शादी उसके बाबूजी तय करेंगे, लोटन नहीं।"

उसकी शादी उसके बाबूजी तय करेंगे। यह वाक्य सुनने में सीधा था, सपाट, जैसे कोई कहे कि सूरज पूरब से उगता है, इसमें नया क्या है, सबको पता है, पर इस

वाक्य में जो था वह शब्दों में नहीं, शब्दों के पीछे था, वहां जहां वह सब छिपा होता है जो ज़बान पर नहीं आता, और वह जो छिपा था वह कह रहा था कि लोटन से कोई मतलब नहीं, लोटन कौन है, लोटन की हैसियत क्या, लोटन की जाति क्या, लोटन के पास क्या है, न ज़मीन, न पैसा, न हैसियत, न वह कुछ जो एक लड़के को लड़की का बाप बनने के लायक बनाता है, लोटन के पास बस एक रेडियो है जो उसका भी नहीं बब्बन भैया का है, और एक आवाज़ है जो गाने में अच्छी है पर ज़िंदगी में कुछ काम की नहीं, और एक नाम है जो उसने ख़ुद रखा है, प्रेम कुमार, पर ख़ुद रखा हुआ नाम दुनिया में नहीं चलता, दुनिया में वह नाम चलता है जो बाप ने रखा, समाज ने दिया, और लोटन वही है, लोटन, रामखेलावन का बेटा, मज़दूर का लड़का, और मज़दूर के लड़के पंडित की बेटी से ब्याहे नहीं जाते, यह नियम है, पुराना, पक्का, अनलिखा, अनकहा, पर इतना सख़्त कि लोहे से भी मज़बूत।

पर शब्दों के पीछे कुछ और भी था, और वह "और" यह कह रहा था कि मतलब है, बहुत मतलब है, लोटन से मतलब है, मुनिया से मतलब है, उन दोनों से मतलब है, पर मतलब होने से कुछ नहीं होता, इस दुनिया में मतलब होना और कुछ कर पाना दो अलग बातें हैं, जैसे चाहना और पाना दो अलग, जैसे जानना और बोलना दो अलग, और यह फ़र्क रूपा को बहुत अच्छी तरह पता था, इसलिए नहीं कि किसी ने सिखाया, बल्कि इसलिए कि रूपा ने देखा, अपनी आंखों से, अपनी ज़िंदगी में, कि चाहने से कुछ नहीं मिलता, मिलता उसे है जिसके पास ज़मीन है, पैसा है, हैसियत है, और जिसके पास ये नहीं, उसके पास बस चाहना है, और चाहना खाली पेट भरता नहीं।

रूपा ने कुछ देर कुछ नहीं कहा।

कुछ बोली नहीं। खड़ी रही, वहीं, बरामदे में, लड़कियां इधर उधर जा रही थीं, किसी ने बस्ता गिराया, किसी ने किसी को पुकारा, किसी ने हंसी, ज़िंदगी चल रही थी, स्कूल चल रहा था, दुनिया चल रही थी, पर रूपा रुकी हुई थी, उसी

जगह, उसी पल में, और उसके भीतर वह सब था जो बाहर नहीं दिख रहा था, मुनिया का चेहरा, मुनिया की चुप्पी, मुनिया का दुपट्टा जो कंधे पर कभी सीधा नहीं होता, और लोटन, वह लड़का जो डेढ़ कोस चलकर आता था, जो रेडियो लेकर दौड़ता था, जो गाता था, जो सुन्न हो जाता था मुनिया को देखकर, और जिसे अभी पता नहीं, अभी नहीं पता कि जो "तय" हो गई वह हो गई, और जब पता चलेगा तब क्या होगा, यह सोचकर रूपा की आंखें भर आईं, पर बही नहीं, रुकीं, किनारे पर, जैसे नदी का पानी बांध पर रुकता है, और रूपा ने वह पानी रोक लिया, क्योंकि रूपा वह लड़की थी जो रोती नहीं, जो हंसती है, ज़ोर से, दांत बाहर, और जिसकी हंसी में वह ताक़त है जो रोने में नहीं।

रूपा ने अपना बस्ता कसकर पकड़ा, ऐसे जैसे कोई अपने आप को पकड़ता है कि कहीं गिर न जाए, और चल दी, क्लास की तरफ, बिना कुछ कहे, बिना पीछे मुड़े, बिना उन लड़कियों को देखे जो अभी भी खुसफुसा रही थीं, और उसकी चाल में वह भारीपन था जो पहले नहीं, वह भारीपन जो तब आता है जब कंधों पर कोई बोझ आ जाए जो दिखता नहीं, जो किताबों का नहीं, बस्ते का नहीं, बस उस जानने का है जो अभी अभी मिला, कि मुनिया जा रही है, हमेशा के लिए, इटावा, और लोटन यहां रहेगा, बालमपुर में, अपने रेडियो के साथ, अपने किशोर कुमार के साथ, अपने उस खालीपन के साथ जिसका कोई नाम नहीं, और रूपा के पास कोई ताक़त नहीं कि कुछ बदल सके, कोई ज़ोर नहीं, कोई हैसियत नहीं, वह बस एक दोस्त है, और दोस्त पुल है, पुल जिससे लोग गुज़रते हैं, और पुल कुछ नहीं कर सकता, बस खड़ा रह सकता है, और जब पानी बहुत बढ़ जाए तो पुल भी डूब जाता है, और आज रूपा डूब रही थी, धीरे धीरे, चुपचाप, बिना किसी को बताए, क्योंकि पुल अपना दर्द किसे बताए, पुल तो सबको ले जाने के लिए है, अपने लिए कहां।

और क्लास में बैठकर रूपा ने मुनिया की खाली जगह को देखा, वह जगह जो रोज़ भरी रहती थी, और आज खाली, और उस खाली में वह सब कुछ था जो

आने वाला था, वह खालीपन जो मुनिया के जाने के बाद रहेगा, स्कूल में, रास्ते में, उस इमली के पेड़ के नीचे, हर जगह, और रूपा ने उस खाली जगह को देखा, देखती रही, और शुक्ला जी की आवाज़ आ रही थी, कविता चल रही थी, पर रूपा को कुछ सुनाई नहीं दे रहा, उसे बस वह खाली जगह दिख रही थी, और उस खाली जगह में मुनिया का चेहरा, और उस चेहरे पर वह तिल, बाईं तरफ, और वह दुपट्टा जो कभी सीधा नहीं होता, और रूपा ने अपनी किताब खोली, बस खोली, पढ़ी नहीं, क्योंकि पढ़ने का मन नहीं, पढ़ने से क्या होता है, पढ़ने से शादियां नहीं रुकतीं, पढ़ने से इटावा नहीं बदलता, पढ़ने से लोटन को मुनिया नहीं मिलती, पढ़ने से कुछ नहीं होता, बस किताब खुली रहती है और आंखें भीगी, और रूपा की आंखें भीग रही थीं, पर रो नहीं रही, भीगना और रोना दो अलग बातें हैं, रूपा रोती नहीं, रूपा हंसती है, और आज भी हंसेगी, बाद में, जब कोई पूछेगा, "ठीक है?" तो कहेगी, "हां," और हंसेगी, वह हंसी जिसमें दांत बाहर हों और जो सब कुछ छिपा ले, हर दर्द, हर भीगना, हर वह बात जो कहीं नहीं जाती, बस भीतर जमा होती है, परत दर परत, जैसे इमली के पेड़ पर छाल जमती है, साल दर साल, और पेड़ मोटा होता जाता है, और मज़बूत, और रूपा भी मज़बूत होगी, बाद में, बहुत बाद में, पर अभी नहीं, अभी वह खाली जगह देख रही थी, और भीग रही थी, और किताब खुली थी, और शुक्ला जी पढ़ा रहे थे, और दुनिया चल रही थी, बिना रुके, बिना पूछे, बिना किसी की परवाह किए।

मुनिया ने इमली के पेड़ के नीचे आना बंद कर दिया।

पहले एक दिन नहीं आई। फिर दूसरा दिन। फिर तीसरा। और लोटन हर बार यही सोचता रहा कि आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। यह उम्मीद एक छिपकली जैसी थी जो दीवार पर बैठी रहती है, हिलती नहीं, डुलती नहीं, बस अपनी जगह जमी रहती है, उस भरोसे में कि मक्खी आएगी। पर मक्खी नहीं आई। हर "अगला दिन" ख़ाली गया, उस कुएँ जैसा जिसमें पानी सूख गया हो,

डोल डालो तो नीचे से बस खड़खड़ाहट आती है, रस्सी का तनाव रहता है, हाथ थक जाते हैं और हाथ में कुछ नहीं आता।

लोटन ने पतंग उड़ाई। एक दिन, दो दिन, तीन दिन। फिर उसे लगा कि शायद मांझा छोटा है, पतंग रामनगर तक नहीं पहुँच रही, मुनिया की छत तक नहीं जा रही। उसने पूरब से कहा। पूरब भी पूरब ही था, दो पसेरी चावल बेचकर नया मांझा ले आया। पर पतंग फिर भी रामनगर नहीं पहुँची, या शायद पहुँची पर कोई देखने वाला नहीं था छत पर। शायद मुनिया किसी रिश्तेदार के यहाँ गई थी। शायद बीमार थी। शायद कुछ और हुआ था जो लोटन को नहीं पता था और जिसे वह जानना भी नहीं चाहता था क्योंकि जानने से कभी-कभी उम्मीद टूट जाती है और उम्मीद टूटने से भी तकलीफ़ होती है।

वह इमली के पेड़ के नीचे बैठता रहा, उन जड़ों पर जो ज़मीन से बाहर निकली थीं और जिन पर बैठने की जगह थी, जैसे पेड़ ने ख़ुद कुर्सियाँ बना रखी हों उनके लिए जो यहाँ आकर बैठा करते थे। वही जगह, वही कोना, रेडियो गोद में, और नज़र उस रास्ते पर जो रामनगर की तरफ़ से आता था। उस रास्ते पर जिस पर मुनिया आती थी, रूपा के साथ, कभी-कभी। और जिस पर अब बस धूल थी, सूखी पत्तियाँ थीं, और वह सन्नाटा था जो ख़ाली रास्तों का होता है, वह सन्नाटा जो कुछ नहीं बोलता पर बहुत कुछ कह देता है।

रेडियो बजता रहा। किशोर कुमार आए, मुकेश आए, रफ़ी आए, लता आईं, आशा आईं, हर आवाज़ आई, हर धुन बजी। पर कोई सुन नहीं रहा था।

शाम को पूरब आया, जैसे हर शाम आता था।

बैठ गया। लोटन के पास। उसी जड़ पर। कुछ नहीं पूछा, बस बैठ गया, क्योंकि पूरब वह दोस्त था जो जानता था कि कभी-कभी बैठ जाना ही काफ़ी होता है, पूछने की ज़रूरत नहीं होती।

थोड़ी देर बाद लोटन ने कहा, "आज भी नहीं आई।"

इतना ही कहा। बस इतना। और इस "आज भी नहीं आई" में वह सब था जो लोटन ने नहीं कहा, वह सब जो वह कह नहीं सकता था, वह सब जो कहने से और भारी हो जाता। पूरब को दर्द हुआ, वह दर्द जो दोस्त के दर्द का होता है, अपना नहीं पर अपने जैसा।

दोनों चुप बैठे रहे। रेडियो बजता रहा। और रेडियो की आवाज़ उस इमली के पेड़ के नीचे उड़ती रही, बिना किसी के सुने, जैसे कोई किसी सूने कमरे में गाता रहे, जानते हुए कि कोई नहीं सुनेगा, पर रुक भी नहीं सकता।

फिर धीरे धीरे रामनगर की लड़कियों ने एक एक करके स्कूल आना बंद कर दिया।

या यूं कहो कि उनका आना बंद करवा दिया गया। उनके मां बाप ने। बदनामी के डर से। यह बदनामी वह बदनामी थी जो पंडित रामअवतार मिसिर की ज़बान से शुरू हुई और कुबेर सिंह की नाराज़गी से बढ़ी, और बढ़ते बढ़ते इतनी फैल गई कि अब सिर्फ मुनिया की बदनामी नहीं रही, अब पूरे रामनगर की बदनामी बन गई, कि वहां की लड़कियां बालमपुर के स्कूल में जाती हैं और वहां लड़कों के साथ पेड़ के नीचे बैठती हैं, और यह बात सच नहीं थी, सिर्फ मुनिया बैठी थी, बाकी किसी ने कुछ नहीं किया, पर बदनामी का यही स्वभाव है कि वह एक से शुरू होती है और सब पर फैल जाती है।

और रामनगर के बाप डर गए।

बाप होना ही डरना है। इज़्ज़त का डर, समाज का डर, बिरादरी का डर, उस नज़र का डर जो पड़ोस की खिड़की से आती है और बिना कुछ कहे बहुत कुछ कह देती है। उन्होंने अपनी लड़कियों को स्कूल से उठा लिया। एक ने उठाया, फिर दूसरे ने देखा और उठाया, फिर तीसरे ने। किसी ने नहीं पूछा क्यों। गाँव में यही होता है। एक भेड़ मुड़े तो बाकी भी मुड़ जाती हैं, बिना यह जाने कि आगे क्या है, बिना यह पूछे कि पीछे क्या छूट रहा है।

पर भेड़ें तो बस मुड़ती हैं।

इन लड़कियों की पढ़ाई डूब गई। उनके सपने डूब गए, अगर सपने थे तो, और सपने तो थे ही, छोटे-छोटे, कच्चे, अनकहे, वह सपने जो किताबों के हाशिये पर लिखे जाते हैं, जो रास्ते में चलते हुए देखे जाते हैं, जो स्कूल की उस खिड़की से झाँकते हैं जिसके बाहर एक दुनिया होती है और जिसमें दाखिल होने की एकमात्र चाबी पढ़ाई थी। वह चाबी छिन गई। वह खिड़की बंद हो गई।

और उसकी जगह क्या आई।

ताला। चारदीवारी। रसोई। वह धुआँ जो आँखों में भरता है और जिसे औरतें पोंछती नहीं, क्योंकि पोंछने की आदत छूट जाती है जब रोने की वजहें इतनी हो जाएँ कि गिनी न जा सकें।

और यह सब हुआ क्योंकि एक लड़के ने एक लड़की से मुहब्बत करने की गुस्ताखी की थी।

बस इतना। एक शाम, एक रेडियो, दो जोड़ी कान, और कुछ गाने जो हवा में घुल गए। पर गाँव की हवा में बातें घुलती नहीं, बस तैरती रहती हैं, हफ्तों तक, महीनों तक, और जिस घर की तरफ हवा मुड़े उस घर की बेटी का नाम उस बात में जुड़ जाता है, जैसे कोई दाग जुड़ता है, बिना पूछे, बिना माफी के।

रामनगर के बापों ने, जो बाप थे और बाप होने का मतलब डरना है, इज्जत का डर, समाज का डर, बिरादरी का डर, उन बापों ने अपनी लड़कियों को स्कूल से उठा लिया। एक ने उठाया तो दूसरे ने भी। दूसरे ने उठाया तो तीसरे ने। गाँव में यही होता है। एक भेड़ मुड़े तो बाकी भी मुड़ जाती हैं, बिना यह जाने कि मुड़ने की वजह क्या है, बिना यह सोचे कि पीछे क्या छूट रहा है।

पर भेड़ें तो बस मुड़ती हैं।

इन लड़कियों की पढ़ाई डूब गई। उनके सपने डूब गए, अगर सपने थे तो, और सपने तो थे ही, छोटे-छोटे, कच्चे, अनकहे, वो सपने जो किताबों के हाशिये पर पलते हैं, जो स्कूल की उस खिड़की से झाँकते हैं जिसके बाहर एक दुनिया होती है। वो खिड़की बंद हो गई। और उसकी जगह आया क्या, ताला, चारदीवारी, रसोई का धुआँ जो आँखों में भरता है और जिसे पोंछने की आदत भी छूट जाती है जब रोने की वजहें बहुत हो जाएँ।

यही गाँव का हिसाब है।

छोटे कारण, बड़े नतीजे। और बड़े नतीजों की सज़ा हमेशा उन्हें मिलती है जिनका कोई कसूर नहीं था, जो सिर्फ वहाँ थीं, जो सिर्फ लड़कियाँ थीं।

यह बात अब पूरे स्कूल को पता थी। हर लड़के को, हर मास्टर को, हर उस आदमी को जो स्कूल से जुड़ा था, सबको पता, और इस पता होने में वह शोर नहीं था जो बड़ी ख़बरों में होता है, यह वह चुप पता होना था जो आंखों में होता है, जो देखने में, जो इशारों में, कोई कुछ नहीं कहता पर सब जानते, और जब लोटन गुज़रता तो लोग देखते, वह देखना जो तौलने का है, परखने का, और उस देखने में कभी तरस होता, कभी मज़ाक़, कभी वह क्रूरता जो भीड़ में होती है जब कोई अकेला हो और सब जानते हों कि वह अकेला है।

लोटन ने सुना। सब सुना। रामनगर की लड़कियों का स्कूल छोड़ना सुना, मुनिया की शादी तय होना सुना, कुबेर सिंह की बात सुनी, गांव की बातें सुनीं, सब सुना, और कुछ नहीं कहा। कुछ नहीं। वह चुप्पी जो उसने ओढ़ ली थी, वह चुप्पी फूलमती की चुप्पी जैसी थी, वह चुप्पी जो बोलती है बिना बोले, जो कहती है बिना शब्दों के, और जो सबसे ज़्यादा दर्द उसे देती है जो चुप है।

उसकी चुप्पी मुनिया की चुप्पी जैसी थी। और यह बात इत्तिफ़ाक़ नहीं, यह बात ज़रूरी है, क्योंकि दो लोग जो प्रेम में हों उनकी चुप्पियां एक जैसी होती हैं, उनके दर्द एक जैसे, उनकी रातें एक जैसी, और उनकी सुबहें भी, फ़र्क बस इतना कि वे

दो अलग जगहों पर हैं, लोटन बालमपुर में और मुनिया रामनगर में, एक इमली के पेड़ के नीचे और दूसरी अपने कमरे में, पर उनकी चुप्पियां एक ही थीं, एक ही दर्द से बनीं, एक ही टूटन से उपजीं, और अगर कोई उन दोनों चुप्पियों को एक साथ रखता तो देखता कि वे एक ही चुप्पी हैं, बस दो हिस्सों में बंटी हुई, जैसे कोई रोटी तोड़ दे तो दो टुकड़े हों पर रोटी वही।

पूरब ने कहा, "भइया, कुछ करना होगा।"

यह "कुछ करना होगा" वह वाक्य था जो पूरब हमेशा कहता, हर मुश्किल में, हर हार के बाद, कुछ करना होगा, कोई योजना, कोई तरकीब, कोई बहाना, कोई ज़ंजीर, पूरब का दिमाग़ हमेशा चलता, हमेशा सोचता, हमेशा कोई न कोई रास्ता निकालता। पर इस बार?

"क्या करूं?" लोटन ने कहा, और यह "क्या करूं" वह "क्या बोलूं" से अलग था जो वह पहले कहता था, "क्या बोलूं" में एक शर्म थी, एक झिझक, "क्या करूं" में एक हार, वह हार जो तब आती है जब आदमी को पता चलता है कि कुछ चीज़ें उसके बस में नहीं, कि दुनिया उसकी मर्ज़ी से नहीं चलती, कि वह जो चाहता है वह नहीं होगा, और यह "नहीं होगा" ज़िंदगी का सबसे कड़वा स्वाद है।

पूरब ने सोचा। बहुत सोचा। इतना सोचा कि उसका माथा दुखने लगा, वह माथा जो हमेशा योजनाएं बनाता, जो हमेशा रास्ते निकालता, जो मुर्ग़ा बनकर भी सोचता रहता, आज वह माथा ख़ाली था, बिल्कुल ख़ाली, जैसे किसी ने सारे विचार उठाकर बाहर फेंक दिए हों। कोई योजना नहीं आई। कोई तरकीब नहीं। कोई बहाना नहीं। कोई ज़ंजीर नहीं। कोई शांति नहीं जो रूपा की ममेरी बहन हो, कोई रूपा नहीं जो मुनिया की दोस्त हो, कोई कड़ी नहीं, कोई जोड़ नहीं, कुछ नहीं। क्योंकि कुछ चीज़ें योजना से नहीं होतीं, कुछ चीज़ें इतनी बड़ी होती हैं कि कोई योजना उनके सामने टिकती नहीं, जैसे बाढ़ के सामने बांध नहीं टिकता, जैसे आंधी के सामने दिया नहीं टिकता, और यह जो हो रहा था, मुनिया की शादी,

रामनगर की लड़कियों का स्कूल छोड़ना, कुबेर सिंह की नाराज़गी, पंडित रामअवतार मिसिर की ज़बान, यह सब एक बाढ़ थी जिसके सामने पूरब का दिमाग़ एक छोटा सा बांध था, टूटने वाला, बह जाने वाला।

पूरब ने कुछ नहीं कहा। पहली बार कुछ नहीं कहा। पहली बार वह चुप रहा, वह पूरब जो कभी चुप नहीं रहता, जो हमेशा कुछ न कुछ कहता, कोई योजना, कोई तरकीब, कोई "इतिहास उन्हीं को याद करता है जो कोशिश करते हैं" जैसा कोई भारी वाक्य, पर आज कुछ नहीं, और इस कुछ न कहने में वह सब था जो पूरब की हार थी, उसकी पहली हार, वह हार जिसके बाद आदमी बदल जाता है, थोड़ा बड़ा हो जाता है, थोड़ा भारी, थोड़ा उदास, और पूरब बड़ा हो गया उस शाम, उस इमली के पेड़ के नीचे, उस चुप्पी में।

लोटन उस शाम बब्बन भैया के आंगन में गया। वही आंगन, वही नीम, वही चारपाई जिस पर बब्बन भैया बैठते और बच्चे ज़मीन पर, वही नियम, वही रेडियो। लोटन ने रेडियो चालू किया, डायल घुमाया, वही खड़खड़ाहट, वही तलाश, और एक जगह रुका, ख़बरें आ रही थीं, कहीं कुछ हुआ, कहीं कुछ होने वाला, वही ख़बरें जो हर दिन आतीं और जो लोटन को कभी समझ नहीं आतीं। फिर विविध भारती आई, और एक गाना आया, वह गाना जो लोटन ने बहुत बार सुना था, इतनी बार कि उसके बोल ज़बानी याद, "मेरे महबूब, क़यामत होगी," वही गाना जो उसने पहली बार बब्बन भैया के आंगन में सुना था, जिसे तीन बार सुनने के बाद उसे समझ आया था कि वह प्रेम में है, वही गाना, पर आज वह गाना नया लग रहा था, क्योंकि आज उसका मतलब बदल गया था।

पहले जब यह गाना आता तो लोटन के भीतर कुछ खुलता, एक खिड़की, एक दरवाज़ा, कुछ, और उस खुलने में एक उम्मीद होती, कि हां, क़यामत होगी, और क़यामत अच्छी होगी, और महबूब मिलेगा, और सब ठीक होगा। पर आज वही गाना सुनकर कुछ और हुआ, कुछ बंद हुआ, वह खिड़की जो खुली थी वह बंद होने लगी, धीरे धीरे, और उस बंद होने में वह दर्द था जो खुलने से ज़्यादा तकलीफदेह,

क्योंकि खुलना उम्मीद है और बंद होना हार, और हार में जो दर्द है वह उम्मीद के दर्द से बड़ा।

बब्बन भैया ने देखा कि लोटन उदास है। बब्बन भैया उन लोगों में से थे जो बोलते कम थे पर देखते बहुत, और देखकर जो समझते वह बोलने वालों से ज़्यादा, और उन्होंने देखा कि आज लोटन वह लोटन नहीं जो रोज़ आता है, आज का लोटन उदास है, वह उदासी जो चेहरे पर नहीं, आंखों में होती है, जो बोलने में नहीं, चुप रहने में, और बब्बन भैया ने वह उदासी पढ़ ली।

"क्या बात है लोटन?"

"कुछ नहीं बब्बन भैया।"

"कुछ तो है।"

"नहीं, बस ऐसे ही।"

"ऐसे ही" वह जवाब था जो लोटन हमेशा देता जब कुछ कहना नहीं चाहता, और बब्बन भैया जानते थे कि "ऐसे ही" का मतलब "ऐसे ही" नहीं, उसका मतलब है कि बहुत कुछ है पर बताने की हिम्मत नहीं, या बताने के शब्द नहीं, या बताने का मन नहीं, और बब्बन भैया ने आगे नहीं पूछा, क्योंकि बब्बन भैया वे आदमी थे जो जानते थे कि कुछ बातें पूछने से नहीं आतीं, कुछ बातें अपने आप आती हैं, जब वक़्त हो, जब हिम्मत हो, जब शब्द मिलें, और तब तक इंतज़ार करना चाहिए, वही इंतज़ार जो छिपकली का।

बब्बन भैया ने बस एक काम किया। उन्होंने रेडियो की आवाज़ थोड़ी बढ़ा दी।

बस इतना। डायल घुमाया, आवाज़ बढ़ाई, और यह बढ़ाना वह सब कुछ था जो बब्बन भैया कह सकते थे, वह कहना जो शब्दों में नहीं, आवाज़ बढ़ाने में, जो कह रहा था कि अगर तू बता नहीं सकता तो सुन ले, शायद गाने में जवाब मिले, शायद किशोर कुमार को पता हो कि क्या करना है, शायद रफ़ी साहब को, शायद

मुकेश को, शायद किसी को, और अगर किसी को भी पता नहीं तो कम से कम आवाज़ है, और आवाज़ होना चुप्पी से बेहतर, हमेशा बेहतर, क्योंकि चुप्पी मारती है और आवाज़ जीने देती है।

लोटन ने सुना। गाना ख़त्म हुआ। दूसरा आया। तीसरा। चौथा। लोटन सुनता रहा, बब्बन भैया के आंगन में, नीम के पेड़ के नीचे, उस रेडियो के पास जो अब उसका अपना था, जिसकी बैटरी उसकी ज़िम्मेदारी थी, जिसकी आवाज़ उसकी ज़िंदगी। सुनता रहा और सोचता रहा, और सोचते सोचते एक बात उसके भीतर आई, धीरे, ऐसे जैसे सुबह आती है, पहले अंधेरा, फिर स्लेटी, फिर हल्का, और वह बात यह थी कि दुनिया में कुछ चीज़ें ऐसी हैं जो आदमी के बस में नहीं, मुनिया की शादी उसके बस में नहीं, गांव की बदनामी उसके बस में नहीं, कुबेर सिंह की नाराज़गी उसके बस में नहीं, रामनगर की लड़कियों का स्कूल छोड़ना उसके बस में नहीं, और कुछ चीज़ें ऐसी हैं जो उसके बस में हैं, सुनना उसके बस में है, गाना उसके बस में है, उम्मीद रखना उसके बस में है, और इन दोनों के बीच, जो बस में है और जो नहीं, एक बहुत पतली लकीर है, और उस लकीर को पार करना हर किसी के बस की बात नहीं, पर पार न कर पाना भी कोई जुर्म नहीं, बस एक सच है, कड़वा, सूखा, पर सच।

घर लौटा। रात हो गई थी।

फूलमती रसोई में थीं। चूल्हे के आख़िरी अंगारे धीरे-धीरे काले पड़ रहे थे, वह लाल जो बुझने से पहले एक बार और चमकता है, जैसे जाते-जाते कुछ कहना चाहता हो। फूलमती ने रोटी दी। आज रोटी पर घी नहीं था, गुड़ नहीं था, अचार नहीं था। बस रोटी थी, सूखी, और साथ में दाल, पतली, जिसमें दाल कम था और पानी ज़्यादा, पर गरम थी, और उस गरमी में वह सब था जो फूलमती दे सकती थीं, जितना था उतना, और जो दिल से दिया जाए वह कभी थोड़ा नहीं होता।

लोटन ने रोटी खाई।

माँ की रोटी का स्वाद बताने की ज़रूरत नहीं होती। वह एक ही होता है, हर हाल में, चाहे घर में त्योहार हो या मातम, चाहे घी हो या न हो। माँ की रोटी हमेशा यही कहती है कि मैं यहाँ हूँ, जो भी हो। और यह "मैं यहाँ हूँ" दुनिया का सबसे बड़ा सच है। लोटन ने वह सच खाया, धीरे-धीरे, चबाकर। उसकी आँखें भीगीं, पर रुकीं, किनारे पर। फूलमती ने देखा या नहीं, यह पता नहीं। उन्होंने बिना कुछ कहे एक और रोटी थाली में रख दी, और यह बिना पूछे रखी गई रोटी उस सारे प्यार की शक्ल थी जिसे माँएँ कभी शब्दों में नहीं कहतीं।

रात को वह खाट पर लेट गया।

छत पर वही अंधेरा था। उसी कोने में छिपकली। पर आज उससे बात नहीं की। पहले करता था, मन ही मन, वह बातचीत जो सिर्फ उसकी और छिपकली की थी, कि तू भी इंतज़ार करती है और मैं भी, तू भी चुप है और मैं भी। पर आज किसी से बात करने का मन नहीं था, न छिपकली से, न पूरब से, न बब्बन भैया से। बस लेटे रहने का मन था, आँखें खुली, छत देखते, उस अंधेरे में जो कुछ नहीं दिखाता पर सब कुछ सोचने देता है।

और लोटन सोचता रहा।

सोचा कि जो हो रहा है वह क्यों हो रहा है। जवाब नहीं मिला, न छत में, न छिपकली में, न अंधेरे में। सोचा कि क्या इसे रोका जा सकता है। यह जवाब भी नहीं मिला, पर यह बात उसे पहले से पता थी, बस मानने में वक़्त लग रहा था। पूरब की चुप्पी ने बता दिया था। बब्बन भैया की ऊँची आवाज़ ने बता दिया था। फूलमती की बिना पूछे रखी गई रोटी ने बता दिया था। सबने अपने-अपने तरीक़े से कह दिया था, बिना कहे, कि कुछ नहीं हो सकता।

उसने सोचा कि ओझा जी से मिले। पर यह सोचना ही पागलपन था।

ओझा जी के पास लोग जाते नहीं, वे लोगों के पास जाते हैं, और तब भी हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर। लोटन उनसे क्या कहता, कि मैं आपकी बेटी से प्रेम करता हूँ, उसकी शादी मत करवाइए। यह इतना हास्यास्पद था कि सोचकर उस पर ख़ुद हँसी आई, पर वह हँसी ऐसी थी जो रोने से भी बुरी होती है। उसने सोचा कि मुनिया से मिले, एक आख़िरी बार, उससे कहे कि मत जा, मत जा इटावा, मत जा उस लड़के के पास जिसे तू जानती भी नहीं। मेरे पास कुछ नहीं है, न ज़मीन, न नौकरी, बस एक रेडियो है, एक आवाज़ है, और एक दिल है जो तेरे लिए है। पर यह भी पागलपन था, क्योंकि मुनिया ओझा जी की बेटी है, और ओझा जी की बेटी अपने बाप की बात मानती है, और बाप की बात मानना इस दुनिया का सबसे पुराना नियम है, इतना पुराना कि कोई इसे तोड़ नहीं सकता।

नतीजा यह था कि कुछ नहीं हो सकता।

अगले कुछ दिन किसी लंबे बुखार की तरह बीते। शरीर चलता रहा, काम होता रहा, झाड़ू लगी, साइकिल पोंछी गई, पतंग उड़ाई गई, पर सब कुछ ऐसे जैसे कोई और कर रहा हो, जैसे लोटन का शरीर वहाँ हो पर लोटन कहीं और हो।

एक दिन पूरब ने कहा, "भइया, रेडियो बजाओ।"

लोटन ने कहा, "नहीं।"

"क्यों नहीं।"

"किसके लिए बजाऊँ।"

पूरब चुप हो गया।

अब तीन चुप्पियाँ थीं। एक मुनिया की, रामनगर में, अपने कमरे में, उस खिड़की के पास जहाँ अमरूद का पेड़ था और तोता अब नहीं आता। एक लोटन की, इमली के पेड़ के नीचे, जहाँ अब मुनिया नहीं आती। और एक पूरब की, उन दोनों

के बीच, उस जगह जो किसी नक़्शे में नहीं होती, जो बस होती है, दो लोगों के बीच, और जिसमें वह सब था जो पूरब ने कभी नहीं कहा।

दो गाँवों के बीच डेढ़ कोस की दूरी थी।

वही दूरी जो लोटन रोज़ तय करता था, लाठी खाकर भी, चप्पल खाकर भी। पर अब वह डेढ़ कोस डेढ़ कोस नहीं रहा था। उसमें ओझा जी की हैसियत थी, सुरजी देवी का हिसाब था, रामखेलावन की लाठी थी, कुबेर सिंह की जाति थी, वह जाति जो दीवारों से ऊँची है, पहाड़ों से मोटी, हज़ारों साल पुरानी। उसमें लोटन की ग़रीबी थी, वह ग़रीबी जो सबसे बड़ी दीवार है, ज़मीन नहीं, पैसा नहीं, हैसियत नहीं, और बिना इनके आदमी के पास सिर्फ़ नाम बचता है, लोटन या प्रेम कुमार, नाम बदलने से कुछ नहीं बदलता, क्योंकि नाम के पीछे वही टूटा घर है, वही पतली दाल है, वही फूलमती की सूखी रोटी। उसमें पंडित रामअवतार मिसिर की ज़बान थी, जिसने एक बात उठाई और गाँव-गाँव फैला दी, और उस फैलाने में वह सब बह गया जो लोटन ने बनाया था, बहाने, रास्ते, इमली का पेड़, रेडियो, सब। और उसमें गाँव की नज़र थी, जो सब देखती है, सब जोड़ती है, और जहाँ कम पड़े वहाँ अपनी तरफ़ से भर देती है।

और मुनिया।

मुनिया ने नहीं कहा कि मैं लोटन से प्रेम करती हूँ। उसने नहीं कहा कि यह शादी नहीं करना चाहती। उसने कुछ नहीं कहा। बस दुपट्टा सीधा किया।

और वह दुपट्टा सीधा करना उसकी ज़िंदगी का सबसे भारी काम था।

क्योंकि उस दुपट्टे में उसकी पूरी ज़िंदगी लिपटी थी। वह बचपन जब दादी ने कहा था कि ज़ोर से मत हँस। वह लड़कपन जब अम्मा ने कंधे पर चुनरी डाली थी। और वह सब जो इमली के पेड़ के नीचे था, किशोर कुमार की आवाज़, लोटन का गाना, वे दोपहरें जो अब कहीं और हैं। और उसका वह भविष्य जो इटावा में था,

एक अजनबी लड़के के साथ, एक अजनबी घर में, जहाँ न इमली का पेड़ होगा, न रेडियो, न वह आवाज़।

यह सब उस दुपट्टे में था।

और मुनिया उसे सीधा करती रही, एक बार, फिर एक बार, फिर एक बार। जैसे सीधा करती रहेगी, पूरी ज़िंदगी। क्योंकि दुपट्टा कभी सीधा होता ही नहीं।

मलहम और चिट्ठी

बालमपुर में जब भी कोई ख़बर आती है वह कभी अकेली नहीं आती। अपने साथ हमेशा कुछ और लाती है, जैसे बरसात मेंढकों की टर्र-टर्र लाती है और मिट्टी की वह ख़ुशबू जो नाक में घुसकर आदमी को बचपन में पहुँचा देती है।

लोटन उस वक़्त घर के पिछवाड़े नीम की छांव में बैठा था। बिना काम के। एक बुत की तरह, जिस पर धूप पड़ती है और वह हिलता नहीं। मुनिया का इमली के नीचे न आना, पूरब का चुप हो जाना, डेढ़ कोस का लंबा हो जाना, इन सबने मिलकर उसे इस जगह ला बिठाया था जहाँ से न उठा जाता है न कुछ किया जाता है, बस बैठा जाता है।

पूरब आया।

"तुम्हारे बापू को कुबेर सिंह ने बुलाया है।"

यह वाक्य सुनकर लोटन ने पूरब की तरफ देखा, वह देखना जो सवाल पूछने का होता है बिना सवाल पूछे, फिर नीम की तरफ देखा, ऊपर, पत्तियों की तरफ, जहां एक गिलहरी भाग रही थी, बेफ़िक्र, बेपरवाह, उसे कोई ख़बर नहीं कि नीचे दो लड़के बैठे हैं जिनकी दुनिया बदल रही है, गिलहरी को क्या, गिलहरी अपने काम में, और फिर लोटन ने ज़मीन की तरफ देखा, वह ज़मीन जो सूखी थी, कड़ी, जिसमें दरारें थीं, छोटी छोटी, और उन दरारों में चींटियां चल रही थीं, अपने काम

में, बेफ़िक्र, और लोटन ने सोचा कि गिलहरी भी बेफ़िक्र, चींटी भी, बस आदमी परेशान, हमेशा परेशान।

"सुना?" पूरब ने पूछा।

"सुना।"

जब तक लोटन चौपाल पहुंचा, पंचायत ख़त्म हो चुकी थी।

पंचायत। यह शब्द सुनने में बड़ा लगता है, लोकतांत्रिक, जनता का, जनता के लिए, पर गांव में पंचायत वह नहीं जो किताबों में लिखी है, गांव में पंचायत वह है जो कुबेर सिंह कहें, बस, और कुबेर सिंह ने कहा तो हो गया, और जो हो गया वह इतने कम वक़्त में हुआ कि लोटन पहुंचे इससे पहले बात ख़त्म, जैसे कोई नाटक शुरू हो और ख़त्म हो और दर्शक पहुंचे तो खाली मंच मिले, बस कुर्सियां पड़ी हों और पर्दा गिरा हो।

लोग जा चुके थे। वे लोग जो पंचायत में बैठे, जिन्होंने सुना, जिन्होंने सिर हिलाया, जिन्होंने "हां" कहा, या शायद "हां" नहीं कहा पर चुप रहे, और चुप रहना "हां" कहना है, यह गांव का नियम, वे सब जा चुके, अपने अपने घर, अपने अपने काम, जैसे कुछ हुआ ही नहीं, जैसे किसी की ज़िंदगी का फ़ैसला नहीं हुआ, बस एक बात हुई और ख़त्म, अब रोटी खानी है, अब खेत जाना है, अब सोना है, बस।

रामखेलावन ज़मीन पर उकड़ूं बैठे थे।

ज़मीन पर। मचिया पर नहीं, खाट पर नहीं, पत्थर की एक पट्टी पर भी नहीं जो पीपल के पेड़ के पास रखी थी, उस पर भी नहीं। ज़मीन पर, खुली, कच्ची, वह ज़मीन जो हर किसी की नहीं, वह ज़मीन जो उनकी होती है जिन्हें बैठने की और कोई जगह नहीं दी जाती, और रामखेलावन को नहीं दी गई, न मचिया, न खाट, न पत्थर, बस ज़मीन, क्योंकि रामखेलावन वह आदमी थे जिनका बेटा वह काम कर बैठा जो नहीं करना चाहिए था, और उस न करने चाहिए काम की सज़ा बेटे को

नहीं, बाप को मिली, और सज़ा यह कि ज़मीन पर बैठो, सबके सामने, उस ज़मीन पर जो बताती है कि तुम्हारी हैसियत क्या है, और तुम्हारी हैसियत ज़मीन है, उससे ऊपर कुछ नहीं।

लोटन ने अपने बाप को देखा।

यह देखना वह देखना था जो बेटे का होता है जब वह बाप को पहली बार टूटा हुआ देखता है, वह बाप जो हमेशा खड़ा था, मज़बूत, सख़्त, लाठी उठाने वाला, आंखों से मार देने वाला, वह बाप आज ज़मीन पर बैठा था, सिर झुका, कंधे ढले, और उस ढलने में वह सब कुछ था जो एक बाप के टूटने में होता है, वह टूटना जो लाठी से नहीं, अपमान से आता है, वह अपमान जो कुबेर सिंह ने दिया, मचिया से, शब्दों से, और उस पंचायत से जिसमें रामखेलावन ज़मीन पर बैठे रहे और कुबेर सिंह मचिया पर, और यही फ़र्क सब कुछ था, मचिया और ज़मीन, ऊपर और नीचे, और नीचे वाला ऊपर नहीं उठ सकता, यह नियम, पुराना, पक्का।

लोटन दूर खड़ा रहा। वह पास जाना चाहता था पर पैर नहीं उठे, वे पैर जो डेढ़ कोस चलते, जो लाठी खाकर भी चलते, जो चप्पल खाकर भी, वे पैर आज नहीं उठे, क्योंकि बाप के पास जाना उस पल सबसे मुश्किल काम था, बाप के पास जाना मतलब देखना, सामने से, करीब से, वह टूटना जो दूर से दिखता पर करीब से महसूस होता, और महसूस करना देखने से ज़्यादा तकलीफदेह। भीतर कुछ टूट रहा था, धीरे धीरे, बिना आवाज़ के, जैसे बर्फ पिघलती है।

जब हिम्मत जुटाकर पास पहुंचा, रामखेलावन ने बिना ऊपर देखे कहा,क्योंकि बाप बेटे की आहट पहचानता है, वह आहट जो दुनिया भर की आहटों से अलग, वह कदम जो बाप ने पहली बार सुने जब बेटा चलना सीख रहा था, और वह आवाज़ कभी नहीं भूलती, चाहे बेटा बड़ा हो जाए, बूढ़ा हो जाए, वह आहट वही रहती है।

"पंचायत का फ़ैसला है कि तू कल से स्कूल नहीं जाएगा।"

बस इतना। कुछ शब्द। और उन कुछ शब्दों में लोटन की पढ़ाई ख़त्म, उसका स्कूल ख़त्म, शुक्ला जी की कविता ख़त्म, शिवशरण मिसिरा का न्यूटन ख़त्म, क़ुरबान अली का विज्ञान ख़त्म, वह कॉपी जिसमें गाने लिखता ख़त्म, वह बस्ता जो फूलमती ने पुरानी धोती से सिला ख़त्म, सब ख़त्म। और रामखेलावन ने ये शब्द बिना ऊपर देखे कहे, ज़मीन की तरफ, जैसे ज़मीन से बात कर रहे हों, जैसे बेटे से नहीं, ज़मीन से, क्योंकि बेटे की आंखों में देखकर यह बात कहना मुमकिन नहीं, कुछ बातें आंखों में देखकर नहीं कही जातीं, वे बातें ज़मीन की तरफ देखकर कही जाती हैं, या छत की तरफ, या कहीं और, बस सामने नहीं।

चुप्पी आई। लंबी, भारी, वह चुप्पी जो बाप और बेटे के बीच होती है जब दोनों को पता हो कि जो हुआ वह ग़लत है पर कोई कुछ नहीं कर सकता।

फिर लोटन बोला। और जो बोला वह वह बात थी जो लोटन ही बोल सकता था, कोई और नहीं, क्योंकि इस बात में वह सब था जो लोटन और रामखेलावन के बीच था, सालों से, बिना कहे।

"बापू, आप क्यों इतना परेशान हो रहे हैं? आप तो चाहते ही थे कि हम स्कूल न जाएं, तो वही हो गया।"

यह सुनकर रामखेलावन ने पहली बार ऊपर देखा। उनकी आँखों में कुछ था जो लोटन ने पहले कभी नहीं देखा था, दर्द जैसा कुछ, पर दर्द से बड़ा, शर्म जैसा कुछ, पर शर्म से भारी। जैसे बाप को यह मालूम हो कि बेटे ने वह सच बोल दिया है जो वह ख़ुद जानता था पर मानने को कभी तैयार नहीं हुआ।

रामखेलावन ने कोई जवाब नहीं दिया। जवाब था नहीं। दोनों बैठे रहे, बाप बेटा, उसी ज़मीन पर, उसी धूप में। बीच में वह सब पड़ा था जो सालों से नहीं कहा गया, लाठी की बात, चप्पल की, रेडियो की, मुनिया की, स्कूल की। इतना भारी था कि कहने से और भारी हो जाता, सो नहीं कहा गया।

रामखेलावन उठे। धीरे। ऐसे उठे जैसे कोई बहुत भारी बोझ उठाकर खड़ा हो, पैर कांपे, कमर ने साथ नहीं दिया, पर उठे, और घर की तरफ चले, और उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा, वही आदत जो लोटन की थी, पीछे न देखना, और अब लोटन को पता चला कि यह आदत कहां से आई, बाप से, उसी ख़ून से, उसी मिट्टी से, पीछे न देखना रामखेलावन का स्वभाव था और लोटन ने बिना जाने सीख लिया, और आज जब बाप पीछे मुड़े बिना जा रहा था तो बेटे को पता चला कि यह आदत विरासत है, बाप की, और विरासत में जो मिलता है वह चुनकर नहीं मिलता, बस मिल जाता है।

लोटन को उस वक़्त न घर लौटने का मन था, न बब्बन भैया के आँगन का। इमली का पेड़ भी नहीं, वह पेड़ अब वह नहीं रहा। तो वह चल दिया उस तरफ़ जहाँ वह हमेशा जाता था जब कोई और जगह नहीं बचती।

रेलवे की पटरी।

पटरी बालमपुर से थोड़ी दूर थी, पैदल चलो तो दस मिनट, और वह पटरी लोटन की अपनी जगह थी, उसकी वह जगह जहां कोई नहीं आता, कोई नहीं पूछता, कोई नहीं देखता, बस पटरी है, लोहे की, ज़ंग लगी, और दोनों तरफ जाती है, बराबर, एक तरफ मैनपुरी, दूसरी तरफ कहीं और, और दोनों तरफ का जाना ख़त्म नहीं दिखता, बस जाती है, दूर तक, और उस जाने में एक उम्मीद है कि कहीं न कहीं पहुंचती होगी, कहीं न कहीं रुकती होगी, और उस कहीं में शायद कोई जगह हो जहां यह सब नहीं, यह जाति नहीं, यह ग़रीबी नहीं, यह लाठी नहीं, यह पंचायत नहीं, बस एक जगह जहां आदमी आदमी हो, बस आदमी, और कुछ नहीं।

लोटन पटरी पर बैठ गया, उसी जगह जहां हमेशा बैठता, और पत्थर उठाया, छोटा, और फेंका, दूर, पटरी की सीध में, और पत्थर गिरा, दूर, और लोटन ने देखा कि कितनी दूर गया, और शायद दूरी नाप रहा था, या शायद उम्मीद, कि पत्थर

कितनी दूर जा सकता है, और उतनी दूर शायद वह भी जा सकता है, एक दिन, कभी, शायद। एक और उठाया, फेंका, यह पहले से दूर गया, या शायद नहीं, कौन नापे, पर फेंकने में वह ताक़त थी जो भीतर जमा थी, वह गुस्सा, वह बेबसी, वह सब कुछ जो शब्दों में नहीं निकल रहा वह पत्थरों में निकल रहा था।

और तभी एक पत्थर हवा में उड़ता हुआ उसके पत्थर से आगे निकला।

लोटन ने पीछे मुड़कर देखा।

पूरब पीछे से आ रहा था, हाथ में पत्थर, और उस पत्थर को उसने ऐसे फेंका था कि लोटन के पत्थर से आगे जाए, और गया, आगे, बहुत आगे, और इस आगे जाने में वह सब था जो पूरब हमेशा करता, लोटन से आगे जाना, उसके लिए रास्ता बनाना, उसकी तरफ से वह करना जो लोटन नहीं कर सकता, यह पूरब का स्वभाव था, उसकी फ़ितरत, और आज भी वही, पत्थर में भी।

"कितना ढूंढें तुम्हें।"

लोटन ने जवाब नहीं दिया। पूरब बैठ गया, लोटन के बगल में, पटरी पर, दोनों बैठे, चुप, पटरी की धूप गरम थी, लोहा तप रहा था, और उस तपने में वह गर्मी थी जो मार्च की दोपहर की, जो जलाती नहीं पर याद दिलाती है कि गर्मी आ रही है। दूर कहीं एक चिड़िया बोल रही थी, वह आवाज़ जो दोपहर की होती है, अकेली, ऐसी जैसे चिड़िया भी उदास हो।

"वो भी उतनी ही परेशान है जितने तुम।"

लोटन ने पूरब की तरफ देखा, और उस देखने में वह उम्मीद थी जो मरी नहीं, जो ख़त्म होती बैटरी की आख़िरी हिम्मत की तरह अभी बची थी, वह उम्मीद जो एक शब्द से जी उठती है।

"कैसे पता?"

पूरब ने कुछ नहीं कहा। बस कहा, "पता है।"

और इतना काफी था।

प्रेम में अगर एक को यह पता चल जाए कि दूसरा भी उतनी ही तड़प में है, तो दर्द बंटता है, आधा नहीं होता, यह सच है, दर्द कभी आधा नहीं होता, पर अकेला नहीं रहता, और अकेला न रहना ही काफी है, क्योंकि अकेला दर्द मारता है और साझा दर्द जिलाता है, यह क्यों होता है यह कोई नहीं समझा सका, न कोई शायर, न कोई फ़िलासफ़र, न कोई मास्टर, कोई नहीं, पर होता है, और इतना काफी है।

लोटन के चेहरे पर कुछ हल्का हुआ। कुछ बदला नहीं, बस एक साँस निकली जो देर से रुकी हुई थी। अकेला दर्द मारता है, यह लोटन जानता था, हालाँकि उसने कभी यह बात इस तरह सोची न थी। बस इतना पता था कि पूरब बगल में बैठा है और यही काफ़ी है।

पूरब ने थोड़ी देर बाद कहा, वह कहना जो पूरब का अपना था, जो हर हार के बाद आता, जो कभी मरता नहीं, "हमारे पास एक तरकीब है।"

लोटन ने पूरब की तरफ देखा, और उस देखने में वह पुराना सवाल था कि इस बार क्या, इस बार कौन सी योजना, इस बार कौन सा बहाना, और साथ में वह पुराना यक़ीन भी कि पूरब के पास कुछ न कुछ ज़रूर है, कुछ तो है, चाहे काम करे चाहे न करे, पर है।

"पतंग में चिट्ठी लिखे। क्या पता एक दिन तुम्हारी पतंग उसकी छत पर जा टकराए।"

लोटन ने पूरब को देखा, उस देखने से जो कहता है कि तू पागल है, पर तेरा पागलपन ही तो मेरी ताक़त है।

"मुश्किल लग रहा है।"

"तो फिर कबूतर से कोशिश करे। सुना है पुराने ज़माने में कबूतर चिट्ठी पहुंचाते थे।"

"हमारे यहां कबूतर सिर्फ गंदगी फैलाते हैं।"

लोटन उठकर खड़ा हो गया, पूरब ने भी उठते हुए कहा, "तो फिर पतंग ही सही है।"

दोनों वहां खड़े रहे, पटरी के किनारे, और पटरी दूर तक जाती थी, दोनों तरफ, बराबर, कहां तक जाती है यह दिखता नहीं, बस जाती थी, और उस जाने में वह सब था जो आगे होने वाला था, वह चिट्ठी जो लिखी जाएगी, वह पतंग जो उड़ेगी, वह स्टेशन जहां मुनिया खड़ी होगी, और वह सब जो इस कहानी को वहां ले जाएगा जहां कहानियां जाती हैं, उस मोड़ पर जहां से लौटना मुमकिन नहीं।

लोटन के हाथ में डोर की गट्ठर थी। छोटी, हल्की, सफ़ेद। और उस गट्ठर में वह उम्मीद लिपटी थी जो ख़त्म होती बैटरी की आख़िरी हिम्मत जैसी होती है, बुझने से पहले एक बार और टिमटिमाती है। पूरब ने लोटन के कंधे पर हाथ रखा। दोनों पटरी से उतरे और बालमपुर की तरफ़ चल पड़े, लोटन के हाथ में डोर थी और पूरब का हाथ उसके कंधे पर, और पटरी पीछे छूट गई, दोनों तरफ़ जाती हुई, बराबर, दूर तक, उस दूर में कोई मंज़िल थी या नहीं यह कोई नहीं जानता था, पर पटरी जाती थी, और जाना ही काफ़ी था।

अगली सुबह बब्बन भैया ने लोटन को बुलाया।

लोटन नीम की दातुन से दाँत माँज रहा था। दातुन मुँह में लेकर ही बाहर आ गया। बब्बन भैया ने कहा कि कानपुर जा रहे हैं। भाई का कपड़े का धंधा है वहाँ। यहाँ कुछ बचा नहीं। यह सच बोलते हुए उनके चेहरे पर वह थकान थी जो उम्मीद की थकान है, दुख की नहीं। किसी ने अफ़वाह फैला दी थी कि उनकी दवाई नकली है, और उसके बाद से न बस में चढ़ने दिया जाता था, न बस अड्डे पर कोई ख़रीदता था। अफ़वाह एक बार लग जाए तो दातुन से नहीं छूटती।

लोटन ने दातुन मुँह से निकाली, पर कुछ नहीं बोला।

बब्बन भैया ने पूछा, "तुम्हारा क्या होगा?"

"मेरा?" लोटन ने दातुन की तरफ़ देखा। "मैं यहीं रहूँगा।"

"खेती में मन लगता है?"

"नहीं।"

"तो?"

"तो भी यहीं रहूँगा।"

यह "तो भी" लोटन की पूरी ज़िंदगी का सार था। बब्बन भैया जाएँ तो भी, रेडियो जाए तो भी, मुनिया जाए तो भी, स्कूल बंद हो तो भी, क्योंकि जाने को कहाँ है, यह सवाल कभी पूछा नहीं गया पर इस "तो भी" में हमेशा से मौजूद था।

बब्बन भैया ने एक लंबी साँस ली। फिर कहा कि जो मलहम बेचते थे, अगर लेना हो तो ले जाओ, किसी दर्द में काम नहीं आता पर है तो। लोटन ने पूछा कि सीने का दर्द भी ठीक होता है उससे। बब्बन भैया समझ गए। न हँसे, न मज़ाक़ किया। बस कहा कि नहीं होता, पर चाहो तो दे देता हूँ। लोटन ने कहा दे दो।

पूरब उस दोपहर आया जब लोटन नीम की छाँव में मलहम की शीशी हाथ में लेकर बैठा था।

"यह क्या है?"

"मलहम।"

"कहाँ दर्द है?"

"यहाँ।" लोटन ने सीने पर हाथ रखा।

पूरब को एक पल लगा कि मज़ाक़ है। लोटन का चेहरा देखकर पता चला कि नहीं है।

"वो काम नहीं करता। जोड़ों के दर्द का मलहम है।"

"जोड़ों का ही तो दर्द है। पर दिल के जोड़ का।"

यह सुनकर पूरब को पहली बार कुछ नहीं सूझा। वह बस बैठ गया, लोटन के पास, चुप। कहीं दूर कोयल बोली, वह कोयल जो बालमपुर में हमेशा ग़लत वक़्त पर बोलती थी, जैसे किसी ने उसे भी ग़लत समय सिखाया हो।

"कुछ करना है?" पूरब ने पूछा, वह सवाल जो उससे कभी मरता नहीं था।

लोटन ने शीशी ज़मीन पर रख दी। धूल उड़ी।

"चिट्ठी लिखनी है।"

"मुनिया को?"

"हाँ।"

पूरब ने वह लंबी साँस ली जो कूदने से पहले तैराक लेता है और काग़ज़-क़लम लाने चला गया।

काग़ज़ आया, किसी थैले के कोने से काटा हुआ एक टुकड़ा। क़लम एक पुराना बालपेन था जो पूरब के बड़े भाई का था और जो अपनी आख़िरी साँसें गिन रहा था। दोनों सहन में बैठ गए। फूलमती भीतर थीं, चूल्हे पर कुछ था।

"बोलो," पूरब ने क़लम उठाया।

लोटन ने सोचा। बहुत देर सोचा। इतनी देर कि पूरब का हाथ थकने लगा।

"सोचते रहोगे तो शादी हो जाएगी।"

लोटन ने खाँसा। "लिखो, मुनिया को।"

"ऊपर नाम लिखूँ? प्रिय मुनिया?"

"प्रिय क्यों?"

"क्योंकि चिट्ठियों में ऐसे लिखते हैं।"

"मैंने कभी चिट्ठी नहीं पढ़ी।"

"मैंने एक पढ़ी थी। मास्टर जी के घर रखी थी।"

"वह किसकी थी?"

"पता नहीं। मैंने बिना पूछे पढ़ी थी।"

"प्रिय मत लिखो। बस मुनिया लिखो।"

पूरब ने लिखा: मुनिया।

इसके बाद जो हुआ वह चिट्ठी लिखने की कोशिश थी, या उसकी कई-कई मौतें थीं, यह कहना मुश्किल है। पहली चिट्ठी बहुत सीधी थी, "मुझे अच्छा नहीं लगा।" पूरब ने कहा बहुत सीधी है। लोटन ने कहा सीधी बात का असर सबसे ज़्यादा होता है। पूरब ने कहा तुम्हारे पिताजी का यह उसूल बहुत काम नहीं आया अब तक। चिट्ठी काट दी गई।

दूसरी में तारीफ़ से शुरुआत का सुझाव था, मुनिया की अक्लमंदी की। किस काम में अक्लमंद है यह लोटन को नहीं पता था, और झूठ से शुरू होने वाली बात कहाँ तक जाएगी, यह लोटन को ज़रूर पता था। चिट्ठी काट दी गई।

तीसरी में रेडियो से सुनी एक पंक्ति थी जो किसी और ही मुनिया की लगी, इस मुनिया की नहीं। चिट्ठी काट दी गई।

चौथी में बचपन था, इमली का पेड़ था, गिरना था और उठाना था, पर उस वक़्त लोटन नौ साल का था और मुनिया छह साल की, यह पूरब ने याद दिलाया। चिट्ठी काट दी गई।

पाँचवीं में मिलने की बात थी, कहीं भी आ सकता है, पर यह कमज़ोर लगी। छठी में हरिप्रसाद ओझा की तारीफ़ थी, जो बेमतलब थी। सातवीं पूरब ने ख़ुद लिखी,

लंबी, मौसम का वर्णन था, बरसात थी, खेत थे, लोटन का मन था जैसा पूरब समझता था। लोटन ने पढ़ी और कहा यह तो मेरी बात नहीं है, तुम्हारे तरीक़े से लिखी है। पूरब को यह बात लगी। उसने क़लम रख दिया।

फिर दोनों ने पतंगें उड़ाईं, एक के बाद एक, कुछ कटीं, कुछ पेड़ों में फँसीं, नीम में, बबूल में, उसी इमली में जो अब ख़ाली थी। पूरब ने कबूतर भी आज़माया, पाँव में चिट्ठी बाँधी, उड़ाया, कबूतर ऊपर गया और कभी वापस नहीं आया। शायद किसी मंदिर की मुँडेर पर बैठा है आज भी, किसी के दिल को पाँव में बाँधे।

एक हफ़्ता बीता।

फिर एक दिन पूरब ने रामनगर के बाहर एक छोटे से टीले की जगह ढूँढी जहाँ से ओझा जी के घर की वह खिड़की दिखती थी जिसके पास अमरूद का पेड़ था और जहाँ तोता नहीं आता था।

पतंग उड़ी। उस टीले से, उस हवा में जो रामनगर की तरफ़ बह रही थी। लोटन ने डोर कसकर पकड़ी, दोनों हाथों से, और पतंग ऊपर गई, बहुत ऊँची, हवा ने उसे उठाया। उस पतंग की पूँछ में वह चिट्ठी बँधी थी जो लोटन ने आठवीं या नौवीं या दसवीं बार लिखी थी, गिनती अब याद नहीं थी।

पतंग चली। और चलते-चलते मुनिया के घर तक पहुँची।

पूरब ने दूर से देखा। उसके चेहरे पर वह मुस्कुराहट थी जो बहुत दिनों से नहीं आई थी।

लोटन ने डोर छोड़ दी। आसमान की तरफ़ देखा, जहाँ पतंग थी और अब नहीं थी, जहाँ डोर थी और अब नहीं थी। उस ख़ाली आसमान में।

रात हो गई।

रात बालमपुर में भी आई और रामनगर में भी, एक ही अंधेरा, एक ही आधा चाँद, पर हर छत की अपनी रात होती है। मुनिया के घर में लालटेनें जल रही थीं, दो

दिन बाद शादी थी, और शादी से दो रात पहले का उजाला सबसे तेज़ होता है, सिवाय उसके लिए जो जानती है कि यह उजाला विदाई का है। बब्बन भैया की छत पर अंधेरा गहरा था, सामान बँधा पड़ा था, रेडियो भी कपड़े में लिपटा, कानपुर जाने को तैयार। और लोटन की छत पर वह रात थी जो न जगमग थी न काली, बस वैसी जैसी हमेशा होती है, वही छिपकली कोने में, वही सन्नाटा, पर आज उस सन्नाटे में कुछ भारी था जो साँस नहीं लेने देता था।

फूलमती रसोई में रोटी सेंक रही थीं।

धुआँ आँखों में चुभता था, गले में खरखराता था, पर बीस बरस की आदत ने आँखों को सुन्न कर दिया था। रोटी बनती रही, बेटा स्कूल से निकाला जाए तो भी, रामखेलावन ज़मीन पर बैठाए जाएँ तो भी। यही रोटी की ताक़त थी, और यही फूलमती की।

मुनिया की छत की रात भले ही जगमग थी पर उसके अपने हिस्से की रात वैसी ही थी जैसी बब्बन भैया की, गहरी, काली, बिना किसी रोशनी की, क्योंकि मुनिया का अपना हिस्सा उसके भीतर था, और भीतर जो था वह बाहर की जगमग से नहीं बदलता, बाहर चाहे हज़ार दिये जलें, भीतर जो अंधेरा है वह अंधेरा रहता है, यही भीतर और बाहर का फ़र्क है, और मुनिया इस फ़र्क को जानती थी, बिना किसी ने बताए।

मुनिया के भीतर एक तड़प थी।

तड़प। यह शब्द छोटा है, पर इसका बोझ बहुत भारी है। यह वही होती है जो मछली को पानी से बाहर होती है, जब गलफड़े खुलते हैं और बंद होते हैं और हवा मिलती है पर काम नहीं आती। यह वही होती है जो पसलियों के भीतर होती है जब कोई चीज़ इतनी ज़रूरी हो जाए कि उसके बिना साँस लेना एक झूठ लगने लगे।

मुनिया की तड़प लोटन को एक बार देख लेने की थी।

बस एक बार। आख़िरी बार।

इस "आख़िरी" में बहुत कुछ था जो मुनिया ने कभी नहीं कहा, जो उसने अपने होठों तक आने नहीं दिया, जो उसने अपनी उँगलियों की पोरों में दबाए रखा। परसों शादी थी। तरसों वह किसी और की हो जाएगी, किसी ऐसे आदमी की जिसका चेहरा उसने देखा है पर जिसकी आवाज़ में कोई गाना नहीं है, जिसके पास कोई रेडियो नहीं है, जो डेढ़ कोस चलकर नहीं आएगा, जो दौड़ेगा नहीं, जो सुन्न नहीं होगा। तरसों उसका दुपट्टा किसी और के लिए खिंचेगा, उसकी आँखें किसी और को देखेंगी, उसके हाथ किसी और की दुनिया में जाएँगे।

और उस तरसों से पहले, बस एक बार।

एक आख़िरी बार लोटन को देखना था। उस लोटन को जो डेढ़ कोस चलकर आता था जैसे दूरी कोई चीज़ नहीं होती, जो रेडियो लेकर दौड़ता था जैसे गाने देर से पहुँचे तो मर जाएँगे, जो गाता था और जिसकी आवाज़ में ज़िंदगी थी, जो सुन्न हो जाता था मुनिया को देखकर और जिसका वह सुन्न होना मुनिया को दुनिया की सबसे बड़ी तारीफ़ लगती थी। वह लोटन जो प्रेम कुमार था, सिर्फ़ नाम से नहीं, अपनी पूरी देह से, अपनी पूरी आवाज़ से, अपने पूरे होने से।

बस एक बार देखना था।

फिर मुनिया ने वह किया जो वह कर सकती थी।

वह बहुत कुछ नहीं कर सकती थी, यह बात सच थी, वह लड़की थी, और लड़की होना उस ज़माने में उस जगह पर मतलब बहुत कम कर पाना, बहुत कम बोल पाना, बहुत कम चुन पाना, पर "कम" का मतलब "कुछ नहीं" नहीं, "कम" का मतलब "थोड़ा" है, और थोड़ा भी बहुत है जब उसमें रीढ़ हो, और मुनिया की रीढ़ थी।

उसने चिट्ठी लिखी। रात को, उसी कमरे में, उसी खिड़की के पास जहां अमरूद का पेड़ था और तोता नहीं आता, ढिबरी की रोशनी में, वह रोशनी जो इतनी कम कि शब्द लिखने में हाथ कांपे और आंखें सिकुड़ें, पर मुनिया ने लिखी, एक कोरे काग़ज़ पर, वह काग़ज़ जो उसकी कॉपी से फाड़ा, और उस काग़ज़ पर उसने वह लिखा जो उसने कभी किसी से नहीं कहा, न रूपा से, न मां से, न बाप से, किसी से नहीं, पर आज लिखा, कलम से, स्याही से, और उस लिखने में उसकी उंगलियां कांप रही थीं, वही कांपना जो लोटन का था जब उसने पहली चिट्ठी लिखी, वही कांपना जो प्रेम का है, जो डर का है, जो उस साहस का जो बहुत बड़ा काम करने से पहले आता है।

चिट्ठी में उसने लिखा कि कल सुबह वह घर से निकल जाएगी। निकल जाएगी, यह शब्द उसने सोचकर लिखे, "भाग जाएगी" नहीं लिखा, "निकल जाएगी" लिखा, क्योंकि भागना और निकलना में वही फ़र्क है जो डर और फ़ैसले में, और मुनिया डरकर नहीं, फ़ैसला करके जा रही थी। और उसने लोटन को मैनपुरी स्टेशन पर मिलने के लिए लिखा।

फिर उसने रूपा को बुलवाया। मेहंदी लगवाने के बहाने। शादी से पहले मेहंदी लगती है, यह रिवाज है, और रिवाज का एक फ़ायदा यह कि उसमें बहाने छिपते हैं, और मुनिया ने रिवाज में बहाना छिपाया, रूपा को बुलवाया, और रूपा आई, वही रूपा, वही हंसी, वही दांत, पर आज हंसी नहीं, आज गंभीर, क्योंकि रूपा को पता था कि शादी से दो रात पहले बुलाना बस मेहंदी के लिए नहीं।

दोनों कमरे में थीं। दरवाज़ा बंद। बाहर शादी की तैयारी, औरतों की आवाज़, बर्तनों की खनक, बच्चों का शोर, और अंदर दो लड़कियां, एक दुल्हन जो परसों ब्याही जाएगी और एक दोस्त जो तरसों से अकेली रह जाएगी।

"किसी भी तरह आज ये चिट्ठी लोटन तक पहुंचा दो।"

मुनिया ने चिट्ठी रूपा की तरफ बढ़ाई, वही चिट्ठी जो अभी अभी लिखी, जिसकी स्याही अभी सूखी नहीं, जिस पर उंगलियों के निशान हैं, कांपते हुए, और उस चिट्ठी में वह सब है जो मुनिया ने कभी नहीं कहा और अब लिख दिया।

रूपा ने चिट्ठी देखी। एक मुड़ा हुआ काग़ज़। छोटा। और उसमें किसी की ज़िंदगी।

"इसमें क्या है?"

"चिट्ठी है।"

"हां, पर क्या है इसमें?"

"हमारे प्यार का इज़हार।"

यह "प्यार का इज़हार" मुनिया के मुंह से पहली बार निकला, पहली बार, इतने बरसों में, इतनी चुप्पियों के बाद, इतने दबाने के बाद, पहली बार वह शब्द ज़बान पर आया जो ज़मीन के नीचे गड़ा था, और आज बाहर आया, रूपा के सामने, उस कमरे में, शादी से दो रात पहले, और मुनिया ने कहा, सीधे, बिना झिझक के, बिना शर्म के, जैसे अब शर्म का वक़्त गुज़र गया, अब वह वक़्त है जब सच बोलना पड़ता है, चाहे सच कड़वा हो, चाहे मीठा।

"अब ज़्यादा तहक़ीक़ात न कर और चिट्ठी लोटन तक पहुंचा दे।"

मुनिया ने चिट्ठी रूपा के पल्लू में बांध दी, ऐसे बांधी जैसे कोई अपनी सबसे क़ीमती चीज़ किसी भरोसेमंद को दे, और पल्लू में बांधना वह तरीक़ा है जो औरतों का है, सदियों से, पल्लू में पैसे बांधती हैं, चाबी बांधती हैं, और आज मुनिया ने पल्लू में अपना दिल बांधा, वह दिल जो काग़ज़ पर लिखा, और रूपा के पल्लू में।

रूपा सन्न खड़ी थी। सन्न, ऐसे जैसे किसी ने थप्पड़ मारा हो, वह सन्न जो ख़बर सुनकर आता है, बड़ी ख़बर, भारी, जो सुनकर पैर जम जाएं। रूपा ने एक पल सोचा, वह पल जो छोटा था पर जिसमें बहुत कुछ, वह हिसाब जो रूपा का अपना

था, कि अगर पकड़ी गई तो, कि अगर किसी ने देख लिया तो, कि रामनगर की लड़कियां कैसे घरों में कैद हैं, कि बाहर निकलना मुश्किल, कि बालमपुर तक पहुंचना और मुश्किल, और लोटन तक चिट्ठी और भी मुश्किल।

"तुम्हें तो पता ही है कि रामनगर की लड़कियों को कैसे घरों में कैद कर दिया गया है। ऐसे में लोटन तक चिट्ठी पहुंचाना बहुत मुश्किल है।"

यह बात सच थी, हर शब्द सच, रामनगर की लड़कियां घरों में थीं, बंद, बापों के डर से, समाज के डर से, उस बदनामी के डर से जो पंडित रामअवतार मिसिर की ज़बान से शुरू हुई और कुबेर सिंह की नाराज़गी से बढ़ी, और उस कैद में बाहर निकलना ऐसा था जैसे दीवार तोड़ना, और दीवार तोड़ना गाँव की किसी एक लड़की के बस का नहीं।

"मुझे नहीं पता, पर तुम कुछ भी करो, पर ये चिट्ठी लोटन तक पहुंचा दो।"

मुनिया की आवाज़ में वह तड़प थी जो शब्दों से बड़ी, वह तड़प जो आंखों में दिखती है, गले में अटकती है, और हाथों में कांपती है, और मुनिया तड़प रही थी, ऐसे जैसे कोई डूब रहा हो और किसी का हाथ पकड़ रहा हो, और वह हाथ रूपा का था, बस रूपा का, और कोई नहीं, दुनिया में और कोई नहीं।

"ऐसा क्या है इस चिट्ठी में जो तू इतनी तड़पी जा रही है?"

"तुम नहीं समझोगी।"

रूपा ने कुछ नहीं कहा। वह समझती थी, शायद मुनिया से ज़्यादा। बाहर से देखने वाला कभी-कभी अंदर वाले से ज़्यादा देखता है।

"हम कोशिश करेंगे, पर पक्का नहीं कह सकते कि पहुंचा पाएंगे।"

यह "हम" सुनकर मुनिया को थोड़ी राहत मिली, "हम" का मतलब था कि रूपा अकेली नहीं, शायद शांति है, शायद कोई और, कोई न कोई रास्ता, और

"कोशिश" शब्द ही काफी था, कोशिश, वही शब्द जो पूरब का था, वही शब्द जो लोटन का, कोशिश कभी ख़त्म नहीं होती।

मुनिया ने फिर कहा, धीमे, बहुत धीमे।

उसकी आवाज़ में अब कंपन नहीं था। कंपन की जगह कुछ और आ गया था, कुछ गहरा, वह आवाज़ जो उस लड़की की होती है जिसकी रीढ़ होती है।

"आजकल हर दिन मुझे वह पतंग हमारी छत के आसपास नज़र आती है। ऐसा लगता है जैसे वह पतंग कुछ कहना चाहती है।"

पतंग।

वह पतंग जो लोटन ने उड़ाई थी। जो दर्जनों बार कटी, दर्जनों बार गिरी, दर्जनों बार अटकी पेड़ों में, बबूल में, नीम में, उस इमली में जो अब ख़ाली थी। पर एक बार पहुँची थी, मुनिया की छत तक। और मुनिया ने उसे देखा था, हर दिन, हर दोपहर, आसमान में तैरती हुई, कभी ऊँची, कभी नीची, पर आती ज़रूर, रोज़ आती, जैसे पहले लोटन आता था, डेढ़ कोस चलकर, लाठी खाकर भी, चप्पल खाकर भी। अब लोटन नहीं आ सकता तो पतंग आती है, और मुनिया ने उस पतंग में लोटन को देखा था, उसकी ज़िद को देखा था, उसकी उम्मीद को, उस "तो भी" को जो कभी नहीं मरता।

पर वह पतंग कभी मुनिया के हाथ नहीं आई।

एक बार पास के पेड़ में फँसी भी, पर मुनिया किसे कहती जो उसे उतार लाता। कुछ चीज़ें आती हैं, दिखती हैं, हाथ भर दूर होती हैं, और फिर भी हाथ नहीं आतीं।

इतना कहते-कहते मुनिया की आँखों के किनारे पर वह आ गया जो बहुत दिनों से रुका था। वह पानी जो बाँध के पीछे जमा था, परत दर परत, चुपचाप। आज बाँध नहीं टूटा, बस छलका, किनारे तक आया, बस किनारे तक। और मुनिया ने पोंछा नहीं, रुका रहने दिया, उस किनारे पर जो आँखों का होता है।

क्योंकि कुछ आँसू पोंछने के नहीं होते। रखने के होते हैं।

रूपा ने देखा। उसने वह आंसू देखे जो किनारे पर थे, और उसने वह सब देखा जो उन आंसुओं में था, सालों का, बरसों का, इमली के पेड़ का, रेडियो का, किशोर कुमार का, दुपट्टे का, और उस लड़के का जो अब प्रेम कुमार था और जो पतंग उड़ाता था क्योंकि और कोई रास्ता नहीं बचा।

रूपा ने चिट्ठी पल्लू में महसूस की, वह काग़ज़ जो मुड़ा हुआ, छोटा, हल्का, पर जिसमें किसी की पूरी ज़िंदगी, और रूपा ने फ़ैसला किया, उसी पल, बिना और सोचे, बिना और तौले, कि वह यह चिट्ठी पहुंचाएगी, हर हाल में, चाहे रामनगर की लड़कियां कैद में हों, चाहे बापों का पहरा हो, चाहे समाज की नज़र, चाहे कुछ भी, वह पहुंचाएगी, क्योंकि रूपा पुल थी, और पुल का काम पहुंचाना है, दो किनारों को जोड़ना, और आज रूपा को वह जोड़ना था जो सबसे ज़रूरी, दो लोगों को जो दो गांवों में, दो अंधेरों में, दो रातों में।

रूपा ने जाने से पहले मुनिया को गले लगाया। वह गले लगाना जो दोस्तों का होता है, वह गले लगाना जो कहता है कि मैं हूं, मैं यहां हूं, और जो भी हो, जो भी हुआ हो, मैं यहां हूं। और गले लगाते हुए रूपा ने बस इतना कहा, धीमे, मुनिया के कान में, वह कहना जो सिर्फ दो लोगों के बीच, जो दीवारें नहीं सुनतीं, हवा नहीं सुनती, बस कान सुनता है, कि वह हर हाल में यह चिट्ठी लोटन तक पहुंचा देगी, हर हाल में, चाहे कुछ भी हो, और "हर हाल में" वह वादा था जो कसम से बड़ा, जो शपथ से भारी, जो उस दोस्ती का था जो पुल की तरह, जो कभी नहीं गिरती, या गिरती है तो सबसे आख़िर में।

रूपा चली गई। बाहर। शादी के शोर में। औरतों की आवाज़ में। बच्चों की भागदौड़ में। और उसके पल्लू में वह चिट्ठी बंधी थी जो एक लड़की ने एक लड़के को लिखी, शादी से दो रात पहले, ढिबरी की रोशनी में, कांपती उंगलियों से, और उस चिट्ठी में वह सब था जो कभी नहीं कहा गया, और अब लिखा गया, और अब

एक दोस्त के पल्लू में बंधा, और रूपा चली, रात में, अंधेरे में, उस रामनगर में जहां लड़कियां कैद, जहां बापों का पहरा, जहां समाज की नज़र, और रूपा चली, बेख़ौफ़, या शायद ख़ौफ़ में पर चली, क्योंकि कुछ काम ऐसे होते हैं जो ख़ौफ़ में भी करने पड़ते हैं, और यह उनमें से एक था।

और उधर मुनिया अपने कमरे में रह गई, अकेली, खिड़की के पास, जहां अमरूद का पेड़ था और तोता नहीं आता, और बाहर शादी की जगमग, और भीतर अंधेरा, और उस अंधेरे में एक उम्मीद, कि चिट्ठी पहुंचेगी, कि लोटन पढ़ेगा, कि कल सुबह वह स्टेशन पर होगा, कि कल सुबह वह निकलेगी, चुपचाप, बिना किसी को बताए, बिना दरवाज़ा पटके, बिना चप्पल की आवाज़ किए, जैसे हवा चलती है, और वह निकलेगी, और लोटन होगा, और बस, इतना काफी, बस इतना, और इतने में पूरी ज़िंदगी।

मुनिया के घर में उस दिन सुबह से हलचल थी।

वह हलचल जो शादी की होती है, जिसकी एक ताल होती है, एक लय, जो सदियों से चली आती है और जिसे बदलने की ज़रूरत किसी को नहीं लगती। बर्तनों की खनक। औरतों की आवाज़ें, एक-दूसरे के ऊपर चढ़ती हुई। हल्दी की वह गंध जो हवा में घुलकर पूरे घर को बता देती है कि आज कुछ ख़ास है। मेहंदी जो किसी के हाथ पर लग रही थी और जिसकी महक यह बताती है कि एक लड़की इस घर से जाने को है।

सुरजी देवी दरवाज़े पर खड़ी थीं, पड़ोसन से बात कर रही थीं।

उनकी आवाज़ में वह संतोष था जो माँएँ तब महसूस करती हैं जब उन्हें लगता है कि कर्तव्य निभ गया, कि जो ज़िम्मेदारी थी वह पूरी हुई, कि अब जो भी हो वह उनके हाथ का नहीं। "दूल्हे के बाप ज़मीन वाले हैं। दूल्हे का भाई कानपुर में नौकरी करता है।" यह बताते हुए उनका चेहरा ऐसा था जैसे कोई ज़मीन का भाव बता रहा हो, न ज़्यादा, न कम, बस जो सच था वह।

पर उस संतोष के नीचे कुछ और था।

वह कुछ जो सुरजी देवी कभी ज़बान पर नहीं लातीं, जो उन्होंने कभी किसी से नहीं कहा, न हरिप्रसाद से, न पड़ोसन से, न अपनी नींद में भी। कुबेर सिंह। इमली का पेड़। लोटन। वह सब जो इस शादी के पीछे था, जैसे पुरानी दीवार की दरार होती है जो नई पुताई में छिप जाती है। दीवार वही रहती है, दरार वही रहती है, बस दिखती नहीं।

यही संतोष था। यही थकान थी। दोनों एक साथ।

उधर बालमपुर में, उसी सुबह, एक और विदाई हो रही थी।

बब्बन भैया का सामान बंध रहा था। लोटन मदद कर रहा था, वही लोटन जो सबसे पहले बब्बन भैया के आंगन में आया, जो सबसे ज़्यादा बैठा, जो रेडियो के सबसे करीब रहा, वह आज सामान बांध रहा था, रस्सी कस रहा था, गठरी उठा रहा था, और हर गठरी के साथ कुछ जा रहा था, वह कुछ जो लोटन का अपना, बब्बन भैया का आंगन, नीम का पेड़, वह चारपाई जिस पर बच्चे नहीं बैठते, वह नियम, वह शाम, वह सब।

"भैया, एक आख़िरी बार गाना चला दो।"

यह "आख़िरी बार" सुनकर बब्बन भैया पलटे, लोटन की तरफ देखा, और उनकी आंखों में कुछ हुआ, वह कुछ जो बब्बन भैया कभी नहीं दिखाते, वह नरमी जो उनके भीतर थी पर बाहर कम आती, और उन्होंने इशारे से कहा, चला लो, बस इशारा, बिना शब्द, क्योंकि शब्द भारी हो जाते कभी कभी, और इशारा हल्का।

लोटन ने रेडियो चालू किया। आख़िरी बार। इस आंगन में, इस नीम के नीचे, इस चारपाई के पास। डायल घुमाया, वही खड़खड़ाहट, वही तलाश, और एक आवाज़ मिली, कोई गाना, पुराना, किशोर कुमार नहीं, कोई और, पर आवाज़ थी, और आवाज़ का होना काफी, आख़िरी बार के लिए काफी।

सावित्री भीतर बच्चों को कपड़े पहना रही थी, वे दो बच्चे जो अभी इतने छोटे कि उन्हें पता नहीं कि जा रहे हैं, कि यह घर अब उनका नहीं, कि यह आंगन, यह नीम, यह दरवाज़ा, सब छूट रहा, बच्चों को क्या पता, बच्चे वहां ख़ुश जहां मां हो, और मां साथ है तो जगह कोई भी। नीम के पेड़ पर एक चिड़िया अपना घोंसला बना रही थी, तिनका तिनका, धीरे धीरे, और बब्बन भैया की नज़र उस घोंसले पर गई, एक पल के लिए, और उस पल में वह सब था जो बब्बन भैया ने नहीं कहा, कि चिड़िया बना रही है और मैं छोड़ रहा, चिड़िया आ रही है और मैं जा रहा, और यह उलटा होना ज़िंदगी की विडंबना है जिसे कोई नहीं समझा सकता।

बब्बन भैया ने अपनी अटैची साइकिल पर बांधी, पीछे, रस्सी से, कसकर, और आगे वाले हिस्से पर गमछा लपेटा, ताकि बच्चे बैठ सकें, दोनों बच्चे, एक इधर एक उधर, और यह गमछा लपेटना उस गरीबी की तस्वीर थी जो बालमपुर की थी, कि बच्चों को बैठाने के लिए गद्दी नहीं, बस गमछा, और गमछे पर बच्चे, और बच्चों के नीचे साइकिल, और साइकिल के पीछे अटैची, और अटैची में पूरी ज़िंदगी, और यह सब एक साइकिल पर, एक आदमी के कंधों पर, यही गरीबी है, सब कुछ एक जगह, सब कुछ एक पर।

गांव से मैनपुरी जाने वाली सड़क पांच कोस दूर थी। बब्बन भैया गांव छोड़कर नहीं जाना चाहते थे, यह बात सच थी, कोई अपना गांव छोड़कर नहीं जाना चाहता, गांव वह जगह है जहां पैदा हुए, जहां बड़े हुए, जहां नीम का पेड़ है और चिड़िया घोंसला बनाती है, कौन छोड़ना चाहे, पर उनके पास कमाई का कोई और साधन नहीं, मलहम नहीं बिकता, बसों में कोई चढ़ने नहीं देता, और गांवों में जिनके पास ज़मीन नहीं वे खेत की मज़दूरी से बस ज़िंदा रह सकते हैं, बस ज़िंदा, उससे ज़्यादा कुछ नहीं, क्योंकि गांव के ज़मींदार मज़दूर को उतना ही देते जितने में वह बस ज़िंदा रहे, मरे नहीं, पर जिए भी नहीं, बस ज़िंदा, और यह "बस ज़िंदा" वह शब्द है जो गांवों की अर्थव्यवस्था का सबसे सच्चा वर्णन, जो किसी किताब में नहीं लिखा पर जो हर खेत में लिखा था, हर पसीने में, हर टूटी कमर में।

बब्बन भैया ने रेडियो बंद किया। वह आख़िरी गाना बजकर ख़त्म हो गया, या शायद ख़त्म नहीं हुआ, शायद बीच में बंद किया, कौन जाने, पर बंद किया, और बंद करते हुए उनके हाथ ने वह काम किया जो सालों से करता आया, डायल घुमाया, आवाज़ कम की, और बंद, वही क्रम, वही ताल, पर आज आख़िरी बार, और आख़िरी बार का करना रोज़ के करने से अलग, उसमें एक भारीपन, एक ठहराव, जैसे कोई अपने बच्चे को आख़िरी बार गोद से उतारे। रेडियो को कपड़े में लपेटा, सामान के साथ बांधा, और ताला चाबी लेकर घर की डेहरी से बाहर आए।

लोटन और पूरब भी साथ निकले, बब्बन भैया को सड़क तक छोड़ने, वह छोड़ना जो गांवों में होता है, जब कोई जाता है तो लोग सड़क तक जाते, कुछ और आगे, कुछ और, और फिर रुक जाते, और जाने वाला चलता रहता, और रुकने वाले देखते रहते, जब तक दिखे, जब तक आंख पहुंचे, और फिर लौट आते, और लौटने में वह सन्नाटा जो जाने वाले का होता है।

और शायद उसी सुबह, लगभग उसी वक़्त, रामनगर में रूपा भी घर से निकली।

शांति ने खबर दी थी। वही शांति जो रूपा की ममेरी बहन थी, वही कड़ी जो इन दोनों के बीच कभी नहीं टूटी। शांति ने बताया कि बब्बन भैया आज गाँव छोड़कर जा रहे हैं, और लोटन पक्का उन्हें सड़क तक छोड़ने जाएगा, और अगर चिट्ठी पहुँचानी है तो आज मौक़ा है। बस आज। कल नहीं। कल बहुत देर हो जाएगी।

रूपा ने पल्लू में हाथ डाला।

चिट्ठी वहीं थी, रात से बंधी हुई, उस पल से जब मुनिया ने थमाई थी और रूपा ने वादा किया था, हर हाल में। हर हाल में का मतलब हर हाल में। चाहे पहरा हो, चाहे कैद, चाहे बाप आँखें तरेरें, चाहे गाँव नज़र रखे। रूपा ने वह काग़ज़ एक बार महसूस किया, उँगलियों से, जैसे यह देखना हो कि अभी भी है, फिर घर से निकल गई।

तिराहे पर आई।

वह जगह जहाँ तीन रास्ते मिलते थे, रामनगर से आता एक, बालमपुर की तरफ़ जाता दूसरा, और तीसरा सीधे मैनपुरी। इन तीनों के बीच की वह जगह जो किसी भी गाँव की नहीं थी, तीनों के बीच, थोड़ी-थोड़ी सबकी और पूरी किसी की नहीं। उस खुली जगह पर रूपा खड़ी हो गई।

इंतज़ार शुरू हुआ।

वह इंतज़ार जो उन लोगों का होता है जो किसी और का काम पूरा करने के लिए खड़े हैं, अपना कोई नहीं, बस यह कि एक वादा था और वादा निभाना है। रूपा खड़ी रही। हवा चलती रही। बैरागी की दुकान से चाय के उबलने की आवाज़ आती रही। कोई ट्रेक्टर गुज़री, एक आदमी साइकिल पर गया, दो बच्चे भागते हुए निकले, पर लोटन नहीं आया।

रूपा खड़ी रही।

कुछ देर बाद रूपा को बालमपुर की तरफ से लोटन दिखा, तिराहे की तरफ आता हुआ, और उसके साथ पूरब, और उनसे थोड़ा आगे बब्बन भैया, साइकिल पर, बच्चे आगे गमछे पर, सावित्री पीछे पैदल, अटैची साइकिल पर बंधी, और यह तस्वीर एक पूरे परिवार की विस्थापन की तस्वीर थी, वह तस्वीर जो गांवों में रोज़ बनती है जब कोई जाता है, रोज़गार की तलाश में, शहर की तरफ, और पीछे गांव छूटता है, और गांव में वह सब जो अपना।

रूपा ने सड़क छोड़ी, खेत की तरफ मुड़ी, वह मोड़ जो चतुराई का था, कि कोई न देखें कि रामनगर की लड़की यहां क्या कर रही है, और खेत से होती हुई सीधी जाने वाली सड़क पर पहुंची, मैनपुरी वाली, और वहां खड़ी हो गई, इंतज़ार में, कि लोटन और पूरब जब इस सड़क पर मुड़ें तो वह सामने हो। और फिर सिर का दुपट्टा हटा दिया, ताकि पहचान हो, ताकि दूर से दिखे कि यह कोई अनजान नहीं,

यह रूपा है, मुनिया की दोस्त, वही रूपा जिसके दांत बाहर की तरफ, जिसकी हंसी सबसे बड़ी, जिसकी वफ़ादारी सबसे पक्की।

पूरब ने पहचान लिया। दूर से। उसकी आंखें तेज़ थीं, वह आंखें जो हमेशा देखतीं, हर जगह, हर चीज़, और उसने पहचाना कि यह रूपा है, और पहचानते ही उसके चेहरे पर वह ख़ुशी आई जो बहुत दिनों से नहीं, वह ख़ुशी जो तब आती है जब कोई उम्मीद ज़िंदा हो, कोई कड़ी जुड़े, कोई रास्ता खुले। पूरब ख़ुशी से पागल, वह पागलपन जो दोस्तों का है जब दोस्त की बात बने।

और लोटन? लोटन सुन्न पड़ गया। वही सुन्न जो हमेशा पड़ता, वही सुन्न जो मुनिया को देखकर, पर आज मुनिया नहीं, रूपा, पर रूपा में मुनिया थी, रूपा के आने में मुनिया का संदेश, रूपा के खड़े होने में मुनिया की मौजूदगी, और लोटन ने रूपा को देखा तो उसे लगा कि मुनिया खड़ी है, जैसे रूपा के अवतार में मुनिया आ गई, वह मुनिया जो रामनगर में है पर जो यहां भी है, रूपा में, रूपा के हाथ में, रूपा के पल्लू में जहां चिट्ठी बंधी।

रूपा ने आवाज़ दी। सिर्फ लोटन को। पूरब को नहीं, बब्बन भैया को नहीं, सावित्री को नहीं, बच्चों को नहीं, सिर्फ लोटन को, क्योंकि यह बात सिर्फ लोटन की थी, और सिर्फ मुनिया की, और रूपा बीच में थी, वह पुल जो दो किनारों को जोड़ता। बब्बन भैया, सावित्री, पूरब, बच्चे, सब खड़े देखते रहे, वह देखना जो समझने का, जानने का, और बिना कुछ कहे जानना कि कुछ हो रहा है जो बड़ा है, ज़रूरी है, और जिसमें बोलना नहीं, चुप रहना ठीक है।

रूपा ने लोटन को चिट्ठी दे दी, वह काग़ज़ जो पल्लू से खोला, जो मुड़ा हुआ, छोटा, हल्का, जिसमें स्याही अभी सूखी नहीं, जिस पर कांपती उंगलियों के निशान, और लोटन ने वह चिट्ठी ली, दोनों हाथों से, ऐसे जैसे कोई प्रसाद ले, और रूपा चली गई, वापस, उसी खेत से, उसी रास्ते से, जैसे आई थी, बिना पीछे मुड़े,

क्योंकि रूपा का काम हो गया, पुल ने दो किनारे जोड़ दिए, अब आगे का काम किनारों का।

कुछ देर बाद सब मैनपुरी जाने वाली सड़क पर पहुंचे। बस आई, वही बस जो रोज़ आती, धूल उड़ाती, खड़खड़ाती, और बब्बन भैया ने साइकिल छत पर लदवाई, सामान भी, और बच्चों को उठाया, एक एक करके, सावित्री चढ़ी, और बब्बन भैया दरवाज़े पर खड़े हुए, एक पल, उस पल में उन्होंने बालमपुर की तरफ देखा, वह गांव जो अब छूट रहा, जो अब दूर जाएगा, और दूर जाकर याद बन जाएगा, और याद में जो गांव होता है वह असली गांव से ज़्यादा सुंदर, ज़्यादा अच्छा, क्योंकि याद में वह सब छूट जाता है जो बुरा था और वह बचता है जो अच्छा, यही याद का कमाल।

बब्बन भैया की आंखों में आंसू थे। वही बब्बन भैया जो कम बोलते, जो भीतर का बाहर नहीं आने देते, उनकी आंखों में पानी, और उस पानी में वह सब जो जाने वाले की आंखों में होता है, गांव, नीम, चारपाई, रेडियो, लोटन, वह लड़का जो उनके आंगन में बैठता था और किशोर कुमार सुनता, वह लड़का जो अब अकेला रहेगा, बिना रेडियो के, बिना किशोर कुमार की आवाज़ के, और यह सोचकर बब्बन भैया की आंखें और भरीं।

और लोटन? लोटन चुप था। उसके हाथ में चिट्ठी थी, मुनिया की, और उसकी जेब में वह मलहम जो किसी दर्द में काम नहीं करता, और उसकी आंखों के सामने बस जा रही थी, बब्बन भैया की बस, रेडियो की बस, किशोर कुमार की बस, और लोटन देखता रहा, उस बस को, जब तक दिखी, जब तक आंख पहुंची, और बस छोटी होती गई, छोटी, और छोटी, और फिर क्षितिज में कहीं गुम, और लोटन देखता रहा उस जगह को जहां बस थी और अब नहीं, जैसे देखने से वह लौट आएगी, पर नहीं लौटी।

पूरब ने बहुत पूछा, "क्या लिखा है चिट्ठी में, क्या कहा रूपा ने, क्या होगा अब," पर लोटन ने कुछ नहीं कहा, या शायद कहा, धीमे, बहुत धीमे, इतना धीमे कि पूरब को सुनाई नहीं दिया, और जो सुनाई नहीं दिया वह शायद सबसे ज़रूरी था, पर पूरब ने फिर नहीं पूछा, क्योंकि पूरब जानता था कि कुछ बातें एक बार में सुनाई नहीं देतीं, बाद में सुनाई देती हैं, और बाद में का इंतज़ार करना पड़ता है।

घर जाने से पहले दोनों तिराहे पर रुके।

लोटन ने रामनगर की तरफ़ देखा, उस सड़क की तरफ़ जो दाहिने मुड़ती थी और जिसके आख़िर में मुनिया थी। फिर दोनों बालमपुर की तरफ़ मुड़ गए।

वह पहली शाम थी जब लोटन के पास न रेडियो था, न किशोर कुमार की आवाज़। और उस आवाज़ के बिना उसे पहली बार पता चला कि वह आवाज़ उसके लिए सिर्फ़ गाना नहीं थी, वह एक दरवाज़ा था, एक ऐसी दुनिया का दरवाज़ा जो सिर्फ़ उसकी थी, जहाँ कोई उसे स्कूल से नहीं निकालता था, कोई उसके बाप की बेइज़्ज़ती नहीं करता था, कोई उसे मुनिया से मिलने से नहीं रोकता था। उस दुनिया में वह जैसा चाहता वैसा था, जो चाहता पहनता, जहाँ चाहता जाता। हर गाने के बोल में वह होता, कभी नाचता, कभी गाता, कभी बस होता, जो होना काफ़ी था।

पर आज वह दरवाज़ा बंद हो गया था।

बब्बन भैया के जाने के साथ कुछ और भी गया था, वह कल्पना जो उसकी अपनी थी, जो उसने अपने हाथों से बनाई थी गानों की ईंटों से, चुप्पी के गारे से। शाम की हवा में नमी नहीं थी। हवा थी, पर बेजान थी, जैसे साँस ले रही हो पर जी नहीं रही।

उस रात बालमपुर और रामनगर में कई आँखों को नींद नसीब नहीं हुई।

मुनिया कल की सुबह सोच रही थी, वह सुबह जब वह निकलेगी, चुपचाप, अंधेरे में, और वह सड़क जो मैनपुरी जाती, और वह स्टेशन, और वह बेंच, और लोटन, शायद, शायद नहीं, पर शायद। न लोटन सोया, अपनी खाट पर, छत देखते हुए, छिपकली उसी कोने में, और चिट्ठी जो तकिए के नीचे, और उसके भीतर वह तड़प जो मुनिया की, वही, वही। न रूपा सोई, उसके पल्लू में अब चिट्ठी नहीं, पर उसकी याद, उन शब्दों की, और वह सवाल कि पहुंचेगी चिट्ठी या नहीं, पहुंच गई, और अब क्या होगा, यह सवाल। न पूरब सोया, उसे अभी भी पूरा पता नहीं कि चिट्ठी में क्या, पर इतना पता कि कुछ बड़ा होने वाला, कुछ ऐसा जो सब बदल दे, और इस "बदल दे" में वह उम्मीद जो पूरब की हमेशा की, कि कुछ होगा, ज़रूर होगा।

चार लोग, चार जगह, चार रातें, और एक ही जागना।

दो सुबहें, दो रास्ते

रामनगर में रात का सबसे गहरा हिस्सा वह होता था जब कुत्ते भी थक कर चुप हो जाते थे। दिन भर भौंकते, रात के पहले पहर तक भी आवाज़ें निकालते, पर फिर एक वक़्त आता जब वे भी मान लेते कि अब फ़ायदा नहीं। वह वक़्त वही होता जब अँधेरा अपने आप में सबसे मोटा हो जाता, हवा बिल्कुल नहीं चलती, और दुनिया ऐसी लगती जैसे उसने एक बड़ी साँस खींची हो और अभी छोड़ी न हो।

ऐसे ही वक़्त में हरिप्रसाद ओझा के मकान की खपरैल पर ओस जमा हो रही थी, धीरे-धीरे, बिना किसी आवाज़ के।

मुनिया की आँखें उस रात खुली ही नहीं थीं। या शायद बंद हुई ही नहीं थीं। वह पलंग पर लेटी थी, माँ के बग़ल में, और माँ की साँसों की आवाज़ सुनती रही। पर सुरजी देवी की साँसें उस रात बहुत क़रीने से नियंत्रित थीं। बहुत ज़्यादा। इतनी कि मुनिया को कुछ देर बाद समझ आ गया कि माँ जाग रही है।

माँ ने कुछ नहीं कहा। मुनिया ने भी कुछ नहीं कहा। दोनों चुप लेटी रहीं, अँधेरे में, एक-दूसरे की करवट की आवाज़ पर ध्यान देते हुए।

जब मुनिया उठी तो बहुत सोच-समझकर उठी। पहले पाँव नीचे रखा, धीरे से, पत्थर के फ़र्श पर, जो ठंडा था, उस ठंड से जो मार्च के आख़िर में भी रातों को नहीं जाती। फिर उठी, पलंग से उठने की आवाज़ नहीं आई क्योंकि उसे उस चारपाई

की बुनावट मालूम थी। कहाँ दबाने से आवाज़ आती है और कहाँ नहीं। यह उसने जानबूझकर नहीं सीखा था, बस घर में सालों रहते-रहते पता चल गया था।

उसने कुर्ता ठीक किया। नीली, किनारे पर पीली बेल, वह सलवार कमीज जो उसकी थी, सिर्फ़ उसकी।

सुरजी देवी ने साँस ली। एक लंबी साँस। मुनिया के पाँव एक पल रुके। फिर आगे बढ़े।

दरवाज़े की चटकनी उसने दोनों हाथों से पकड़ी, एक ऊपर, एक नीचे, और इतने धीरे खींची कि लगा जैसे वह कोई काम नहीं, कोई इबादत कर रही है, वह इबादत जो बंद दरवाज़ों के लिए की जाती है, चुपचाप, बिना किसी को बताए। दरवाज़ा खुला, पाँव बाहर गया, और दरवाज़ा उतनी ही सावधानी से बंद हो गया जितनी सावधानी से खुला था। चप्पल घर के भीतर ही छूट गई थी, क्योंकि चप्पल की आवाज़ होती है और आवाज़ से घर जागता है, और घर का जागना उस सुबह मुनिया को मंजूर नहीं था। पायल पहले ही उतर चुकी थी, चूड़ियाँ भी, क्योंकि जब कोई चुपके निकलता है तो पहले वह सब उतारता है जो उसकी पहचान कराता है। और फिर मुनिया उस गली में थी जो उस वक़्त एकदम वीरान थी, जहाँ सिर्फ़ कुत्तों को पता था कि कोई निकला है।

मोड़ पर पहुँचकर उसने एक बार पीछे मुड़कर देखा।

मकान वहीं था, बंद दरवाज़े के साथ। और उस खिड़की के साथ जिसके परदे के पीछे एक छाया थी, वह छाया जो हिली नहीं, जो बस थी, परदे के पीछे, देखती हुई या न देखती हुई, यह मुनिया को नहीं पता था, और शायद नहीं जानना ही ठीक था।

वह आगे बढ़ गई।

हरिप्रसाद ओझा खड़े थे खिड़की पर।

परदा थोड़ा सरका हुआ था। इतना कि एक आँख बाहर देख सके, पर बाहर से कोई अंदर न देख पाए। उनकी उस एक आँख ने मुनिया की पीठ देखी, वह पीठ जो उनसे दूर जा रही थी, हर क़दम के साथ छोटी होती। वह नीला सूट अँधेरे में नीला नहीं दिख रहा था, काला दिख रहा था। पर उसका पीला किनारा दिख रहा था। अँधेरे में भी। कुछ चीज़ें ऐसी होती हैं जो रोशनी अपने साथ लेकर चलती हैं।

उनका हाथ उठा।

बस उठा। ऐसे उठा जैसे हाथ ने अपने आप फ़ैसला किया हो, बिना दिमाग़ से पूछे। हाथ उठा, हवा में रुका, और वहीं रह गया। उस खाई में बहुत कुछ था जो हाथ को आगे नहीं जाने दे रही थी। उसमें बाप होना था, इज़्ज़त थी, गाँव था, बिरादरी थी, वह लड़का था जो इटावा से आने वाला था, वह शादी जो कल होने वाली थी।

फिर हाथ वापस आ गया। जैसे कभी उठा ही नहीं था।

मुनिया मोड़ पर से ग़ायब हो गई। वह पीला किनारा भी। अब बाहर सिर्फ़ अँधेरा था।

हरिप्रसाद को नहीं मालूम था कि जो उन्होंने किया, या जो नहीं किया, वह कायरता थी या समझदारी। और यह सवाल उन्हें रात भर जगाए रहा, आता रहा, जाता रहा, फिर आता रहा।

वे पलंग पर लौट गए। छत की तरफ़ देखा। दो दिन पहले शादी के लिए ताज़ी सफ़ेदी करवाई गई थी। ताज़ी सफ़ेदी। पर जगह-जगह उखड़ रही थी, जैसे नई सफ़ेदी के नीचे पुरानी दीवार अपना असली चेहरा दिखा रही हो। जो पुराना है वह नए से नहीं छिपता, बस कुछ दिन दिखता नहीं।

भोर हो गई और जवाब नहीं मिला।

और शायद यह इसलिए था क्योंकि यह सवाल उन सवालों में से था जिनके जवाब ऐसी जगह होते हैं जहाँ आदमी की नज़र नहीं पहुँचती। सच को देखने के लिए वह हिम्मत चाहिए थी जो उस रात हरिप्रसाद के पास नहीं थी, न खिड़की पर, न पलंग पर। वह हिम्मत मुनिया के पास थी, जो अँधेरे में निकल गई। या शायद लोटन के पास, जो डेढ़ कोस रोज़ चलता था, बाप की लाठी खाकर भी। पर हरिप्रसाद के पास नहीं थी। और इसी बात ने उन्हें सबसे ज़्यादा तोड़ा। यह नहीं कि बेटी चली गई, बल्कि यह कि बेटी में वह हिम्मत थी जो बाप में नहीं।

उस भोर में जब मुनिया रामनगर की गलियों से निकल रही थी, रामअवतार मिसिर जी की घरवाली कुएँ पर थीं। उन्होंने मुनिया को देखा। एक पल रुकीं। मुनिया ने उन्हें देखा। मिसर जी की घरवाली ने कुछ नहीं कहा, मुनिया ने भी नहीं। मुनिया आगे बढ़ गई। मिसर जी की घरवाली उस दिशा में देखती रहीं जिधर मुनिया गई थी, फिर घिर्री ज़ोर-ज़ोर से घुमाने लगीं, जैसे ज़ोर से घिर्री घुमाने से जो उन्होंने देखा वह भूल जाए। पर नहीं भूला। शाम को यह उन्होंने अपने पति को बताया, थोड़ा रोककर, थोड़ा बढ़ाकर।

मुनिया का रास्ता मैनपुरी की तरफ़ जाता था। आधा कच्चा था और कच्चे हिस्से में पत्थर रात की ओस से गीले थे। उसके पाँव डगमगाए नहीं क्योंकि वह रास्ता उसे मालूम था। बचपन में माँ के हाथ थामकर मेले गई थी इसी से। वही रास्ता अब उसके पाँवों के नीचे था, अकेला। आसमान का एक कोना हल्का हुआ था, बस थोड़ा, जैसे किसी ने वहाँ दिया जलाया हो।

उसने दुपट्टा ठीक किया जो हवा में उड़ने लगा था। हाथ में एक छोटी-सी पोटली थी।

उसी वक़्त, बालमपुर के दूसरे छोर पर, लोटन उठ रहा था।

रात भर सोया नहीं था। चूल्हे की आवाज़ आई, माचिस की तीली की, और उसके बाद कंडे जलने की वह ख़ुशबू जो उसके घर की ख़ुशबू थी, बचपन से। फूलमती ने एक बार पुकारा, "लोटन।" आवाज़ में कोई अलग भाव नहीं था।

"आया माँ।"

रसोई में फूलमती ने उसे देखा। उन्होंने एक नज़र में देख लिया था कि लोटन ने आज धोती कुछ ढंग से बाँधी है, कि उसके बाल थोड़े ठीक हैं, कि उसकी आँखों में कोई चीज़ है जो रोज़ की आँखों में नहीं होती। माँएँ यह सब देख लेती हैं, बिना पूछे। उन्होंने चूल्हे पर नज़र रखते हुए कहा, "रोटी खाकर जाना।"

"हाँ माँ।"

"जल्दी मत करना।"

यह वाक्य थोड़ा अजीब था। जल्दी मत करना। लोटन ने पूछा नहीं। रोटी खाई, गुड़ के साथ। वह रोटी जो फूलमती ने मोटी बेली थी, क्योंकि उन्हें पता था कि उनके हाथ से पतली नहीं बनती और पतली बनाने की कोशिश में और मोटी हो जाती है। उस मोटी रोटी में एक अजीब संतोष था।

रानी सो रही थी, या नहीं। रानी की आदत थी कि वह कभी-कभी बहुत देर तक आँखें बंद रखती पर भीतर से जाग रही होती, सुन रही होती। आज उसने वह सब सुना जो कहा गया और वह भी जो नहीं कहा गया। माँ की आवाज़ में जो थरथराहट थी, जो किसी और ने शायद नहीं सुनी, वह उसने सुनी। लोटन के जाने की आहट सुनी। आँखें नहीं खोलीं।

लोटन निकला। बगैर चप्पल के, चप्पल की एक पट्टी टूट गई थी।

गली में आया।

और रामखेलावन की साइकिल उठा ली, जो उसने इससे पहले कभी छुई नहीं थी।

सूरज उग रहा था। लोटन ने एक बार ऊपर देखा और सोचा कि शायद सूरज को पता है, वह ऊपर से सब देखता है। पूरब ने बाद में कहा, "सूरज को कुछ नहीं पता, सूरज बस उगता है।" लोटन ने कहा, "नहीं, उसे सब पता होता है।" यह बहस किसी नतीजे पर नहीं पहुँची, जैसे उनकी ज़्यादातर बहसें नहीं पहुँचती थीं।

मुनिया और लोटन उसी सुबह उसी दिशा में चल रहे थे। मैनपुरी की तरफ़। एक रामनगर की तरफ़ से, एक बालमपुर की तरफ़ से। दोनों को नहीं पता था कि दूसरा भी चल रहा है।

मुनिया के दिमाग़ में बहुत शोर था। वह सोचती जा रही थी, हिसाब लगाती जा रही थी। क्या हो सकता है, क्या नहीं। और उन सब हिसाबों के बीच एक धड़कन थी जो हिसाब से परे थी, जिसे उसने कोई नाम नहीं दिया क्योंकि नाम देने से चीज़ें असल हो जाती हैं और जो असल हो जाए उसके टूटने का दर्द भी असल हो जाता है। उसके पाँव ज़मीन पर पड़ते रहे। एक के बाद एक।

उसी वक़्त बालमपुर की सड़क पर लोटन साइकिल के पैडल तेज़ी से मार रहा था। आज वह कम सोच रहा था, बस चल रहा था, और यह उसके लिए अच्छा था, क्योंकि ज़्यादा सोचने पर वह हमेशा रुक जाता था।

रास्ते में पूरब मिला।

पूरब को हमेशा किसी न किसी रास्ते पर मिला जा सकता था। घर में बैठना उसे पसंद नहीं था। उसका कहना था कि घर में बैठने से आदमी को जंग लग जाती है।

"बिना बताए जा रहे हो?"

"हाँ। आगे का रास्ता अकेले ही तय करना होगा।"

पूरब ने एक पल देखा। फिर साथ हो लिया। जैसे इनविटेशन था, जैसे पूछना ज़रूरी नहीं था।

"वैसे तुम्हारे जाने के बाद किसी और से दोस्ती नहीं करेंगे हम।"

"क्यों?" लोटन ने साइकिल धीमी की।

"दोस्ती निभाने में अगर दोस्त ही चला जाए तो फिर उस निभाने में इतनी मेहनत क्यों।"

"स्वार्थी।"

"अच्छा! जा तुम रहे हो और स्वार्थी हम हैं। वाह।"

लोटन ने पैडल और तेज़ कर दिए। रास्ते में जो गाड़ी मिली उसे पीछे से पकड़ लिया ताकि रफ़्तार बढ़ जाए।

मैनपुरी पहुँचते ही वह एक सरकारी प्राइमरी स्कूल की तरफ़ मुड़ा।

पूरब ने पूछा, "हमें लगा तुम स्टेशन जा रहे हो।"

लोटन ने अगला पैडल झटके के साथ मारा। "हां स्टेशन ही जा रहे है पर रेलवे नहीं, रेडियो स्टेशन।"

पूरब ने कुछ नहीं कहा। शायद वह समझा नहीं। पर साथ हो लिया।

लोटन कई दिनों से बब्बन भैया के रेडियो पर एक प्रचार सुनता आया था। सरकार रेडियो और कम्बल बाँट रही है।

मैनपुरी के स्कूल के मैदान में एक सरकारी हरे रंग का तंबू लगा था। उसके बाहर एक मेज़, मेज़ पर तिवारी जी। तिवारी जी का चेहरा वह चेहरा था जिस पर उम्र ने अपना काम बहुत मेहनत से किया था। झुर्रियाँ, थकान, और वह भाव जो किसी ऐसे आदमी के चेहरे पर होता है जो लंबे समय से ऐसा काम करता आया हो जिसमें वह ख़ुद विश्वास नहीं करता। उनका चश्मा खरोंचा हुआ था, एक तरफ़ से टेढ़ा, और उसे वे बार-बार नाक पर ऊपर धकेलते थे।

"नाम?"

"लोटन।"

"पूरा नाम?"

"लोटन... प्रेम कुमार।"

पूरब ने एक तरफ़ को देखा।

"उम्र?"

"सत्तरह।"

तिवारी जी ने काग़ज़ पर लिखा। उन्होंने क्या लिखा यह लोटन को उस वक़्त नहीं पता था। बाद में पता चला कि बाईस लिखा था। वह फ़र्क़, पाँच साल का, तिवारी जी के लिए उतना ही मामूली था जितना तराज़ू में दो ग्राम इधर-उधर।

"भीतर जाओ।"

पर्दा हरे रंग का था, वही जो तंबू का। भीतर का कमरा छोटा था। एक मेज़, दो कुर्सियाँ। दीवार पर एक कैलेंडर जिसमें एक परिवार मुस्कुरा रहा था, माँ, बाप, एक बच्चा, वह मुस्कुराहट जो सिर्फ़ सरकारी पोस्टरों में होती है, जो असल नहीं लगती पर असल लगाने की कोशिश की गई हो। सफ़ेद कोट में डॉ. रमेश वर्मा थे। उनका कोट एकदम साफ़, उन पर एक भी दाग़ नहीं। उनके हाथ काँपते नहीं थे। जितना कम वक़्त लगे उतना कम सोचना पड़े, यह उनका सिद्धांत था।

और उधर, मैनपुरी स्टेशन पर, मुनिया दोपहर से पहले ही पहुँच चुकी थी।

स्टेशन उस वक़्त लगभग ख़ाली था। एक कुली ऊँघ रहा था अपनी ट्रॉली पर, एक चाय वाला बर्तन धो रहा था। मुनिया प्लेटफ़ॉर्म दो की उस बेंच पर बैठी थी जिस पर जगह-जगह नाम खुदे थे, अजनबियों के, जो कभी यहाँ बैठे, इंतज़ार किया, और चले गए। वह उसी बेंच पर बैठ गई, पोटली गोद में।

गाड़ियाँ आईं और गईं। एक ट्रेन आई, रुकी, लोग उतरे, लोग चढ़े, चली गई। हर चेहरे में मुनिया ने एक ही चेहरा ढूंढा। वह नहीं था।

मूँगफली बेचने वाली एक बुज़ुर्ग औरत थी, गोल चेहरा, सफ़ेद साड़ी, थोड़ी झुकी कमर। उसने मुनिया को देखा और पूछा, "बिटिया, मूँगफली लेगी?"

"नहीं।"

थोड़ी देर बाद फिर आई। "बिटिया, ठीक है न?"

"हाँ।"

तीसरी बार आई, कुछ पूछा नहीं, बस एक नज़र देखा और चली गई। तीसरी बार के बाद वह हार मान लेती है, यह उस बुज़ुर्ग औरत की समझदारी थी।

दोपहर हुई। मुनिया ने पोटली से रोटी निकाली। दो रोटी, गुड़ के साथ। माँ ने रखी थी। यह सोचकर उसने एक पल रुककर पोटली को देखा। माँ ने रखी थी। यानी माँ को पता था। और फिर भी माँ ने रोका नहीं।

यह क्या था।

उसने रोटी खाई।

शाम को चाय वाले से एक चाय ली। दो पैसे। चाय गरम थी। एक घूँट पिया। फिर बेंच पर बैठ गई और कुल्हड़ हाथ में पकड़े रही, तब तक जब तक चाय ठंडी नहीं हो गई। ठंडी चाय नहीं पी, पर कुल्हड़ छोड़ा नहीं।

स्टेशन की शाम आई। गाँव में शाम धीरे आती है, एक-एक करके चीज़ें बदलती हैं। स्टेशन पर शाम झटके से आती है। बिजली के बल्ब जल गए, पीली रोशनी, और बल्बों के आसपास कीड़े उड़ने लगे, जैसे रोशनी ने उन्हें बुलाया हो।

मुनिया ने बल्ब को देखा।

उसकी आँखों में एक बूँद थी जो पलकों पर रुकी हुई थी। वहाँ तक आई थी और वहीं रुक गई। मुनिया नहीं रोती थी। उसकी माँ सुरजी देवी नहीं रोती थीं। घर में

रोना एक ऐसी चीज़ थी जो होती ज़रूर थी पर दिखती नहीं थी। उसने आँखें नहीं पोंछीं। बस पलकें झपकाईं, एक बार, और पानी गया नहीं, रहा।

वह बेंच पर बैठी रही।

ट्रेनें आती रहीं और जाती रहीं।

रात हुई। स्टेशन की रात। गाँव में रात आती है और एक ख़ास तरह की शांति लाती है। स्टेशन की रात में शांति नहीं थी। अजनबी आवाज़ें थीं, कोई न कोई ट्रेन गुज़र रही, कोई न कोई आवाज़। रोशनियाँ थीं जो रोशनी देती थीं पर गर्मी नहीं। बेंच की लकड़ी रात में ठंडी हो गई थी।

मुनिया उस ठंडी लकड़ी पर बैठी रही।

लोटन उस कमरे में गया था। ये सब कुछ एक साथ एक समय एक जगह मैनपुरी की दो विपरीत दिशाओं में घट रहा था।

गया था और लौट आया था। इतनी सी बात थी। पर इतनी सी बात में जो कुछ हुआ, और जो कुछ नहीं हुआ, उसका हिसाब लगाने बैठो तो ज़िंदगी गुज़र जाए। कमरे में जाने से पहले लोटन एक आदमी था, कमरे से निकलने के बाद वही आदमी था, पर वही नहीं था। दुनिया ने कोई फ़र्क नहीं देखा, लोटन ने भी नहीं देखा, पर फ़र्क था, और वह फ़र्क ऐसा था जो दिखता बाद में है, बहुत बाद में, जब दिखने का वक़्त गुज़र चुका होता है।

कमरे के अंदर उसे कुछ मिनटों में समझ आ गया था कि रेडियो मुफ़्त नहीं है। कोई चीज़ मुफ़्त नहीं होती। यह बात दुनिया का हर बड़ा आदमी जानता है, हर सयाना आदमी जानता है, हर वह आदमी जानता है जिसने ज़िंदगी की मार खाई है। पर लोटन न बड़ा था, न सयाना, न उसने वह मार खाई थी जो यह सबक सिखाती है। उसकी मार अलग थी, उसकी मार बाप की लाठी की थी, भाई की बेरुख़ी की थी, गरीबी की थी, पर वह मार नहीं थी जो आदमी को चालाक बनाती

है। सो लोटन को यह समझ आई, एक पल के लिए, तेज़ बिजली की तरह, कि यहां कुछ लेना देना है, कुछ गिरवी रखना है, कुछ चुकाना है। पर वह समझ आई और चली गई। बिजली कड़कती है, आसमान एक पल के लिए सफ़ेद हो जाता है, सब कुछ दिख जाता है, हर पेड़, हर पत्ता, हर रास्ता, और फिर अंधेरा। पहले से भी गहरा अंधेरा। लोटन के साथ भी यही हुआ। एक पल समझ आई, अगले पल अंधेरा।

क्योंकि बाहर रेडियो रखा था।

और उस रेडियो को लोटन ने देखा था। देखा था उस तरह जिस तरह कोई रेगिस्तान में चलता हुआ आदमी पानी देखता है, या कोई भूखा आदमी रोटी, या कोई अंधे कुएं में गिरा हुआ आदमी ऊपर रोशनी का टुकड़ा। रेडियो दोपहर की धूप में चमक रहा था। ऐसे चमक रहा था जैसे सोने का हो, जैसे हीरे का, जैसे किसी और दुनिया का। और उस चमक में वह सब कुछ था जो लोटन ने हमेशा चाहा था। वह आवाज़ जो उसके घर में होनी चाहिए थी पर कभी नहीं हुई। वह किशोर कुमार जो हवा में तैरना चाहिए थे पर कभी नहीं तैरे। वह अपनापन जो किसी चीज़ को अपना कहने में होता है, मेरा रेडियो, मेरी आवाज़, मेरा गाना।

और उसी पल, वहीं खड़े खड़े, लोटन ने वह देखा जो किसी और को नहीं दिखा।

उसने देखा कि रेडियो सिर्फ रेडियो नहीं है। वह एक दिव्य चीज़ है। उसके सामने किशोर कुमार खड़े हैं, ऐसे जैसे भक्त मंदिर के सामने खड़ा होता है, सिर झुकाए, हाथ जोड़े। और पीछे, रेडियो के पीछे, भगवान श्री कृष्ण खड़े हैं, मुस्कुरा रहे हैं, वही मुस्कुराहट जो उनके चेहरे पर हमेशा होती है, वह मुस्कुराहट जो सब जानती है और कुछ नहीं बताती। और कृष्ण की हथेलियों से बैटरियां गिर रही हैं, लगातार, बिना रुके, जैसे अक्षय पात्र से अन्न गिरता है, कभी न ख़त्म होने वाली बैटरियों की झड़ी। एक के बाद एक। एक के बाद एक। और वे बैटरियां सीधी

रेडियो में जा रही हैं, और रेडियो बज रहा है, बजता रहेगा, हमेशा बजता रहेगा, क्योंकि अब उसे अमरता का वरदान मिल गया है।

लोटन ने यह सब देखा। आंखें खुली थीं पर देख सपना रहा था। वह सपना जो भूखे आदमी देखते हैं, वह सपना जो प्यासे देखते हैं, वह सपना जो ग़रीब के बच्चे दिन में देखते हैं, खुली आंखों से, और उन सपनों में सब कुछ होता है, सब कुछ मिलता है, सब कुछ अपना होता है। उस सपने में रेडियो की बैटरी कभी ख़त्म नहीं होगी। कभी धूप में रखकर आख़िरी हिम्मत नहीं जुटानी पड़ेगी। कभी डेढ़ रुपये का हिसाब नहीं लगाना पड़ेगा। रेडियो हमेशा बजेगा। हमेशा। और हमेशा लोटन के हाथ में रहेगा, कृष्ण की बांसुरी की तरह। कृष्ण के हाथ से बांसुरी कभी नहीं छूटी, और लोटन के हाथ से रेडियो कभी नहीं छूटेगा। यह वादा किसी ने नहीं किया था, यह वादा लोटन ने खुद से किया था, और खुद से किए गए वादे सबसे पक्के होते हैं, और सबसे ज़्यादा टूटते भी हैं।

और मुनिया?

मुनिया उस पल लोटन को याद नहीं रही।

यह लिखना ज़रूरी है और यह लिखना तकलीफदेह भी है। तकलीफदेह इसलिए कि मुनिया वह लड़की थी जिसके लिए लोटन ने डेढ़ कोस पैदल चला, बाप की लाठी खाई, सनाज के कांटे सहे, भाई की बेरुख़ी झेली। मुनिया वह लड़की थी जिसके दुपट्टे को खींचते देखकर लोटन के भीतर गाने बजते थे। मुनिया वह लड़की थी जिसके लिए उसने कांपते हाथों से चिट्ठी लिखी।

वही मुनिया।

जो उसी वक़्त स्टेशन पर थी। अंधेरे में। अकेली। अपनी पूरी ज़िंदगी को एक तरफ़ रखकर, अपने बाप का घर, अपनी माँ की चुप्पी, अपना दुपट्टा, अपना नाम, सब कुछ एक तरफ़ रखकर, उसके इंतज़ार में खड़ी थी। उसने वह फ़ैसला किया

था जो औरतें नहीं करतीं, या करती हैं तो दुनिया उन्हें माफ़ नहीं करती। वह खड़ी थी, इस जानते हुए भी।

और उस पल लोटन को मुनिया याद नहीं रही।

पर यह भूलना जानबूझकर नहीं था। लोटन ऐसा आदमी नहीं था जो जानबूझकर भूले। लोटन ने मुनिया को भुलाया नहीं, मुनिया उस पल ख़ुद चली गई, उसकी याद से, ऐसे चली गई जैसे चांद बादलों के पीछे चला जाता है, चांद वहीं है, कहीं गया नहीं, पर दिखता नहीं, क्योंकि सामने कुछ और है जो इतना बड़ा है, इतना घना है कि चांद छिप जाता है।

और वह बादल रेडियो था। रेडियो सामने था, ऐसे चमकता हुआ जैसे मेले की रोशनी। वह रोशनी जो इतनी तेज़ होती है कि आंखें चौंधिया जाएं, कि पैर ठिठक जाएं, कि हाथ अपने आप आगे बढ़ें। और लोटन उस रोशनी में ऐसे खो गया जैसे बच्चा मेले में खो जाता है। वह बच्चा जो मां का हाथ थामे चल रहा होता है। मां का हाथ गरम होता है, पकड़ मज़बूत होती है, और बच्चे को लगता है कि जब तक यह हाथ है तब तक वह सुरक्षित है। पर फिर मेला आता है। रोशनी आती है। रंग आते हैं। झूले आते हैं। मिठाई की महक आती है। खिलौनों की चमक आती है। और एक पल, बस एक पल, हाथ छूट जाता है। बच्चे को पता भी नहीं चलता कि कब छूटा, कैसे छूटा। वह बस चलता रहता है, आगे, और आगे, रोशनी की तरफ, चमक की तरफ, और पीछे मुड़कर देखता ही नहीं। और जब मुड़कर देखता है तो मां नहीं होती, मां कहीं पीछे रह गई होती है, भीड़ में, अंधेरे में, और बच्चा अकेला होता है, रोशनी में, चमक में, पर अकेला।

लोटन उस पल अकेला था।

रेडियो की चमक में। कृष्ण की बैटरियों के सपने में। किशोर कुमार की आवाज़ की उम्मीद में। और मुनिया का हाथ छूट चुका था, बिना किसी आवाज़ के, बिना

किसी लम्हे के जिसे याद रखा जा सके, बस छूट गया था जैसे धागे से मनका सरक जाता है और पता तब चलता है जब माला गिन ली जाती है।

उसे पता नहीं चला।

बहुत बाद में पता चलेगा। जब मेले की रोशनी बुझेगी और लोटन पीछे मुड़कर देखेगा तो वहाँ सिर्फ़ उस जगह की ख़ाली हवा होगी जहाँ मुनिया थी। तब पूछेगा मन से कि कब छूटी, कैसे छूटी, और क्यों। और उस दिन यह भी समझ में आएगा कि मेले की रोशनी असली नहीं होती, वह सिर्फ़ दिखती है, आँखों को भरमाती है, और जो असली होता है वह हमेशा अंधेरे में होता है, चुपचाप, बिना किसी चमक के, बिना किसी शोर के। जैसे मुनिया थी। जैसे मुनिया का दुपट्टा था। जैसे मुनिया की वह मुस्कुराहट थी जो होंठों पर आई और चली गई, जैसे कोई चिड़िया डाल पर बैठे और उड़ जाए, और डाल काँपती रहे, देर तक, उसके जाने के बाद भी।

पर वह दिन अभी नहीं आया था।

अभी रेडियो चमक रहा था। अभी कृष्ण मुस्कुरा रहे थे। अभी बैटरियाँ गिर रही थीं, एक-एक करके, उस हाथ से जिसने बालों के जूड़े की जगह इन्हें चुना था, छल्ला फेंककर, जीता था, और अब उसी जीत में खोया हुआ था।

पूरब बाहर खड़ा था।

बाहर, तंबू के बाहर, उस धूप में जो सुबह की थी पर जो आज गरम लग रही थी, ज़्यादा गरम, जैसे सूरज को भी पता हो कि अंदर कुछ हो रहा है जो नहीं होना चाहिए, और सूरज अपना गुस्सा गरमी से दिखा रहा है। पूरब उसी जगह खड़ा था जहां लोटन ने छोड़ा था, जाने से पहले, कि तू यहीं रह, अंदर मत आना, बस यहीं, और पूरब रहा, वहीं, उसी जगह, पैर जमाए, जैसे किसी ने कील ठोंक दी, क्योंकि लोटन ने कहा था और लोटन की बात पूरब के लिए हुक्म थी, हमेशा से, और आज भी।

पूरब के चेहरे पर एक भाव था जो उसने किसी को नहीं दिखाया, कभी नहीं, न लोटन को, न किसी और को। वह भाव डर का था, पर डर कहना ठीक नहीं, डर से कुछ और, वह भाव उस जानने का था कि जो हो रहा है वह ठीक नहीं, कि अंदर कुछ हो रहा है जिसकी कीमत बहुत बड़ी, कि रेडियो मुफ़्त नहीं, कुछ भी मुफ़्त नहीं, और जो मुफ़्त दिखता है उसकी कीमत सबसे ज़्यादा, यह बात पूरब जानता था, उसका दिमाग़ जानता था, वह दिमाग़ जो हमेशा चलता, जो योजनाएं बनाता, जो जोड़ता घटाता, और उस दिमाग़ ने जोड़ा कि रेडियो और तंबू और डॉक्टर और रजिस्टर, इनका जोड़ कुछ और है, कुछ ऐसा जो पूरब को पता नहीं पर अंदाज़ा है, और अंदाज़ा होना पता होने से ज़्यादा तकलीफदेह, क्योंकि अंदाज़े में वह सब है जो पक्का नहीं पर जो रोकता भी नहीं, बस है, भीतर, जमा, और कांपता।

पूरब ने इंतज़ार किया। कितनी देर, कौन जाने, शायद आधा घंटा, शायद एक, शायद ज़्यादा, पूरब ने गिना नहीं, बस खड़ा रहा, वहीं, उसी धूप में, और तंबू के अंदर से आवाज़ें आती रहीं, कभी किसी की खांसी, कभी तिवारी की आवाज़ जो नाम पुकारती, कभी कोई और, और पूरब सुनता रहा, और हर आवाज़ में लोटन की तलाश करता रहा, कि कहीं लोटन की आवाज़ हो, कि कहीं उसकी खांसी, कि कहीं वह "पूरब" जो लोटन कहता, पर नहीं मिली, लोटन की आवाज़ उन आवाज़ों में नहीं, बस दूसरे लोग, दूसरी आवाज़ें, और लोटन चुप, भीतर, कहीं, उस तंबू में जहां पूरब नहीं जा सकता।

फिर तंबू का पर्दा हिला।

हिला, ऐसे जैसे हवा ने हिलाया, पर हवा नहीं, हाथ ने, और वह हाथ लोटन का, और पर्दा सरका, और लोटन बाहर आया।

बाहर आया। शाम के घने धुँधलके में। और उसके हाथ में रेडियो था।

रेडियो। चमकता हुआ। नया। काले रंग का, वह काला जो शहर की चीज़ों का होता है, चमकदार, पॉलिश किया हुआ, जिस पर धूप पड़े तो रोशनी लौटे। एक

छोटी सी ग्रिल, सामने, जहां से आवाज़ आती, और एक एंटीना जो ऊपर की तरफ, पतला, चमकदार, जैसे कोई उंगली आसमान की तरफ उठा रहा हो।

लोटन ने उसे दोनों हाथों से पकड़ा था। दोनों हाथों से। ऐसे जैसे वह टूट जाएगा अगर एक हाथ से पकड़ा, या शायद इसलिए नहीं, शायद इसलिए कि एक हाथ में ताक़त नहीं, दोनों हाथ चाहिए, और लोटन के हाथ कांप रहे थे, हल्का कांपना, वह कांपना जो बाहर से नहीं दिखता पर अंदर से होता है, जैसे ज़मीन के नीचे भूकंप, ऊपर से सब ठीक, नीचे सब हिल रहा।

लोटन का चेहरा। वह चेहरा जो पूरब ने सालों से देखा, हर भाव में, ख़ुशी में, दुख में, सुन्न में, उदास में, हर भाव जानता था पूरब, पर आज का भाव नया था, आज वह भाव था जो पूरब ने पहले नहीं देखा, कभी नहीं, किसी के चेहरे पर नहीं, और उस भाव का कोई नाम नहीं, वह ख़ुशी नहीं, दुख नहीं, शर्म नहीं, डर नहीं, कुछ और, कुछ ऐसा जो इन सबका मिला हुआ, जैसे कोई कई रंग मिला दे और एक नया रंग बने जिसका कोई नाम न हो। लोटन का चेहरा सफ़ेद था, वह सफ़ेदी जो तबियत ख़राब होने की।

पूरब ने उसे देखा। लोटन ने पूरब को देखा। दोनों ने एक दूसरे को देखा, और उस देखने में वह सब था जो शब्दों में नहीं, जो कभी नहीं आएगा, जो दो दोस्तों के बीच होता है जब एक जानता है कि दूसरे ने कुछ किया जो नहीं करना चाहिए था, और दूसरा जानता है कि पहला जानता है, और दोनों जानते हैं और दोनों चुप, क्योंकि कुछ बातें कहने से टूट जाती हैं, और यह बात उनमें से एक।

कुछ नहीं कहा। दोनों ने। कुछ नहीं।

"चलते हैं?" पूरब ने पूछा, और इस "चलते हैं" में वह सब था जो पूरब कह सकता था, वह कहना जो कहता है कि मैं यहां हूं, कि जो हुआ वह हुआ, कि अब चलो, कि आगे बढ़ो, कि मैं साथ हूं, बस "चलते हैं" में यह सब, और कुछ नहीं, क्योंकि कुछ और कहना उस पल में ग़लत होता, कुछ भी और कहना, कि क्या हुआ अंदर,

कि यह रेडियो कैसे मिला, कि किसने दिया, कि क्या कीमत, कुछ भी पूछना ग़लत, और पूरब ने नहीं पूछा, बस "चलते हैं" कहा, और यह कहना दोस्ती का सबसे बड़ा सबूत, कि जब दोस्त ने कुछ ऐसा किया हो जो तकलीफदेह, तो न पूछो, बस साथ चलो।

"हां।"

यह "हां" लोटन के मुंह से ऐसे निकला जैसे शरीर में ताक़त नहीं, जैसे यह एक शब्द भी बहुत भारी, और उस "हां" में वह सब था जो लोटन ने अंदर छोड़ आया, वह कुछ जो अब कभी नहीं लौटेगा, जो तिवारी के रजिस्टर में एक नंबर है, बाइस, जो सत्तरह होना चाहिए था पर बाइस लिखा गया, और उस बाइस में लोटन भी, और लोटन के साथ वह कुछ जो एक आदमी का सबसे अपना, और जो अब नहीं, और जो नहीं उसकी जगह रेडियो, चमकता हुआ, काला, नया, और यह तबादला, यह सौदा, यह जो हुआ, इसका कोई नाम नहीं, कोई शब्द नहीं, बस एक रेडियो है हाथ में और भीतर एक ख़ालीपन जो कभी नहीं भरेगा।

पूरब ने एक पल रुककर फिर कहा, धीमे, बहुत धीमे, वह कहना जो ज़रूरी था।

"स्टेशन नहीं चलना?"

स्टेशन। यह शब्द सुनकर लोटन के चेहरे पर कुछ हुआ, वह कुछ जो बिजली गिरने जैसा, एक पल के लिए सब चमका, सब दिखा, रूपा, चिट्ठी, मुनिया, बब्बन भैया, रामखेलावन वह सब जो आज तक था, वह सब जो चिट्ठी में लिखा था। लोटन कुछ कहना चाहता था। उसने मुंह खोला, होंठ हिले, और कुछ निकला, शब्द, पर शब्द नहीं, धुंधले, अधूरे, ऐसे जैसे शब्द बनने से पहले ही टूट गए, जैसे हवा में बिखर गए, जैसे कोई कुम्हार बर्तन बनाए और बर्तन पहले ही गिर जाए, बिना बने, और लोटन के मुंह से जो निकला वह शब्द नहीं, आवाज़ थी, टूटी, बिखरी, और उस आवाज़ में वह सब था जो शब्दों में नहीं, कि हां चलना है, पर कैसे चलूं, कि पैरों में ताक़त नहीं, कि शरीर ने जवाब दे दिया, कि वह जो अंदर हुआ उसने

सब निचोड़ लिया, हर बूंद, हर ताक़त, और अब बस यह खोल है जो खड़ा है, दो हाथों में रेडियो पकड़े, और कुछ नहीं।

लोटन की आंखों के सामने सब धुंधला हुआ।

वह धुंधलाना जो बेहोशी से पहले होता है, जब दुनिया अपना रंग खो देती है, पूरब का चेहरा, तंबू, धूप, ज़मीन, आसमान, सब एक, सब धुंधला, जैसे किसी ने आंखों पर दूध का परदा डाल दिया हो, और उस धुंधलके में लोटन ने रेडियो की तरफ देखा, वही रेडियो जो हाथ में, चमकता, काला, और उस रेडियो में उसने वह देखा जो कोई और नहीं देख सकता, उसने देखा किशोर कुमार को, पहली रात, बब्बन भैया का आंगन, वह खिड़की जो भीतर खुली, मुनिया का दुपट्टा, इमली का पेड़, पूरब का कंधा, फूलमती की रोटी, रामखेलावन की लाठी, पतंग, डोर, चिट्ठी, सब देखा, एक पल में, सब, और फिर सब गया, सब धुंधला, सब काला।

और लोटन चक्कर खाकर गिर गया।

गिरा। ज़मीन पर। उसी ज़मीन पर जो तंबू के बाहर, जो सूखी, कड़ी, और उसके हाथ से रेडियो नहीं छूटा, गिरते हुए भी नहीं, दोनों हाथों ने पकड़ रखा, कसकर, ऐसे जैसे यह रेडियो उसकी ज़िंदगी हो, और शायद था भी, इस पल, इस ज़मीन पर, यह रेडियो ही उसकी ज़िंदगी, जिसके लिए उसने वह दिया जो एक आदमी दे सकता है, वह सब जो एक शरीर का अपना, और अब रेडियो हाथ में और शरीर ज़मीन पर, और दोनों के बीच वह सौदा जो किसी किताब में नहीं, किसी अर्थशास्त्र में नहीं, बस यहां, इस तंबू के बाहर, इस धूप में, इस ज़मीन पर।

पूरब दौड़ा। उसी पल। बिना सोचे। बिना एक पल रुके। वह दौड़ जो दोस्त की होती है जब दोस्त गिरे, वह दौड़ जो सबसे तेज़, सबसे सीधी, और पूरब ने लोटन को पकड़ा, उसका सिर उठाया, अपनी गोद में रखा, और लोटन की आंखें बंद थीं, चेहरा सफ़ेद, होंठ सूखे, और हाथों में रेडियो, अभी भी, कसकर, ऐसे जैसे बेहोशी

में भी शरीर जानता है कि यह नहीं छोड़ना, यह वह चीज़ है जिसके लिए सब कुछ दिया, और सब कुछ दी हुई चीज़ नहीं छूटती, कभी नहीं, बेहोशी में भी नहीं।

"भइया," पूरब ने कहा, "भइया, आंखें खोलो।"

लोटन ने नहीं खोलीं। उसके शरीर में वह ताक़त नहीं जो आंखें खोले, वह ताक़त जो अंदर छूट गई, उस तंबू में, तिवारी की मेज़ पर, डॉक्टर वर्मा के सफ़ेद कोट के सामने, और अब शरीर में बस इतनी ताक़त कि सांस चले, बस, और सांस चल रही, हल्की, धीमी, और पूरब ने वह सांस सुनी, और सुनकर तसल्ली हुई कि ज़िंदा है, बस ज़िंदा, और ज़िंदा होना काफी, अभी के लिए काफी।

और कहीं दूर, बहुत दूर, मैनपुरी स्टेशन पर, एक लड़की बैठी थी, उस पुरानी बेंच पर, जिसमें अजनबियों के नाम खुदे, और वह लड़की इंतज़ार कर रही थी, उस लड़के का जो नहीं आएगा, जो नहीं आ सकता, जो इस पल ज़मीन पर पड़ा है, बेहोश, हाथों में रेडियो, और उस लड़की को नहीं पता, उसे बस इतना पता कि वह आएगा, ज़रूर आएगा, शायद, और यह "शायद" उसे बेंच पर बैठाए हुए, घंटों, और वह बैठी रहेगी, और लोटन नहीं आएगा, और मूंगफली वाली बुढ़िया पूछेगी, "किसका इंतज़ार है बिटिया," और मुनिया कहेगी, "किसी का नहीं," और यह "किसी का नहीं" सबसे बड़ा झूठ होगा और सबसे बड़ा सच भी, क्योंकि लोटन अब कोई नहीं, वह ज़मीन पर है, बेहोश, और मुनिया बेंच पर, इंतज़ार में, और दोनों के बीच वह डेढ़ कोस जो अनंत हो गया, और अब सच में अनंत, क्योंकि अब वह दूरी नहीं जो पैरों से तय हो, अब वह दूरी है जो किस्मत ने बनाई, या सरकार ने, या रुपा ने, या उस रेडियो ने जो चमक रहा, लोटन के हाथों में, ज़मीन पर, बेहोश आदमी के हाथों में, और चमक रहा, बेशर्मी से, जैसे उसे पता ही नहीं कि उसकी कीमत क्या चुकाई गई।

रात के उस हिस्से में जब स्टेशन पर भी सुकून होता है, जब आने जाने वाले कम हो जाते हैं, जब चाय वाला अपनी दुकान समेटने लगता है, जब कुली की आवाज़ें

कम हो जाती हैं, उस वक़्त मुनिया बेंच पर अकेली थी। उसके पास में एक और बेंच थी जिस पर एक बुज़ुर्ग आदमी सो रहा था, अपना बिस्तर बाँधे हुए। उसे कहीं जाना था या कहीं से आया था, यह नहीं मालूम। वह सो रहा था, बेफ़िक्री से। मुनिया ने उस बुज़ुर्ग आदमी को देखा। उसकी बेफ़िक्री को देखा। उसने सोचा कि काश वह भी ऐसे सो सकती। बस सो जाना। पर नींद नहीं थी। नींद उस रात उसके पास फटकी नहीं। उसने हिसाब लगाया। यह उसकी आदत थी, जो हमेशा उसने की थी। क्या हो सकता है कि वह न आया हो। एक, शायद उसे पता नहीं था। पर उसे पता था, मुनिया ने ख़ुद बताया था, रूपा के ज़रिए। दो, शायद उसे कुछ हो गया हो, बीमारी, दुर्घटना। तीन, शायद उसने सोचा हो कि यह सब बेकार है। चार, शायद उसके घरवालों ने रोका हो। पाँच...

पाँच पर आकर वह रुकी। पाँचवाँ कारण वह था जो वह सोचना नहीं चाहती थी, जो सोचने पर वह पल अनदेखा हो जाता जो हैंडपंप के पास हुआ था, जब रेडियो बजा था और किशोर कुमार की आवाज़ हवा में थी और दोनों ने एक दूसरे को देखा था। वह पल झूठा नहीं था, यह वह जानती थी। उस पल में कुछ था। पर उस कुछ का मतलब यह नहीं था कि वह आएगा। वह रात भर बेंच पर रही। ठंड बढ़ती रही। उसने अपना दुपट्टा कंधे पर ज़्यादा लपेट लिया। उसकी पोटली उसके पाँवों के पास थी, ज़मीन पर।

सुबह होते-होते उसने समझ लिया।

वह नहीं आएगा।

यह समझना एक पल में नहीं हुआ। रात भर होता रहा, धीरे-धीरे, जैसे पानी किसी मिट्टी के बर्तन में से रिसता है, बूँद-बूँद, और सुबह तक बर्तन खाली हो जाता है। मुनिया ने रात भर कारण सोचे, एक से बुरा एक। शायद रास्ते में कुछ हुआ। शायद घर में कोई बात हुई। शायद रामखेलावन ने रोका। शायद चिट्ठी नहीं मिली। शायद मिली और उसने गलत समझा। पर सच्चा कारण इन सबसे अलग

था, वह कारण जो उसके हिसाब में नहीं था, जो इतना अजीब था कि सोचने वाले को भी अजीब लगे। एक रेडियो। एक चमकता हुआ रेडियो जो मुफ़्त नहीं था, जिसकी कीमत मुनिया कभी नहीं जान पाएगी, और जिसे जाने बिना वह कभी नहीं समझ पाएगी कि लोटन क्यों नहीं आया।

कुछ बातें अनजानी ही रहती हैं। और शायद यही उनकी तकलीफ़ है।

वह उठी बेंच से।

धीरे से, जैसे रात भर एक जगह बैठने के बाद उठती है, हड्डियाँ अकड़ी हुई थीं, देह भारी थी, आँखें उस नींद से खाली थीं जो आई नहीं। उसने दुपट्टा ठीक किया, पोटली उठाई। फिर एक बार प्लेटफ़ॉर्म को देखा, उस बेंच को देखा जिस पर रात भर बैठी रही, उस नाम को देखा जो उस पर खुदा था, किसी अजनबी का, किसी ऐसे का जिसे वह जानती नहीं और जो उसे नहीं जानता।

फिर उसने एक कंकड़ से, धीरे से, उस बेंच की लकड़ी पर लिखा।

मुनिया संग लोटन।

वह लिखावट गहरी नहीं थी। यह इसलिए लिखा था कि एक बार, कहीं, किसी जगह पर, यह दोनों नाम साथ हों। बस एक बार।

घर लौटने का फ़ैसला उसने उसी पल किया।

यह फ़ैसला पहले वाले से कम बड़ा नहीं था। जाना बड़ा था, यह सब जानते हैं, पर लौटना भी एक तरह का चलना है, और इस चलने में रीढ़ उतनी ही लगती है, शायद ज़्यादा, क्योंकि जाने में एक उम्मीद होती है जो आगे खींचती है, लौटने में वह उम्मीद नहीं होती, लौटने में बस यह होता है कि जो था वह नहीं रहा और जो नहीं रहा उसके साथ भी जीना है। वह बस स्टैंड की तरफ़ गई। पीछे मुड़कर नहीं देखा। वह बेंच वहीं थी, वह नाम वहीं था, वह रात वहीं थी। मुनिया चलती रही, उसके पाँव जानते थे रास्ता।

उस रात बहुत कुछ घटा।

मैनपुरी स्टेशन पर मुनिया का इंतज़ार हारा। वह इंतज़ार जो सुबह के अँधेरे में शुरू हुआ था, जिसने हर चेहरा ढूँढा, हर क़दम की आवाज़ सुनी। लोटन नहीं आया। दुपट्टा खींचा, बार-बार, कंधे पर सीधा किया, पर इस बार वह आदत थकी हुई थी, उसमें वह बात नहीं थी जो पहले थी।

और इधर तिवारी का तंत्र जीता।

तंत्र वह मशीन है जो चलती रहती है, बिना रुके, बिना सोचे, बिना यह पूछे कि जो हो रहा वह ठीक है या नहीं, जैसे चक्की चलती है, चक्की को फ़र्क़ नहीं पड़ता। तिवारी वह आदमी था जो चक्की चलाता था, बस चलाता था, उसे फ़र्क़ नहीं पड़ता कि सत्रह हैं या बाईस, कि जो लड़का अभी ज़मीन पर गिरा वह किसके लिए गिरा। उसका काम रजिस्टर भरना था, नंबर लिखना, दस्तख़त लेना, मुहर लगाना, फ़ाइल बंद करना, बस इतना, और इतना करके तिवारी की ज़िंदगी चलती थी, तनख़्वाह आती थी, बच्चे स्कूल जाते थे।

फ़ाइल में नंबर बढ़ा। सत्रह था, बाईस लिखा गया।

काग़ज़ पर दस्तख़त हुए, मुहर लगी, वह मुहर जो गोल, नीली, जिसमें सरकार का नाम, और उस मुहर ने वह काम किया जो मुहरें करती हैं, पक्का किया, सील किया, बंद किया, और जो बंद हुआ वह कभी नहीं खुलेगा। सरकार संतुष्ट होगी, वह सरकार जो दिल्ली में बैठी, जिसे नंबर चाहिए, लक्ष्य चाहिए, और नंबर मिल गए, बाईस मिले, और बाईस में लोटन भी, और लोटन के साथ वह सब जो लोटन का अपना। डॉक्टर रमेश वर्मा ने अपने हाथ धोए, वही हाथ जो हमेशा साफ़, वही कोट जो हमेशा सफ़ेद, और उस सफ़ेदी में वह सब छिपा जो छिपाना चाहिए, जैसे बर्फ़ ज़मीन को ढकती है, ऊपर से सब साफ़, नीचे क्या है कोई नहीं देखता।

और लोटन?

लोटन एकलव्य हो गया। पर एकलव्य से अलग, क्योंकि एकलव्य से गुरु ने माँगा था, लोटन से किसी ने नहीं माँगा। न तिवारी ने, न डॉक्टर वर्मा ने, न सरकार ने। लोटन ने ख़ुद दिया, अपनी मर्ज़ी से, उस रेडियो के लिए, उस आवाज़ के लिए जो किशोर कुमार की थी, उस मुनिया के लिए जिससे प्रेम करना भी उसे किशोर कुमार ने सिखाया था। बिना माँगे देने वाला या तो बहुत बड़ा होता है या बहुत मजबूर, और लोटन शायद दोनों था। यह कोई ऐसी बात नहीं थी जो किताब में पढ़ाई जाए। कोई मास्टर परीक्षा में नहीं पूछेगा। पर मैनपुरी स्टेशन की एक बेंच पर, लकड़ी में उँगली से खुदे चार शब्दों की तरह, यह भी कहीं दर्ज हो गया। जब लोटन की आँख खुली, तंबू वही था, छत वही, बस कपड़े में एक छेद था और उस छेद से एक तारा दिख रहा था, अकेला।

रेडियो उसके पास था। सीने से लगा हुआ। एक हाथ में ग्लूकोज़ की सुई थी, वह सुई जो नस में, जिससे वह पानी आ रहा था जो ज़िंदगी का, बूंद-बूंद, धीमे। और दूसरे हाथ में रेडियो, वह चीज़ जिसके लिए ज़िंदगी का एक हिस्सा दे दिया गया था। एक हाथ में ज़िंदगी आ रही थी और दूसरे में वह चीज़ जिसकी कीमत ज़िंदगी से चुकाई, दोनों एक साथ, दोनों एक शरीर में। तंबू में अंधेरा था। ग्लूकोज़ की बोतल से बूंद-बूंद पानी गिर रहा था, टप, टप, टप, एक ताल में, वह ताल जो ज़िंदगी बचाने की, और उस ताल में एक लय थी, धीमी, जैसे कोई तबला बज रहा हो, बहुत धीमा, वह ठेका जो गाने से पहले बजता है।

और उसी ताल में, उसी टप-टप-टप में, रेडियो की आवाज़ आई।

किशोर कुमार।

वही आवाज़। वही मिठास। वही वह खिड़की जो भीतर खुली थी उस पहली रात जब बब्बन भैया के आँगन में रेडियो बजा था। वही आवाज़ अब इस तंबू में, इस अँधेरे में, इस ग्लूकोज़ की टप-टप में, और लोटन ने सुना, और सुनते ही उसके भीतर कुछ हुआ, कुछ खुला, कोई खिड़की, पर इस बार खुलने में दर्द था, वह दर्द

जो किशोर कुमार की आवाज़ में हमेशा था पर जो पहले लोटन ने नहीं सुना था, पहले मिठास सुनी थी, अब दर्द सुना, और दर्द सुनना मिठास सुनने से ज़्यादा सच्चा होता है। लोटन ने सुना। और सुनते हुए उसकी आँखें भीगीं, पहली बार, पूरी तरह, बिना रोके, बस बहीं, और उस बहने में वह सब था जो बरसों से जमा था, मुनिया, इमली का पेड़, दुपट्टा, पगडंडी, लाठी, चप्पल, रूपा, पूरब, बब्बन भैया, रेडियो, बैटरी, पतंग, चिट्ठी, स्टेशन, बेंच, तिवारी, वर्मा, रजिस्टर, मुहर, वह कीमत जो चुकाई, सब बहा, और ग्लूकोज़ टपकता रहा, और किशोर कुमार गाते रहे, और लोटन रोता रहा।

और कहीं दूर, मैनपुरी स्टेशन पर एक बेंच पर चार शब्द खुदे थे, लकड़ी में, सूखकर पक्के होते हुए।

मुनिया संग लोटन।

और तब मुनिया याद आई। ऐसे याद आई जैसे अँधेरे कमरे में अचानक कोई दरवाज़ा खुल जाए और बाहर की रोशनी आँखों में पड़े। मुनिया का चेहरा, मुनिया का तिल, मुनिया की भूरी आँखें, मुनिया का दुपट्टा, और वह चिट्ठी जो मुनिया ने रूपा को दी थी।

वह यहाँ था, इस तंबू में, इस चारपाई पर, ग्लूकोज़ की सुई हाथ में, रेडियो सीने पर। और मुनिया वहाँ थी, या शायद अब वहाँ नहीं थी, शायद लौट गई, शायद अभी भी बैठी है किसी बेंच पर, थकी हुई, अकेली, दुपट्टा कंधे पर खींचते हुए, इंतज़ार करते हुए उस आदमी का जो वहाँ नहीं है।

सुबह जब लोटन तंबू से बाहर निकला तो पूरब वहाँ था।

पूरब की आँखों में सवाल था पर ज़बान पर नहीं आया, क्योंकि पूरब जानता था कि कुछ सवाल चुप रहकर पूछे जाते हैं।

पूरब ने साइकिल उठाई। लोटन पीछे बैठा।

पहला खुमार

रामनगर में ख़बर मुनिया से पहले पहुँच चुकी थी।

वह ख़बर मिसिर जी की घरवाली ने दी थी, थोड़ी सच, थोड़ी नमक-मिर्च, और उसमें एक शब्द था जो ग़लत था पर लग चुका था, "भाग गई।" मुनिया भागी नहीं थी। वह गई थी, और वापस आई थी। जाने और भागने में वही फ़र्क़ होता है जो फ़ैसले और डर में होता है। पर शब्द एक बार लग जाए तो लगा रहता है, जैसे कपड़े पर दाग, धोने से भी नहीं जाता।

मुनिया जब घर पहुँची, दरवाज़ा खुला था।

सुरजी देवी रसोई में थीं। आहट सुनी, बाहर आईं, मुनिया को देखा। एक पल रुकीं, वह पल जिसमें सब कुछ था और कुछ नहीं था। फिर वापस रसोई में चली गईं।

"चाय पियोगी?"

"हाँ माँ।"

इन चार शब्दों में वह प्यार था जो किसी किताब में नहीं समाता, वह प्यार जो सवाल नहीं पूछता, इल्ज़ाम नहीं लगाता, बस चाय बनाता है। और उस सुबह चाय बनाना दुनिया का सबसे बड़ा काम था।

हरिप्रसाद शाम को आए, मुनिया को देखा, कुछ नहीं कहा, बरामदे में बैठ गए। रात को सबने खाना खाया, चुपचाप, उस चुप्पी में जो थालियों से भारी थी। शादी आज थी।

और शादी हुई।

बर्तन आए, खाना बना, बाराती आए, फेरे हुए। शादी एक ऐसी मशीन है जो चालू हो जाए तो रुकती नहीं, वह हर सवाल को दबा देती है, हर शक को, जैसे बर्फ़ ज़मीन को ढक लेती है, नीचे क्या है यह कोई नहीं पूछता।

इस शादी की एक कीमत पंडित रामअवतार मिसिर ने चुकाई, जिन्होंने "भाग गई" सबसे ज़्यादा फैलाया था। जब ख़बर ग़लत निकली तो गाँव को एक बलि का बकरा चाहिए था, और रामअवतार मिसिर वही बकरा बने। उन्हें समाज से बाहर कर दिया गया, मंदिर से बाहर कर दिया गया। यह न्याय था या अन्याय, यह तय करना मुश्किल है, क्योंकि समाज ने यह मुनिया की इज़्ज़त के लिए नहीं किया, अपनी इज़्ज़त के लिए किया, ताकि कह सके देखो, हमने न्याय किया। और यह न्याय वैसा ही था जैसा तिवारी का हिसाब, जिसमें पंद्रह और बाइस बराबर हो जाते हैं।

मुनिया को सुबह से सजाया जा रहा था। चेहरे पर उबटन लगा था, पर उसके चेहरे पर क्या था यह किसी ने नहीं देखा, शायद इसलिए कि जो देख रहे थे वे समझ नहीं रहे थे, और जो समझ रहे थे वे चुप थे। सुरजी देवी चुप थीं। हरिप्रसाद चुप थे। रूपा चुप थी। सब चुप थे, जैसे चुप्पी ही इस घर की भाषा बन गई हो।

उधर पूरब साइकिल चला रहा था, और लोटन अधमरी हालत में पीछे बैठा था।

लोटन को पूरब ने बताया। और बताने का वक़्त भी ऐसा चुना था जो पूरब ही चुन सकता था, क्योंकि पूरब उन लोगों में से था जो बुरी ख़बर सुनाने से पहले वक़्त देखते हैं, हवा का रुख़ देखते हैं।

रेडियो लोटन की गोद में था, और किशोर कुमार गा रहे थे, "पल पल दिल के पास तुम रहती हो।" वह गाना जिसमें दिल और मिल और कल की तुकबंदी थी, वह तुकबंदी जो सुनने में बच्चों जैसी लगती है पर जो भीतर जाकर वह काम करती है जो कोई भारी शायरी नहीं कर पाती। सच्ची बातें हमेशा सीधी होती हैं, और सीधी बातें हमेशा सच्ची। यही किशोर कुमार की ताक़त थी।

पूरब जब बड़ी बात कहने वाला होता था, तो पहले चुप हो जाता था, जैसे कोई गहरे पानी में कूदने से पहले ज़मीन पर पाँव जमाता है, एक लंबी साँस लेता है, वह साँस जो आख़िरी होती है बाहर की हवा की, उसके बाद पानी, उसके बाद डूबना। पूरब ने वह साँस ली।

"आज मुनिया की शादी है।"

पाँच शब्द। लोटन ने कुछ नहीं कहा। जवाब इतनी देर बाद आया कि पूरब को लगा शायद सुना ही नहीं। पर लोटन ने सुना था, वैसे जैसे कोई पहले से जानी बात सुनता है, जिसका इंतज़ार सिर्फ़ शब्दों का रह गया हो। शब्द आ गए। अब झुठलाया नहीं जा सकता था।

रेडियो बजता रहा। किशोर कुमार गाते रहे, "पल पल दिल के पास तुम रहती हो।" और लोटन की गोद में वह रेडियो उतना ही भारी लग रहा था जितनी यह ख़बर। साइकिल चलती रही, धूल उड़ती रही, और दो दोस्त, एक आगे एक पीछे, उस सड़क पर थे जो रामनगर से दूर जा रही थी और जिस पर हर मोड़ के साथ मुनिया भी दूर होती जा रही थी, हमेशा के लिए।

लोटन के हाथ रेडियो पर थे, वहीं रहे, वॉल्यूम कम नहीं किया, ज़्यादा नहीं किया, किशोर कुमार गा रहे थे और लोटन ने उन्हें गाने दिया, जैसे जब तक किशोर कुमार गा रहे हैं तब तक दुनिया रुकी हुई है, तब तक मुनिया की शादी नहीं हो रही, तब तक सब कुछ वैसा ही है जैसा कल था और परसों था। लोटन ने बस एक काम किया, रेडियो का एंटीना सीधा किया, सिग्नल ठीक था, आवाज़ साफ

थी, एंटीना सीधा करने की कोई वजह नहीं थी, पर उसने किया, और इस करने में वह सब था जो उसने नहीं कहा, यह उसका तरीक़ा था कहने का कि सुन लिया, अब और कुछ मत कहो, और पूरब ने समझ लिया। पूरब पैडल मारता रहा, शाम हुई, किशोर कुमार गाते रहे, गाना ख़त्म हुआ, दूसरा आया, वह भी गुज़रा, और उस गुज़रने में शाम भी गुज़री, बालमपुर और रामनगर वाला तिराहा आया। लोटन ने पूरब से साइकिल रोकने के लिए कहा। पूरब रुका और इससे पहले वो कुछ पूछता लोटन ने उसके हाथ में एक चिट्ठी थमा दी। उस चिट्ठी में पूरब के सारे सवालों के जवाब थे शायद। या नहीं शायद।

वह रात लोटन के लिए बहुत लंबी थी, और इस लंबाई को घड़ी से नापना बेकार है क्योंकि घड़ी हर रात को बराबर नापती है, बारह घंटे, दस घंटे, जितना भी, पर भीतर का पैमाना अलग होता है, भीतर एक मिनट एक उम्र हो सकता है और एक घंटा एक पल, और उस रात लोटन का भीतरी पैमाना बिल्कुल बिगड़ गया था। दोनों बैरागी की दुकान के चौहत्तरे पर लेटे रहे। लोटन की आंखें बंद नहीं हुईं, उसके दिमाग़ में बहुत कुछ था और वह सब एक साथ था, ऐसे गुंथा हुआ जैसे किसी ने बहुत सारे धागे एक साथ उलझा दिए हों और अब कोई एक धागा खींचना चाहे तो खींच न पाए, मुनिया का चेहरा था, गेहुंआ, तिल वाला, और हैंडपंप वाली वह दोपहर थी जब धूप तिरछी थी और दोनों की आंखें मिली थीं और नहीं हटी थीं, और किशोर कुमार का वह गाना था जो अभी अभी बजा और बह गया जैसे नदी का पानी बहता है हाथ में नहीं आता, और रेडियो था, वही रेडियो, खाट के पास रखा, अंधेरे में भी थोड़ा चमकता हुआ, और वह तंबू था, और तिवारी का चेहरा, और वह कमरा, और वह दर्द जो शरीर में अभी भी कहीं बैठा था, और इन सबके बीच एक खालीपन था, वह खालीपन जिसका कोई नाम नहीं, जो किसी शब्दकोश में नहीं मिलता, किसी गाने में नहीं आता, जो बस होता है, रात के अंधेरे में।

बारात आई।

इटावा से मैनपुरी ट्रेन से, और फिर मैनपुरी से दो किराये के ट्रैक्टर और एक जीप, जिसे रास्ते में धक्का देना पड़ा। इस धक्के से बारात का कोई रुतबा कम नहीं हुआ, बारातें धक्के खाती हैं और चलती रहती हैं, यह उनका स्वभाव है।

नरेश आगे वाले ट्रैक्टर में बैठा था। चेहरे पर वह दुविधा थी जो हर बारात वाले बाप की होती है, थोड़ी घबराहट और थोड़ा रौब, दोनों एक साथ, और कोई नहीं जानता कि किस वक़्त कौन सा भाव दिखाना है।

गुड्डू का शामियाना एक तरफ़ से ढीला था। हरखू चाचा ने तुरंत कहा कि यह शुभ है, जैसे मंदिर पर पताका लहराती है। इस तर्क से बहस करना दीवार से बहस करने जैसा था, इसलिए किसी ने नहीं की।

काम सुरजी देवी कर रही थीं, जैसे हमेशा करती थीं।

हरिप्रसाद ओझा उस दिन बहुत व्यस्त दिखे। पर व्यस्त दिखना और काम करना दो अलग चीज़ें हैं, यह फ़र्क़ हर घर में होता है और हर घर में चुप रहकर निभाया जाता है।

शादी हुई। फेरे हुए।

पंडित जी मंत्र पढ़ते रहे जिन्हें सौ में शायद तीन समझते थे। मंत्र का समझ में आना ज़रूरी नहीं, बजना ज़रूरी है, जैसे ढोल का। ढोल का अर्थ कोई नहीं पूछता, उसकी आवाज़ काफ़ी होती है।

पर हरिप्रसाद ओझा उस पूरी रात शामियाने में नहीं थे।

यानी शरीर से थे, उसी टेढ़े शामियाने के नीचे, उसी भीड़ में। पर एक कोने में बैठे थे, अकेले, उस कोने में जहाँ रोशनी कम पड़ती थी और लोगों की नज़र भी कम। और उनके हाथ में बीड़ी थी।

बीड़ी। हरिप्रसाद ओझा और बीड़ी, यह जोड़ी आम दिनों की नहीं थी। आम दिनों में एक बीड़ी, ज़्यादा से ज़्यादा दो, शाम को, चाय के बाद, बरामदे में, आराम से।

उस रात एक के बाद एक, जैसे हर बीड़ी एक सवाल हो जिसे सुलगाकर ख़त्म करना है। पर सवाल ख़त्म नहीं होता, सिर्फ़ राख बनता है, और नया सवाल आता है, और नई बीड़ी।

उनकी आँखें लाल थीं। जो लोग पास से गुज़रे उन्होंने सोचा कि धुएँ से हैं, और ग़लत नहीं सोचा, धुएँ से थीं भी। पर सिर्फ़ धुएँ से नहीं। उनमें वह लाली भी थी जो उस रात की थी जब मुनिया घर से निकली थी और हरिप्रसाद ने हाथ उठाया था, और फिर वापस कर लिया था।

वह हाथ आज भी उठता था, हर बीड़ी के साथ। उठता, रुकता, वापस आता। और हर बार वे सोचते कि अगर वह हाथ आगे गया होता तो क्या होता। जवाब नहीं मिलता था। एक और बीड़ी सुलगती थी।

सुबह जब मँझली बुआ ने उस कोने की सफ़ाई की, राख इतनी थी कि दो बार झाड़ू लगानी पड़ी। मँझली बुआ ने कुछ नहीं कहा, पर उनकी आँखों में वह बात थी जो सब जानने वालों की आँखों में होती है, वह ख़ामोश समझ जो शब्दों से ज़्यादा बोलती है।

सुरजी देवी उस रात बहुत काम में थीं। काम में रहना एक रहम था, क्योंकि जब तक हाथ में काम है तब तक दर्द दबा रहता है।

एक बार, पूरी रात में बस एक बार, सुरजी देवी उस कोने के पास से गुज़रीं जहाँ हरिप्रसाद बैठे थे। एक पल रुकीं। हरिप्रसाद ने ऊपर देखा। आँखें मिलीं।

एक पल। बस एक पल। और उस एक पल में पच्चीस बरस का ब्याह था। वे सारी सुबहें जो एक साथ गुज़रीं। वे सारी रातें जो एक पलंग पर कटीं। और उस एक पल में वह रात भी थी जब दोनों जागे थे और दोनों ने कुछ नहीं किया, और उस न करने का हिसाब अभी तक बाकी था।

सुरजी देवी चली गईं, वापस काम में। हरिप्रसाद ने एक और बीड़ी सुलगाई।

और मुनिया, जिसकी यह शादी थी, उस रात बहुत सारी चीज़ों में थी और किसी में नहीं थी। वह मंडप में थी, उन लाल कपड़ों में जो भारी थे। फेरे लेते वक़्त उसके पाँव नंगे थे, ज़मीन ठंडी थी, और हर क़दम के साथ वह ठंडक उसे याद दिला रही थी कि वह यहाँ है, इस ज़मीन पर।

पर उसका मन यहाँ नहीं था। उसका मन एक सड़क पर था, धूल भरी, जो रामनगर से बालमपुर की तरफ़ जाती थी। वह सड़क ख़ाली थी, लंबी थी, बिना किसी के।

बारात विदा होने लगी। जीप में, नरेश की बहन के पास, मुनिया के लिए जगह थी। सुरजी देवी ने मुनिया का हाथ थामा, थोड़ी देर, फिर छोड़ दिया। यही उनकी विदा थी। हरिप्रसाद शामियाने के पास खड़े रहे, आगे नहीं आए।

और मुनिया की आँखें उस रास्ते पर थीं।

वह रास्ता जो बालमपुर से आता था। सुबह की धुँधली रोशनी में एक खिंची हुई लकीर की तरह दिख रहा था। मुनिया देखती रही। उसे ख़ुद नहीं पता था वह क्या देखना चाहती है। या शायद पता था और वह उसे नाम नहीं देना चाहती थी। रास्ता ख़ाली था। बस धूल थी, और उस धूल में सुबह की ओस थी जो रात के बाद हमेशा होती है।

फिर एक आकृति दिखी।

मुनिया का दिल एक पल रुका। सच में रुका। वह रुकना जो बाद में याद रहता है।

पर वह लोटन नहीं था। वह पूरब था।

पूरब दौड़ रहा था। हाथ में एक लिफ़ाफ़ा था और एक मुड़ा हुआ कंबल। वह दौड़ रहा था जैसे एक पल भी चूक गया तो गाड़ी निकल जाएगी। पाँव में चप्पल नहीं थी। बाद में किसी ने उससे यह नहीं पूछा, और उसने किसी को नहीं बताया।

पूरब गाड़ी के पास पहुँचा। हाँफ रहा था। मुनिया उसे देख रही थी। पूरब ने आँखें नहीं मिलाईं। नीची रखीं। लिफ़ाफ़ा और कंबल मुनिया की तरफ़ बढ़ा दिया।

"यह।"

बस इतना। मुनिया ने लिया। पूरब एक पल खड़ा रहा, पाँव देखता रहा, फिर पीछे मुड़ा और उसी रास्ते वापस चला गया जहाँ से आया था। मुड़कर नहीं देखा।

यह उसके जीवन का सबसे चुप पल था। पूरब जानता था कि इस काम के बारे में बाद में कभी बात नहीं होगी, न लोटन से, न मुनिया से। कुछ काम ऐसे ही होते हैं, बिना नाम के, बिना श्रेय के, बस इसलिए कि दोस्त होने का यही मतलब है।

जीप चली। ट्रैक्टर चले। गाँव की सीमा पीछे छूट गई।

मुनिया के हाथ में लिफ़ाफ़ा था और मुड़ा हुआ कंबल। नरेश की बहन कुछ बता रही थीं, इटावा के घर के बारे में, नियमों के बारे में। मुनिया सुन रही थी, या सुनने का भाव दे रही थी। जब गाड़ी की आवाज़ थोड़ी कम हुई और नरेश की बहन किसी बात पर ख़ुद ही हँसने लगीं, मुनिया ने लिफ़ाफ़ा खोला।

काँपते हाथों से।

यह उसने बाद में किसी को नहीं बताया। हाथ काँपे थे, यह सच था। लिफ़ाफ़े में एक चिट्ठी थी, सादे काग़ज़ पर, लिखावट थोड़ी बड़ी, थोड़ी आड़ी-तिरछी, पर साफ़।

चिट्ठी छोटी थी।

लोटन ने लिखा था कि गुरु को दक्षिणा तो देनी पड़ती है। एकलव्य ने भी अँगूठा दे दिया था। तुमने वह गुरु दक्षिणा समाज को दी, अपने परिवार को दी, अपने गाँव की हर एक लड़की को दी। और मैंने किशोर कुमार को दी, क्योंकि उन्होंने ही तो मुझे प्रेम सिखाया था।

बस इतना। नीचे कोई नाम नहीं था।

मुनिया ने पहले यह पढ़ा। फिर दोबारा पढ़ा। पहली बार में शब्द पढ़े। दूसरी बार में मतलब पढ़ा। और जब मतलब समझ आया तो वह इतना बड़ा था कि पूरी चिट्ठी छोटी लगने लगी।

मुनिया ने खिड़की के बाहर देखा।

खेत थे। सर्दी के बाद की फ़सल हरी थी। आकाश में उजाला हो रहा था। ट्रेक्टर की आवाज़ आ रही थी। और मुनिया की आँखों में जो आया वह आँसू नहीं था।

वह कुछ और था, जिसके लिए किसी भाषा में कोई शब्द नहीं है। वह कुछ जो तब आता है जब कोई बात पूरी तरह समझ में आती है, और समझ में आने के साथ यह भी समझ में आता है कि अब कुछ नहीं किया जा सकता। वह समझ जो दुख नहीं है, प्रेम नहीं है, गुस्सा नहीं है, पर इन सबका मिला हुआ वह रूप है जिसे कोई नाम नहीं मिला, क्योंकि जिन्होंने भाषाएँ बनाईं उन्होंने शायद यह सोचा नहीं था कि किसी को इस चीज़ के लिए शब्द की ज़रूरत पड़ेगी।

और उसकी नज़र पीछे थी।

नरेश की बहन ने पूछा, "क्या है लिफ़ाफ़े में?"

मुनिया ने कहा, "कुछ नहीं। माँ का खत था।"

यह झूठ उसके होंठों से ऐसे निकला जैसे झूठ नहीं, सच हो, जैसे कुछ झूठ इतनी बार ज़रूरी हो जाते हैं कि वे सच की जगह ले लेते हैं। लिफ़ाफ़ा उसने दुपट्टे के भीतर रख लिया, उस दुपट्टे में जिसने इमली के पेड़ के नीचे कितनी दोपहरें छुपाई थीं, और अब एक चिट्ठी छुपा रहा था। कंबल उसकी गोद में था, मुड़ा हुआ, भारी, और उस कंबल में वह सब भारीपन था जो शब्दों में नहीं आ सकता था।

गाड़ी चलती रही। रामनगर पीछे छूटता रहा। और मुनिया की गोद में, उसके दुपट्टे में, उसकी आँखों में, वह सब कुछ था जो अब कभी किसी को नहीं बताया जाएगा।

उसी सुबह, जब बारात का ढोल अभी गाँव में गूँज रहा था, लोटन उर्फ़ प्रेम कुमार बालमपुर से पश्चिम वाली सड़क पर था। उसकी साइकिल पुरानी थी। हरकुलस ब्रांड की, काली, जिसका पिछला पहिया थोड़ा टेढ़ा था और जिसमें पेडल करते वक्त एक आवाज़ आती थी जो चीं-चीं जैसी थी पर उससे भी थोड़ी अलग थी। कैरियर पर रेडियो बँधा था। रस्सी से। रस्सी नई थी, लोटन ने कल रात ही ली थी, पाँच आने में।

रेडियो बज रहा था।

किशोर कुमार बज रहे थे। "मैं प्यासा, तुम सावन, मैं दिल, तुम मेरी धड़कन।"

सड़क खाली थी उस वक्त। दोनों तरफ खेत थे। पूरब की तरफ से सूरज आ रहा था, पर लोटन पश्चिम की तरफ जा रहा था, इसलिए सूरज उसकी पीठ पर था। उसकी छाया आगे पड़ रही थी। साइकिल की छाया और उसकी अपनी छाया और कैरियर पर बँधे रेडियो की छाया, सब आगे-आगे जा रही थीं, जैसे उससे पहले पहुँचना चाहती हों। लोटन पैडल चलाता रहा।

उसके पास ज़्यादा सामान नहीं था। एक कपड़े का थैला था जो पिछले जन्म में शायद आटे की बोरी का हिस्सा था, उसमें दो कुर्ते थे, एक धोती थी, एक तौलिया था, एक तेल की शीशी थी, और एक काग़ज़ था जिस पर उसने कुछ लिखा था जो किसी ने नहीं देखा। वह काग़ज़ उसने बहुत देर तक लिखा था रात को, और सुबह उसे थैले में रख लिया था।

पैसे कितने थे, यह उसे नहीं पता था।

किशोर कुमार गाते रहे। "मैं प्यासा, तुम सावन।"

उस वक्त एक सरकारी जीप आई। वह इटावा की तरफ से आ रही थी। उसके ऊपर लाउडस्पीकर बँधा था। जीप तेज़ थी, लोटन की साइकिल से बहुत तेज़। जैसे ही जीप उसके पास से गुज़री, लाउडस्पीकर की आवाज़ आई। सरकार का

कोई संदेश था। परिवार नियोजन का। आवाज़ में वह सरकारी गंभीरता थी जो हर सरकारी बात में होती है, जैसे बात बहुत ज़रूरी है पर बोलने वाले को खुद इसकी ज़रूरत नज़र नहीं आती। आवाज़ खेतों से टकराई। खेतों ने उसे उछाल दिया। वह दूर चली गई। जीप मुड़ गई। लोटन पैडल चलाता रहा।

किशोर कुमार अभी भी बज रहे थे।

उस वक्त लोटन के मन में क्या था, यह उसने किसी को नहीं बताया। पर उसके पैडल की रफ़्तार वही थी। न बढ़ी, न घटी। वह उसी तरह जा रहा था जैसे किसी सोचे हुए रास्ते पर जाते हैं। जहाँ जाना है वह पता है। कब पहुँचेंगे यह नहीं पता। पर जाना है, यह पक्का है। पश्चिम में जाना था। मुंबई में था किशोर कुमार। मुंबई कहाँ थी, यह लोटन को पता था, नक्शे में। नक्शे में बहुत कुछ पता होता है जो ज़मीन पर नहीं पता। वह बस पैडल चलाता रहा। सड़क के किनारे एक बड़ का पेड़ था। उसके नीचे एक बूढ़ा आदमी बैठा था। उसके पास एक बकरी थी। बकरी पत्ते खा रही थी। बूढ़े ने लोटन को देखा। लोटन ने उसे देखा। दोनों ने नमस्ते नहीं की। बस देखा। यह गाँव के रास्तों का तरीका था। एक कुत्ता था सड़क पर जो लोटन के साथ थोड़ी देर दौड़ा और फिर रुक गया।

"मैं प्यासा, तुम सावन।"

रेडियो की आवाज़ सड़क पर फैलती गई।

बालमपुर में जिस वक्त लोटन साइकिल पर निकल रहा था, उस वक्त रामखेलावन मुनिया की बारात की चर्चा कर रहे थे। मतलब हरिप्रसाद ओझा के घर में जो शादी हुई, उसकी बात गाँव में थी और रामखेलावन को भी पता थी। उन्होंने सुबह के वक्त खेत पर जाते हुए दो चार लोगों से इसकी चर्चा की। यह स्वाभाविक था। लोटन के जाने का उन्हें तीन दिन बाद पता चला। पहले दिन उन्होंने सोचा कि लड़का कहीं गया होगा, पूरब के साथ या बाज़ार में। दूसरे दिन उन्होंने सोचा कि शाम को आएगा। तीसरे दिन वे फूलमती के पास गए और बोले, "लोटन कहाँ

है?" फूलमती ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा, "गया।" रामखेलावन ने कहा, "कहाँ गया?" फूलमती ने कहा, "पश्चिम।" रामखेलावन ने पूछा, "पश्चिम मतलब?" फूलमती ने जवाब नहीं दिया। चौथे दिन रामखेलावन खेत गए। खेत के काम में रहे। शाम को लौटे।

पाँचवें दिन उन्होंने पत्नी सुरजी देवी से बात की। सुबह के वक्त, जब वे चाय पी रहे थे। उन्होंने कहा, "लोटन गया।"

सुरजी देवी ने कहा, "हाँ।"

और बात ख़त्म हो गई।

उस घर में जो ख़ालीपन था, वह इन दो शब्दों में समा गया। "लड़का गया।" "हाँ।" इससे ज़्यादा क्या कहते। कहते क्या कि गया तो गया, अब खेत तो जोतने पड़ेंगे। कहते क्या कि बेटा है, आएगा। पर यह नहीं कहा। दोनों जानते थे। रामखेलावन उस दिन बाद में खेत गए। खेत को सबकी चिंता होती है। फूलमती पहली बार रोईं। यह कब हुआ, ठीक-ठीक किसी को नहीं पता। रोने की बात होती नहीं, इसलिए पता भी कैसे चलता। पर हुआ। वह शाम का वक्त था जब घर में अंधेरा होने लगता है और चिराग़ जलाने से पहले की जो देर होती है उसमें घर बहुत खाली लगता है। फूलमती उस वक्त चूल्हे के पास बैठी थीं। चूल्हा जला हुआ था। उसमें उपले थे और आग धीरे-धीरे जल रही थी। फूलमती बहुत देर तक उस आग को देखती रहीं। उनके हाथ में कुछ नहीं था। वे बस देख रही थीं।

और फिर उनकी आँखों में पानी आया।

उन्होंने आँखें पोंछीं। साड़ी के पल्लू से। जल्दी से। जैसे किसी ने देख लिया हो और देखने वाला कोई नहीं था। वे रोईं क्योंकि उन्हें पता था कि अब लोटन नहीं आएगा। माँ को यह कैसे पता चलता है, यह कोई नहीं जानता। पर पता चल जाता है। जिस तरह लड़का निकला था, जिस तरह उसके थैले में सामान था, जिस तरह वह सुबह घर से गया था, उस तरह लड़के लौटने के लिए नहीं जाते।

फूलमती को वह सुबह याद थी। लोटन आया था, उनके पास, और बोला था कि माँ। बस इतना। माँ। और फूलमती ने उसे देखा था और वह जो समझा जा सकता था, वह समझ लिया था। उन्होंने कहा था कि खाना खाके जाना। लोटन ने खाया था। आखिरी बार। फूलमती ने उस रात खाना नहीं खाया। बच्चों ने पूछा तो कह दिया कि पेट ठीक नहीं है। यह सच नहीं था। पर यह उससे ज़्यादा आसान था। रात को जब सब सो गए, फूलमती उस जगह गईं जहाँ लोटन की खाट थी। खाट वहीं थी। बिल्कुल वैसे ही जैसे वह छोड़ गया था। ऊपर एक पुरानी धोती थी जो उसकी चादर का काम करती थी। फूलमती ने वह धोती उठाई। देखती रहीं। फिर रख दी। उस रात बहुत देर तक वे वापस नहीं आईं।

शिवकुमार को जब पता चला तो वह तीन दिन गुस्से में रहा।

पहले दिन उसने सुबह की चाय की गिलास ज़्यादा ज़ोर से रखी। दूसरे दिन उसने खेत पर जो कुदाल चलाई वह ज़रूरत से दुगनी ज़ोर से थी और शाम को उसके हाथ में छाले पड़ गए। तीसरे दिन वह पूरब के घर गया और पूरब के सामने खड़ा होकर बोला, "जानता था तू?" पूरब ने कहा, "नहीं।" शिवकुमार ने उसे देखा। पूरब ने आँखें नहीं झुकाईं। शिवकुमार चला आया। शिवकुमार खेत गया। शाम को थका हुआ लौटा। खाना खाया। लेट गया। उस रात शिवकुमार ने कभी-कभी उस तरफ देखा जहाँ लोटन सोता था। यह उसने किसी को नहीं बताया।

वह देखना कुछ और था। गुस्सा नहीं था अब। गुस्सा उतर गया था। जो बचा था वह एक अजीब किस्म की जगह थी जो भाई के जाने से बनती है, जिसे भरा नहीं जा सकता और जिसे दिखाया भी नहीं जा सकता। शिवकुमार उस तरफ देखता था और फिर करवट बदल लेता था।

तिवारी जी के दफ़्तर में एक काग़ज़ ट्रे में रखा गया। उस पर लिखा था कि बारह का लक्ष्य पूरा हुआ। तिवारी जी ने पढ़ा, वापस रखा, उठे, बाहर गए, और कहा, "एक चाय।" उन्हें यह नहीं पता था और जानने की ज़रूरत भी नहीं थी कि उन

बारह में से एक वह लड़का था जो रेडियो के लिए आया था। तिवारी जी के लिए वह एक था बारह में से।

डॉ. वर्मा शाम को ख़ाली तंबू के बाहर खड़े थे। उन्हें लोटन का चेहरा याद था, बड़ी-बड़ी आँखें, बहुत बोलता नहीं था। उन्होंने हाथ धोए, बेकार ही, क्योंकि पहले ही धोए जा चुके थे। साइकिल पर बैठे, घर गए, खाना खाया, सोए। उस रात कोई सपना याद नहीं रहा।

और लोटन। लोटन उस दोपहर एक गाँव के बाहर रुका जिसका नाम उसे नहीं पता था। एक पेड़ था, उसके नीचे छाया थी, उसने साइकिल रोकी। रेडियो का बैटरी कम हो गया था, आवाज़ कमज़ोर थी। उसने एंटेना ऊँचा किया। थोड़ा बेहतर हुआ। किशोर कुमार अब भी बज रहे थे, किसी और गाने में। सामने खेत था। उसमें गेहूँ था। हवा चल रही थी और गेहूँ हिल रहा था। लोटन उसे देखता रहा। उसने इस दृश्य को किसी नाम से नहीं बुलाया। वह बस था। थोड़ी देर बाद उसने साइकिल उठाई। पैडल चले। रेडियो बजता रहा।

बालमपुर में शाम उतरी उस दिन जैसे हर दिन उतरती है। पश्चिम में लाल हुआ। चिड़ियाँ आईं। गाय लौटीं। धुआँ उठा घरों से। बच्चे आए, खेल कर थके हुए। बूढ़े उठे, चौपाल से। यह सब हुआ, जैसे हमेशा होता है, और किसी ने यह नहीं कहा कि आज कुछ बदल गया।

पर बदल गया था।

जो बदला था वह आसमान में नहीं था और पानी में नहीं था और फसल में नहीं था। वह उस घर में था जहाँ लोटन की खाट थी और जहाँ फूलमती शाम को रोज़ उस तरफ एक नज़र डालती थीं। जहाँ रेडियो की आवाज़ नहीं थी।

पूरब उस शाम अकेला गया। अकेला जाना पूरब की आदत नहीं थी, पूरब हमेशा किसी के साथ होता था, किसी का साथ देता था, किसी की चिट्ठी ले जाता था, किसी का पहरा देता था, किसी के बहाने का हिस्सा बनता था, पूरब हमेशा दूसरे

के लिए था, अपने लिए कभी नहीं, और शायद इसीलिए कभी किसी ने नहीं पूछा कि पूरब कैसा है, पूरब को क्या लगता है, पूरब के भीतर क्या चलता है, क्योंकि दुनिया को उन लोगों से कोई सरोकार नहीं होता जो हमेशा दूसरों के लिए होते हैं, उनका अपना कोई दुख नहीं माना जाता, जैसे पुल का अपना कोई किनारा नहीं होता, पुल बस दो किनारों को जोड़ता है, और कोई नहीं पूछता कि पुल थकता है या नहीं। पर उस शाम पूरब अकेला गया, उस इमली के पेड़ के नीचे, रामनगर के बाहर, वह पेड़ जहां लोटन और मुनिया मिला करते थे, जहां लोटन रेडियो लेकर आता था और मुनिया स्कूल से लौटते हुए उधर से गुज़रती थी, और किशोर कुमार की आवाज़ उस पेड़ की पत्तियों में गूंजती थी और मुनिया सुनती थी और दुपट्टा खींचती थी और लोटन देखता था और दोनों के बीच वह सब कुछ होता था जो बिना बोले होता है। पूरब उस जगह का गवाह था, वह तीसरा आदमी जो हर प्रेम कहानी में होता है, जो ख़ुद प्रेम नहीं करता पर प्रेम करने वालों का काम करता है, जो चिट्ठी ले जाता है, पहरा देता है, बहाना बनाता है, और जब सब ख़त्म हो जाता है तो अकेला रह जाता है, उस जगह पर जहां दो लोग मिलते थे और अब कोई नहीं मिलता।

पूरब बैठ गया। उस जड़ पर जहां लोटन बैठता था। बहुत देर तक बैठा रहा। शाम ढली, अंधेरा आया, तारे निकले, पर पूरब बैठा रहा। उसके पास कोई रेडियो नहीं था, कोई गाना नहीं, बस हवा थी और इमली की पत्तियों की सरसराहट जो ऐसी थी जैसे कोई बहुत धीमे से बात कर रहा हो, वह बात जो शब्दों में नहीं, आवाज़ में नहीं, बस हवा में, पत्तियों में, उस जगह की याद में जो अब सिर्फ जगह रह गई थी, उसमें से लोग निकल गए थे। पूरब को किशोर कुमार के गाने याद नहीं थे, ठीक से। कभी कभी कोशिश करता था, कोई शब्द पकड़ता, "पल पल दिल के पास" तक आता, पर आगे भूल जाता, धुन याद आती तो बोल नहीं आते, बोल आते तो धुन छूट जाती, और दोनों कभी एक साथ नहीं आते थे, जैसे कोई टूटी हुई माला हो जिसके मनके बिखर गए हों और एक एक करके उठाओ तो उठते हैं पर माला

नहीं बनती। और उस शाम पूरब को पहली बार पता चला कि ऐसा क्यों है, पता चला कि लोटन के बिना धुन नहीं आती, लोटन वह कड़ी था जो गाने को गाना बनाती थी, लोटन के बिना बोल सिर्फ शब्द थे और धुन सिर्फ आवाज़, और शब्द और आवाज़ अलग अलग रहें तो गाना नहीं बनता, गाना तब बनता है जब कोई उन्हें जोड़े, और जोड़ने वाला अब यहां नहीं था, वह कहीं और था, अपनी साइकिल पर, अपने रेडियो के साथ, अपने उस खालीपन के साथ जिसका कोई नाम नहीं।

यह बात पूरब ने किसी को नहीं बताई, न उस दिन, न बाद में, कभी नहीं, क्योंकि कुछ बातें ऐसी होती हैं जो बताने से छोटी हो जाती हैं, और पूरब नहीं चाहता था कि यह बात छोटी हो, यह बात बड़ी थी, उसकी अपनी, और उसने उसे अपने भीतर रखा, वहीं जहां वह सब रखता था जो लोटन का था, जो मुनिया का था, जो उन दोनों का था और जिसका वह गवाह था। पूरब उठा। घर की तरफ चला। रास्ते में उसने एक पत्थर को लात मारी, बिना किसी वजह के, बिना सोचे, बस मारी, वह लात जो उस गुस्से की थी जो किसी पर निकालनी थी पर किसी पर निकल नहीं सकती थी, न लोटन पर, न मुनिया पर, न दुनिया पर, तो पत्थर पर निकली, और पत्थर खेत में गया, दूर, और पूरब ने मुड़कर नहीं देखा, क्योंकि मुड़कर देखना लोटन की आदत थी नहीं और पूरब ने वह आदत लोटन से सीख ली थी, बिना जाने, बिना चाहे, जैसे दोस्तों की आदतें एक दूसरे में घुल जाती हैं।

और मुनिया।

मुनिया अब इटावा में थी। यह वाक्य लिखने में जितना सीधा है, जीने में उतना सीधा नहीं था। इटावा। एक नया शहर। नया नाम। नई गलियां। नए लोग। नई आवाज़ें। वह सब कुछ नया जो पुराने से इतना अलग था कि मुनिया को कभी कभी लगता कि वह अपनी ज़िंदगी में नहीं, किसी और की ज़िंदगी में आ गई है, और वह कोई और कहीं है, किसी और जगह, और मुनिया उसकी ज़िंदगी जी रही है, ग़लती से, या किसी की मर्ज़ी से।

घर नया था। दीवारें नई थीं, उन पर वह चूने की गंध थी जो नई दीवारों में होती है, वह गंध जो कुछ दिन रहती है और फिर चली जाती है और उसके साथ नएपन का एहसास भी चला जाता है और दीवारें पुरानी हो जाती हैं, अपनी हो जाती हैं, पर अभी वह गंध थी, और अभी दीवारें अपनी नहीं थीं। आंगन नया था, पक्का, ईंट का, उस पर पानी का कोई निशान नहीं, कोई दाग नहीं, कोई बच्चे की उंगलियों का निशान नहीं, कोई तुलसी का गमला नहीं जो बरसों से रखा हो और जिसकी जगह तय हो गई हो, सब साफ, सब खाली, सब बेनाम। कुआं नया था, उसका पानी उस पानी जैसा नहीं था जो रामनगर के कुएं में था, यह पानी अलग था, थोड़ा दूसरा स्वाद, थोड़ी दूसरी ठंडक, और मुनिया को हर घूंट पीते वक़्त यह फ़र्क महसूस होता था, और यह फ़र्क उसे याद दिलाता था कि वह अपने घर में नहीं है।

सब कुछ नया था और इस नएपन में एक अजीब थकान थी। वह थकान जो नई जगह की होती है, जो शरीर की नहीं मन की होती है, जो हर नई चीज़ को पहचानने में लगती है, हर नई आवाज़ को समझने में, हर नई जगह को याद रखने में, कि रसोई कहां है, कि बाथरूम कहां है, कि कौन सा दरवाज़ा किधर खुलता है, कि किस वक़्त सास उठती हैं, कि कब चाय बनानी है, कि कब चुप रहना है, कि कब बोलना है। यह सब सीखना था, और सीखने में वह ऊर्जा लगती है जो पुरानी जगह में नहीं लगती, क्योंकि पुरानी जगह में सब कुछ शरीर को याद होता है, हाथ अपने आप चलते हैं, पैर अपने आप जाते हैं, पर नई जगह में हर चीज़ के लिए सोचना पड़ता है, और यह सोचना थकाता है।

नरेश का घर पक्का था। हरिप्रसाद ने सच कहा था, पक्की छत थी, ईंट की दीवारें, लोहे का गेट, इटावा का बाज़ार पास था, यह सब सच था, जो बताया गया था वह था, इसमें कोई झूठ नहीं था। पर सच होना और अच्छा होना दो अलग बातें हैं, और मुनिया को अभी इतना ही पता था कि यह बुरा नहीं है, बुरा नहीं है, यह वाक्य उसने अपने मन में कई बार दोहराया, जैसे कोई मंत्र, यह बुरा नहीं है, यह बुरा नहीं है, और दोहराने से वह थोड़ा सच लगने लगा, पर पूरा सच नहीं,

क्योंकि बुरा न होना अच्छा होना नहीं है, बस बीच की जगह है, वही जगह जिसका कोई नाम नहीं, वही जगह जहां लोटन था जब फूलमती ने पूछा था कि कहां था और उसने कहा था कहीं नहीं।

सड़क के उस पार एक इमली का पेड़ था। इमली का पेड़। मुनिया ने जब पहली बार उस पेड़ को देखा तो उसके भीतर कुछ हिला, कुछ ऐसा जो बहुत गहरे से आया, उन जड़ों से जो रामनगर और बालमपुर के बीच में थीं, उस इमली के पेड़ से जो रामनगर के बाहर था, जहां लोटन बैठता था, जहां रेडियो बजता था, जहां किशोर कुमार गाते थे, जहां दुपट्टा खिंचता था। इमली का पेड़ इमली का पेड़ है, दुनिया में हज़ारों हैं, लाखों हैं, हर गांव में, हर शहर में, पर मुनिया के लिए इमली का पेड़ सिर्फ एक था, और वह पेड़ रामनगर में था, और यह पेड़ वह नहीं था, यह दूसरा था, पर इमली तो वही थी, पत्तियां वही थीं, तना वही था, और इस वही होने में एक तसल्ली थी और एक तकलीफ, दोनों एक साथ, जैसे एक ही बूंद में शहद भी हो और ज़हर भी।

सास थीं, ज़्यादा बोलती नहीं थीं, और यह अच्छा था या बुरा, मुनिया अभी तय नहीं कर पाई थी, क्योंकि कम बोलने वाली सास दो तरह की होती हैं, एक वो जो कम बोलती हैं इसलिए कि बोलने में यकीन नहीं, और एक वो जो कम बोलती हैं इसलिए कि जब बोलती हैं तो काट खाती हैं, और मुनिया को अभी पता नहीं था कि ये सास किस किस्म की हैं, यह जानने में वक़्त लगेगा, और मुनिया के पास वक़्त था, ज़िंदगी भर का वक़्त। ननद थी, थोड़ी हंसमुख, वह हंसमुख जो नई भाभी को देखकर होती हैं, शायद सच्ची, शायद नहीं, यह भी वक़्त बताएगा। नरेश सुबह जल्दी जाते थे और शाम को लौटते थे, और इस बीच के घंटों में वे ठीक थे, ठीक का मतलब न बुरे न अच्छे, बस ठीक, और इस "ठीक" के आगे क्या है, यह जानने में भी वक़्त लगेगा, और मुनिया को यह पता था, उसे बहुत सी बातों का पता था जो उसकी उम्र की लड़कियों को नहीं होता, क्योंकि मुनिया ने वह रात गुज़ारी थी जो उम्र बढ़ा देती है, वह रात जो स्टेशन की बेंच पर कटी थी।

उसका एक कमरा था। छोटा। एक खिड़की थी। और उस खिड़की से इमली का पेड़ दिखता था। मुनिया जब उस खिड़की पर खड़ी होती तो इमली का पेड़ देखती, और इमली का पेड़ देखती तो रामनगर याद आता, और बालमपुर याद आता और जब बालमपुर याद आता तो लोटन याद आता, और लोटन याद आता तो रेडियो याद आता, और रेडियो याद आता तो किशोर कुमार, और किशोर कुमार याद आते तो वह गाना, पल पल दिल के पास, और फिर सब कुछ एक साथ उमड़ आता, जैसे बांध टूटे और पानी, और मुनिया खिड़की बंद कर लेती, क्योंकि बांध टूटना अच्छा नहीं, बांध बना रहना चाहिए, बांध टूटे तो बाढ़ आती है और बाढ़ में सब बह जाता है।

उस कमरे में एक कंबल था। मुड़ा हुआ। एक कोने में रखा। वह कंबल जो लोटन ने भेजा था।

पहली रात मुनिया ने उस कंबल को देखा था।

रात को, जब घर में सब सो गए थे, और उस नए घर की आवाज़ें आ रही थीं जो अभी पहचानी नहीं थीं। हर घर की अपनी आवाज़ें होती हैं। दरवाज़े की चरमराहट। दीवार से टपकता पानी। छत पर चलती बिल्ली। खिड़की से आती हवा। पुराने घर की आवाज़ें पहचानी होती हैं, उनसे डर नहीं लगता, क्योंकि वे बरसों से साथ रहती हैं, जैसे कोई पुराना नौकर जिसकी आहट से ही पता चल जाए कौन आया। पर नए घर की आवाज़ें अजनबी होती हैं, और रात को वे और अजनबी लगती हैं, हर आवाज़ एक सवाल बन जाती है जिसका जवाब नहीं मिलता।

उस अजनबियत में मुनिया ने वह कंबल उठाया था।

खोला था। छुआ था। धीरे से, जैसे कोई बहुत पुरानी चिट्ठी छूता है जिसे फटने का डर हो।

कंबल सरकारी था, यह उसे फ़ौरन पता चल गया। सरकारी कंबल की एक बनावट होती है जो किसी और कंबल में नहीं मिलती, मोटा नहीं होता पर गरम होता है, उस तरह की गर्मी जो जाड़े में काम आती है, उस तरह की बुनावट जो हाथ को बता देती है कि यह किसी दफ़्तर के काग़ज़ों से निकला है, किसी रजिस्टर से, किसी नंबर से।

पर यह कंबल सिर्फ़ कंबल नहीं था।

यह वह चीज़ थी जो लोटन के पास थी। जो लोटन ने छुई थी। जो लोटन के पास रही थी, उन रातों में जो मुनिया ने नहीं देखी, उन दिनों में जो मुनिया के लिए हमेशा अनजान रहेंगे। इस कंबल में लोटन के हाथ की छाप थी, और शायद, शायद वह गर्मी भी थी जो हाथ कंबल को तह करते वक़्त उसमें छोड़ जाते हैं, वह गर्मी जो किसी कपड़े में बस जाती है और महीनों बाद भी थोड़ी बाक़ी रहती है, जैसे कोई आख़िरी निशानी जो जाने वाला अनजाने में पीछे छोड़ जाता है।

मुनिया ने वह कंबल अपने पास खींच लिया।

उस रात, उस अजनबी घर में, उस अजनबी छत के नीचे, यह कंबल इकलौती चीज़ थी जो अजनबी नहीं थी। यह कंबल था जो जानता था, जो छुआ हुआ था, जो किसी और दुनिया से आया था और जो अब इस नई दुनिया में मुनिया के साथ था, ख़ामोश, गरम, अपना।

मुनिया ने उस कंबल को ओढ़ा। उस रात। फाल्गुन था, ठंड जा रही थी, मौसम बदल रहा था, कंबल की ज़रूरत नहीं थी, बिना कंबल के भी रात कट जाती, पर मुनिया ने ओढ़ा, इसलिए नहीं कि ठंड थी, बल्कि इसलिए कि कंबल ओढ़ने से कुछ और मिलता था, वह गरमी जो ऊन की नहीं, याद की होती है, वह गरमी जो शरीर को नहीं, भीतर को मिलती है, और उस गरमी में मुनिया ने आंखें बंद कीं और उसे वह सड़क दिखी जो रामनगर से बालमपुर जाती है, और उस सड़क पर इमली का पेड़, और उस पेड़ के नीचे एक लड़का बैठा है जिसके गोद में रेडियो है

और रेडियो में किशोर कुमार गा रहे हैं, पल पल दिल के पास, और मुनिया ने कंबल और कसकर ओढ़ लिया, और सो गई, उस नए घर में, उस नई खाट पर, उस नई ज़िंदगी में, पर उस पुरानी गरमी में, वह गरमी जो एक सरकारी कंबल में थी और जो सरकार ने नहीं दी थी, लोटन ने दी थी, और लोटन ने दी थी तो वह कभी ख़त्म नहीं होगी, यह मुनिया जानती थी, ऐसे जानती थी जैसे कोई मंत्र जानता है, बिना समझे, बिना तर्क के, बस जानती थी।

लिफ़ाफ़े को उसने उस कमरे में एक जगह रखा था।

वह जगह उसे पता थी और किसी और को नहीं। यह जगह कहाँ थी, यह बताना ज़रूरी नहीं, क्योंकि हर औरत के पास एक ऐसी जगह होती है, छोटी, छुपी, जिसका पता सिर्फ़ उसे होता है। वह जगह जहाँ वह अपनी ज़िंदगी के सबसे ज़रूरी काग़ज़ रखती है, सबसे ज़रूरी चिट्ठियाँ, सबसे ज़रूरी यादें, उन यादों को जिन्हें दिखाया नहीं जा सकता पर जिन्हें फेंका भी नहीं जा सकता।

उस जगह का पता किसी को नहीं होता। न सास को, न ननद को, न नरेश को। किसी को नहीं। क्योंकि कुछ जगहें ऐसी होती हैं जो सिर्फ़ एक इंसान की होती हैं, और उस इंसान के जाने के बाद वह जगह भी चली जाती है, और जो उसमें रखा था वह भी, बिना किसी को बताए, बिना किसी निशान के। और यही उन चीज़ों की सबसे बड़ी सुरक्षा है जो सबसे ज़्यादा क़ीमती होती हैं, कि उन्हें कोई ढूँढता ही नहीं, क्योंकि कोई जानता ही नहीं कि ढूँढना कहाँ है।

पर वह लिफ़ाफ़ा वहाँ रहा।

बरसों, और उसके भीतर जो जवाब था, वह जवाब मुनिया को आज तक समझ नहीं आया। उसने सैकड़ों बार सोचा होगा, उस रात भी, और उसके बाद की कितनी रातों में भी, कि अगर एक बार, बस एक बार, वह लोटन से पूछ पाती, सीधे, बिना डर के, कि उस दिन तुम स्टेशन क्यों नहीं आए। एक सवाल। इतना छोटा सा सवाल। पर इतना बड़ा कि उसे पूछने का मौक़ा कभी नहीं आया, और

जो सवाल पूछा नहीं जा सकता वह सवाल नहीं रहता, वह एक ज़िंदगी भर का साथी बन जाता है, चुपचाप बैठा रहता है मन के किसी कोने में, हर साल थोड़ा पुराना होता हुआ पर कभी ख़त्म न होता हुआ।

वह पहली सर्दी थी जब कंबल का असल काम हुआ।

कार्तिक में ठंड आई। इटावा की ठंड मैनपुरी की ठंड से अलग नहीं थी, बस अजनबी थी। अजनबी ठंड ज़्यादा काटती है। मुनिया ने कंबल निकाला। उसे झाड़ा। ओढ़ा। वह रात उस कंबल में बहुत चीज़ें थीं। किशोर कुमार का एक गाना था जो हँडपम्प के पास से बह गया था। एक चिट्ठी थी जिसमें एकलव्य था। एक पूरब था जो दौड़ता हुआ आया था और आँखें नहीं मिलाई थीं। एक चैत्र की सुबह थी जब बारात जा रही थी और एक रास्ता था जो खाली था।

यह सब था उस कंबल में।

यह सब मुनिया ने किसी को नहीं बताया।

जब सास ने एक बार पूछा, "यह कंबल कहाँ से आया?" तो मुनिया ने कहा, "सरकारी है।"

सास ने कहा, "हाँ, दिखता है।" और बात ख़त्म हुई।

इससे ज़्यादा मुनिया ने नहीं बताया।

पश्चिम की तरफ जाने वाला रास्ता लंबा था। लोटन को यह पता था। वह रोज़ थोड़ा आगे जाता था। शाम को जहाँ होता था, वहीं रुकता था। किसी के खलिहान में, किसी पेड़ के नीचे, एक बार एक टीचर के घर में जिन्होंने पूछा कि कहाँ जा रहे हो, और लोटन ने कहा कि मुंबई, और टीचर ने कहा कि दूर है बहुत, और लोटन ने कहा कि हाँ, और दोनों चुप हो गए और टीचर ने उसे रात का खाना दिया और अगली सुबह लोटन चला गया।

रेडियो उसके साथ था। कैरियर पर।

जब बैटरी होती थी तो बज़ता था। जब नहीं होती थी तो चुप रहता था। लोटन नई बैटरी लाता था जैसे-जैसे पुरानी ख़त्म होती थी। यह उसका ख़र्चा था, इसमें वह कोई बचत नहीं करता था। किशोर कुमार बज़ते थे। और जब किशोर कुमार बज़ते थे तो लोटन के पैडल एक लय में होते थे। यह इत्तेफाक था या इरादा, यह लोटन को ख़ुद नहीं पता था। वह पश्चिम की तरफ जा रहा था।

सूरज उसकी पीठ पर था।

आगे-आगे उसकी छाया थी।

बालमपुर में कुछ हफ़्तों बाद जीवन अपनी रफ़्तार में आ गया। यह वैसे ही होता है। जो नहीं होना चाहिए, वह भी होता है, और धीरे-धीरे वह सामान्य हो जाता है। लोटन का नाम आता था कभी-कभी, फिर कम आने लगा, फिर और कम हो गया। यह भूलना नहीं था, यह जीना था। जीना और भूलना में फ़र्क होता है पर वह फ़र्क बाहर से दिखता नहीं। रामखेलावन खेत जाते थे। फूलमती घर में थीं। शिवकुमार काम करता था। फूलमती चूल्हा जलाती थीं।

बस एक चीज़ बदली थी।

फूलमती अब थोड़ा कम बनाती थीं। उतना जितना चाहिए, उससे थोड़ा कम। पहले एक हिस्सा ज़्यादा होता था। वह हिस्सा अब नहीं होता था। इसे किसी ने नोटिस किया या नहीं, यह पता नहीं। पर फूलमती जानती थीं। पूरब एक बार उस घर आया था। फूलमती के पास। उसने कहा था कि मौसम अच्छा है। फूलमती ने कहा था कि हाँ। और वे दोनों थोड़ी देर बैठे रहे थे उस आँगन में। कोई लोटन का नाम नहीं लिया। पर दोनों को पता था कि वे इसीलिए बैठे थे। पूरब के जाते वक्त फूलमती ने उसे एक पोटली दी थी। उसमें गुड़ था।

पूरब ने लिया।

फिर लौट गया।

यह सब उस साल का था। उस एक साल में बहुत कुछ हुआ और बहुत कुछ नहीं हुआ। जो हुआ वह दिखा। जो नहीं हुआ वह भी था, पर उसे देखने के लिए एक तरह की आँख चाहिए जो हर किसी के पास नहीं होती। गाँव वही था। खेत वही थे। कुआँ वही था। हँडपम्प वही था। हँडपम्प के पास अब जो औरतें इकट्ठा होती थीं वे और बातें करती थीं। वह गाना अब किसी को याद नहीं था जो उस शाम बहा था। या याद था पर कहा नहीं जाता था। गाँव में बहुत सारी बातें होती हैं जो याद रहती हैं पर कही नहीं जातीं। यह उनका तरीका है। मास्टर प्राणनाथ शुक्ला अपनी बैठक में बैठते थे। कभी-कभी लोटन का ज़िक्र आता था तो वे कहते थे कि लड़का होनहार था। जो जा चुके होते हैं उन्हें होनहार कहना आसान होता है। मँझली बुआ ने एक बार कहा था कि मुनिया का विवाह अच्छा हुआ। पटवारी के घर गई, ठीक है। इससे ज़्यादा उन्होंने नहीं कहा।

गाँव आगे बढ़ता रहा।

जैसे हमेशा बढ़ता है।

और उस पहली सर्दी में, जब इटावा में धुंध थी और इमली के पत्ते झड़ रहे थे, मुनिया एक सुबह उस खिड़की के पास बैठी थी। कंबल उसके कंधों पर था। चाय हाथ में थी। बाहर धुंध थी। नीम का पेड़ धुंध में था, उसकी आकृति थी, पत्तियाँ नहीं थीं। वह आकृति थी और बस। मुनिया ने कंबल ऊपर खींचा। और उस खींचने में जो था, वह एक बहुत पुरानी आदत थी जो उसे उस दिन पड़ी थी और जो आगे कई सर्दियों तक रहेगी। उस सुबह उसके मन में बहुत कुछ था। वह एकलव्य की बात सोच रही थी। एकलव्य ने अँगूठा दे दिया था। उसके मास्टर ने माँगा था, गुरु ने माँगा था, और उसने दे दिया था। क्योंकि दक्षिणा तो देनी पड़ती है। यह नियम था। यह नियम एकलव्य ने तोड़ा नहीं था।

लोटन ने भी तोड़ा नहीं था।

पर एकलव्य ने अँगूठा देने के बाद क्या किया, यह किसी ने नहीं बताया। कहानी वहीं रुक जाती है। अँगूठा दिया और बात ख़त्म। आगे क्या हुआ, यह मुनिया जानना चाहती थी। पर कोई बताने वाला नहीं था। धुंध और गहरी हो गई। नीम का पेड़ और अदृश्य हो गया।

मुनिया ने आँखें बंद कीं।

लोटन कहाँ पहुँचा, यह बालमपुर को कभी नहीं पता चला।

एक बार, कुछ साल बाद, किसी ने कहा था कि उसने सुना है कि मैनपुरी में किसी ने लोटन को देखा था जो एक रेडियो की दुकान में काम करता था। यह सच था या नहीं, किसी ने जाँचा नहीं। एक बार और किसी ने कहा था कि लोटन मुंबई में है और किशोर कुमार के किसी प्रोग्राम में उसे देखा गया था। यह भी जाँचा नहीं गया।

उस साल की आख़िरी बात जो किसी ने किसी को नहीं बताई, वह यह थी।

एक रात, फाल्गुन के ख़त्म होने से एक दिन पहले, हरिप्रसाद ओझा देर रात उठे थे। उन्हें नींद नहीं आई थी। वे आँगन में गए। बैठ गए। बीड़ी सुलगाई। आकाश में तारे थे। उन्होंने तारों की तरफ देखा। फिर उस रास्ते की तरफ देखा जो बालमपुर की तरफ जाता था। रास्ता खाली था। हमेशा की तरह। हरिप्रसाद ने बीड़ी पी। ख़त्म हुई। उन्होंने उसे बुझाया। उठे। भीतर गए। सो गए। उस रात उन्होंने जो सोचा, वह उनके साथ रहा। सुरजी देवी को उन्होंने नहीं बताया। सुरजी देवी को बताने की ज़रूरत नहीं थी। वे पहले से जानती थीं। माँएं हमेशा जानती हैं।

और उस सारे साल में, उन सारी जगहों में, वह एक चीज़ जो एक जगह से दूसरी जगह नहीं गई थी, जो कहीं नहीं गई थी, जो बस थी, वह यह थी।

एक गाना।

"मैं प्यासा, तुम सावन।"

यह गाना किसी रेडियो में था। किसी साइकिल पर बँधे रेडियो में। जो पश्चिम की तरफ जा रहा था।

यह गाना किसी दुपट्टे में था। जो बार-बार सीधा किया जाता था। बिना वजह।

यह गाना किसी कंबल में था। जो हर सर्दी में निकाला जाता था।

यह गाना किसी चिट्ठी में था। जिसमें एकलव्य था।

यह गाना किसी आँख में था। जिसमें आँसू नहीं था, कुछ और था।

गाना सब जगह था।

जैसे गाने होते हैं।

जैसे प्रेम होता है।

बिना पते के।

बिना नाम के।

बस होता है।

रेडियो पर नया कार्यक्रम शुरू हुआ था उस साल।

नई दिल्ली से आता था।

उसमें खेती की बातें होती थीं और कभी-कभी गाने होते थे।

बालमपुर में किसने सुना, किसने नहीं सुना, यह पता नहीं।

वह रेडियो किसी साइकिल पर था, पश्चिम की किसी सड़क पर।

पर उस कार्यक्रम में हर दिन एक आवाज़ आती थी जो किशोर कुमार के गाने की फ़रमाइश करती थी।

एक आवाज़। बस एक। हर दिन वही।

और वह आवाज़ कुछ जानी-पहचानी सी लगती थी, उस मशीनी मिश्रण के बाद भी जो फ़ोन के उस पार से गुज़रकर आता है, सब आवाज़ों को एक जैसा बना देता है, उनकी पहचान धो देता है। पर यह आवाज़ धुलती नहीं थी। यह वहीं रह जाती थी, कान में, मन में, जैसे कोई पुरानी पहचान मशीनों से भी बड़ी हो।

कौन जाने वह आवाज़ किसकी थी।

कौन जाने वह कहाँ से आती थी, किस सड़क से, किस गाँव से, किस आदमी के हाथों से जिसके पास अब भी एक रेडियो था और उस रेडियो में अब भी एक गाना बजने की उम्मीद। कुछ बातें कभी पूरी तरह पता नहीं चलतीं, और शायद यही ठीक भी है, क्योंकि कुछ सवाल जवाब से ज़्यादा सुंदर होते हैं, खुले रहकर ज़्यादा कहते हैं, बंद होकर कम।

सर्दियाँ आती रहीं।

हर सर्दी में वह कंबल निकला। हर सर्दी में वह थोड़ा और पुराना हुआ, थोड़ा और मुलायम, जैसे पुरानी चीज़ें होती हैं, उतनी ही मुलायम होती जाती हैं जितनी पुरानी। हर सर्दी में मुनिया ने उसे ओढ़ा। चुपचाप। बिना किसी को बताए। बिना किसी से पूछे।

जब तक सर्दियाँ आती रहीं।

यह वह अध्याय है जो ख़त्म नहीं होता। क्योंकि कुछ बातें ख़त्म नहीं होतीं। वे बस सर्दी में कंबल की तरह ओढ़ी जाती हैं, और गर्मी में रखी जाती हैं, संदूक के किसी कोने में, किसी पुराने कपड़े में लपेटकर, और अगली सर्दी फिर निकाली जाती हैं, जैसे पहली बार निकाली जा रही हों। यही उनका जीना है। यही उनका मरना भी नहीं है।

पर लोटन स्टेशन क्यों नहीं गया।

यह सवाल मुनिया के मन में रहा। पूरब के मन में भी रहा, बरसों, जैसे कोई काँटा रहता है, इतना गहरा नहीं कि खून बहे, पर इतना ज़रूर कि भूले न।

पर इसका जवाब सिर्फ़ एक इंसान को पता था, और वह जवाब उसकी मुट्ठी में था जब मुनिया गाँव से विदा हो रही थी। वह मुट्ठी रूपा की थी। उस मुट्ठी में वह चिट्ठी थी जो उसने कभी लोटन को दी ही नहीं।

तो फिर जो चिट्ठी उसने लोटन को दी, उसमें क्या लिखा था।

उसमें लिखा था, मैं तुमसे पूरी उम्र प्यार करती रहूँगी, पर मुझे मेरे बापू के लिए, मेरी माँ के लिए, मेरे गाँव की लड़कियों के लिए, यह शादी करनी पड़ेगी। क्योंकि मैं कभी नहीं चाहूँगी कि जिन लड़कियों की पढ़ाई मेरी वजह से बंद करवाई गई है, उनका जीवन मेरे भागने के बाद और बदतर हो जाए।

पर यह बात रूपा की थी। मुनिया की नहीं।

रूपा नहीं चाहती थी कि मुनिया के भागने के बाद गाँव की लड़कियों की ज़िंदगी सिर्फ़ शादी और बाल विवाह तक सिमट जाए। और इस न चाहने में रूपा ने वह कर दिया जो किसी ने उससे नहीं माँगा, जैसे एकलव्य ने वह दिया जो किसी ने नहीं माँगा, पर रूपा का यह देना किसी और का हक़ छीनकर हुआ। उसने मुनिया की आवाज़ चुरा ली, उसके अपने डर के लिए, या अपनी समझ के लिए, या शायद इन सबके लिए एक साथ।

लोटन ने उस चिट्ठी का लिखा किसी को नहीं बताया। पूरब को भी नहीं। मुनिया को अभी भी वह सही जवाब चाहिए था, वह जवाब जो उसे कभी नहीं मिलेगा।

पूरब यही सोचता रहा कि काश दोनों भाग जाते।

पर किसी को नहीं पता था कि मुनिया स्टेशन गई थी। सिवाय रूपा के, सिवाय हरिप्रसाद के, सिवाय माँ के। मुनिया गई और लौट आई। सच सिर्फ़ रूपा तक रह

गया, उसकी मुट्ठी में बंद, जैसे एक बंद मुट्ठी एक पूरी कहानी को छुपा सकती है, बरसों तक, बिना किसी को बताए।

मुनिया फिर कभी रामनगर नहीं लौटी।

एक दिन जब मुनिया सोकर उठी, तो उसने सड़क के पार वाले इमली के पेड़ में एक पतंग देखी, अटकी हुई, हिलती हुई हवा में। और वह नंगे पाँव घर से दौड़ गई।

सड़क के उस पार। इमली के पेड़ के पास, जहाँ वह पतंग अटकी थी।

शायद कोई जवाब अटका था वहाँ। या नहीं। कौन जाने।

पतंगें ऐसी ही होती हैं। वे आती हैं किसी हाथ से छूटकर, किसी डोर के टूटने से, और जा फँसती हैं किसी अनजान पेड़ में, बिना यह जाने कि किसी की आँखें उन्हें देखकर बरसों पुराना कोई सवाल फिर से जी उठेंगी। मुनिया दौड़ती रही, नंगे पाँव, धूल में, उस उम्मीद में जो उम्मीद नहीं थी, बस एक आदत थी, यह सोचने की आदत कि शायद, शायद आज, कुछ जवाब मिल जाए।